बुद्धकालीन भारतीय भूगोल

(पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं के आधार पर)

लेखक

डॉ० भरतसिंह उपाध्याय

२०१८

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

बुद्धकालीन भारतीय भूगोल
माप मीलोंमे
दद्दर पब्बत
निसध पब्बत
उड्डियान
सिवि
गन्धार
तक्कसिला
केकय
वीतंसा नदी
कम्बोज
सागल
बाहीय
उ त्त रा प थ
केलास पब्बत
अनोतत्त दह
हि म व न्त
इन्दपत्त
मच्छ
म ज्झि म दे स
को स ल
कपिलवत्थु
साकिय
कोलिय
मल्ल
विदेह
वज्जि
वेसालि
सोवीर
सिन्धु
हिंगुल पब्बत
बाराणसी
चेति
दसण्ण
मगध
पाटलिपुत्त
नेरंजरा नदी
वंग
कजंगला
सुह्म
तामलित्ति
द्वारका
सुरट्ठ
उज्जेनी
विञ्झाटवी
नम्मदा नदी
माहिस्सति
सुप्पारक
अस्सक
गोधावरी नदी
महारट्ठ
दक्खिणापथ
अन्धकरट्ठ
क लिं ग
वनवासि
महिसकरट्ठ
चोळ
दमिलरट्ठ
पण्डिय
तम्बपण्णि
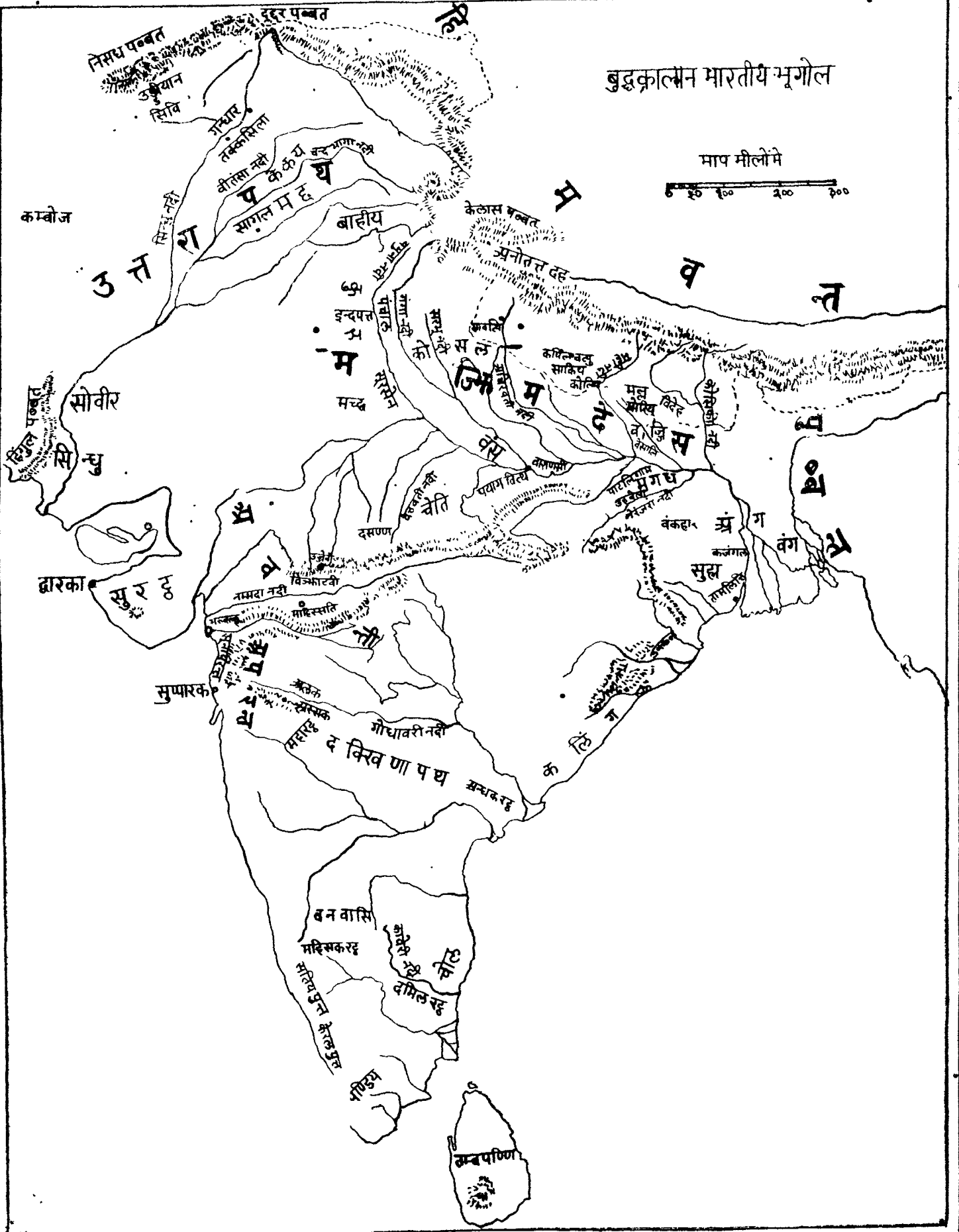
प्रकाशकीय

इतिहास अथवा भूगोल तभी सम्पन्न और प्रामाणिक हो सकते है जब वाङ्मय के आधार पर लिखे जाएँ। परतत्रता के युग मे पाश्चात्य मनीषियो ने इतिहास और भूगोल के निर्माण मे जिस पद्धति को हमारे देश के इतिहास एव भूगोल लिखने के लिए अपनाया था उस पद्धति मे वाङ्मय की प्रधानता न होने से हमारे देश का इतिहास और भूगोल पूर्णतया प्रामाणिक नही बन सका, जिसका अनुभव सभी करते है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के उत्तर काल मे इस दिशा मे भारतीय विद्वानो का ध्यान आकृष्ट हुआ है। फलत वाङ्मय के आधार पर इतिहास तो लिखे जाने लगे, किन्तु भूगोल विषय अभी तक ज्यो का त्यो पडा रहा।

भारतीय सामाजिक, राजनैतिक एतिहासिक एव भौगोलिक आदि अनेक पक्षो को प्राणवान् बनाने मे बौद्ध वाङ्मय मे से विपुल सामग्री सगृहीत की जा सकती है। बौद्ध वाङ्मय एव पालि भाषा के मननशील मनीषि डॉ० भरतसिंह उपाध्याय ने 'बुद्धकालीन भारतीय भूगोल' विषय पर शोध-प्रबध लिख कर प्राचीन भारतीय भूगोल का उद्धार कर हिन्दी भाषा और उसके साहित्य की अपूर्व सेवा की है। इससे पूर्व डॉ० विमलाचरण लाहा ने इस विषय पर 'ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज़्म' नाम की पुस्तक लिखी थी जो सन् १९३२ ई० मे लन्दन से प्रकाशित हुई थी। इसके अतिरिक्त किसी भी देशी, विदेशी भाषा मे बुद्धकालीन भूगोल पर अन्य कोई पुस्तक प्रकाशित नही हुई है।

डॉ० उपाध्याय ने पालि त्रिपिटक-अट्ठकथाओ के अगाध सागर को मथ कर और चीनी बौद्ध यात्रियो के यात्रा-विवरणो को सोपान बना कर बौद्ध कालिक भारतीय भूगोल उदधि का अवगाहन कर यह अनवद्य ग्रथ-रत्न प्रस्तुत किया है।

पाँच परिच्छेदो के इस ग्रथ मे बौद्ध कालिक भूगोल और उससे सबधित सामाजिक, राजनैतिक इनिहास की सुन्दर झाँकी मिलती है।

अनुसन्धायको, इतिहासकारो, भूगोलवेत्ताओ सब के लिए यह ग्रथ महान् उपकारी है—ऐसा हमारा विश्वास है।

रामप्रताप त्रिपाठी
सहायक मत्री

चैत्री पूर्णिमा, २०१८

प्राक्कथन

प्रस्तुत पुस्तक आज से करीब छह वर्ष पूर्व एक शोध-प्रबन्ध के रूप में लिखी गई थी। अब कुछ परिवर्तनों और परिवर्द्धनों के सहित यह प्रकाशित हो रही है। इसके विषय की प्रेरणा मुझे बौद्ध साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् और लेखक डॉ० विमलाचरण लाहा महोदय से मिली। अतः मैं सर्व प्रथम उनके प्रति हृदय से कृतज्ञ हूँ। रूपरेखा बनाने के पश्चात् मैंने उसे आगरा विश्वविद्यालय के कला-संकाय के भूतपूर्व प्रधान डॉ० धर्मेन्द्रनाथ जी शास्त्री, एम० ए०, डी० लिट् की सेवा में भेजा, जिसे उन्होंने पसन्द किया और अपने निर्देशन में मुझे कार्य करने की सहर्ष अनुमति भी दे दी। तब से लेकर अन्त तक न जाने कितनी बार मैं उनके घर पर मेरठ में गया और सदा नये विचार-सूत्र और प्रेरणा लेकर लौटा। कुछ दुर्लभ ग्रन्थों से भी उन्होंने मेरी सहायता की, मित्रवत् आतिथ्य भी किया और विषय के स्वरूप और प्रक्रिया के सम्बन्ध में भी ऐसे महत्वपूर्ण सुझाव दिये जिनसे मुझे वास्तविक मानसिक आह्लाद मिला। ऐसे अनुकम्पक आचार्य के प्रति शब्दों में कृतज्ञता प्रकट कर सकना सम्भव नहीं है।

हिन्दी में बौद्ध साहित्य सम्बन्धी जो कार्य हुआ है, उसका यदि आकलन किया जाय तो उसमें तीन रत्न मिलेंगे। वे हैं महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन और भिक्षु जगदीश काश्यप जी। इन तीन रत्नों से मैंने जो कुछ पाया, उसी से मेरे मन में भी कुछ चमक उठी और मुझे लिखने की इच्छा हुई। मेरे सब प्रमाद और स्खलन मेरे अपने हैं, परन्तु यदि कहीं कोई अच्छाई है तो वह इन तीन रत्नों का अनुभाव ही है। मेरे हृदय में इनके प्रति सदा गहरे कृतज्ञता के भाव हैं।

आज हिन्दी में ऐसी स्थिति है कि गम्भीर साहित्य के प्रकाशन का भार कोई व्यावसायिक प्रकाशक नहीं ले सकता। मैं तो हिम्मत हार बैठा था और सोचता था कि राम की कृपा जब होगी तभी अन्य भी कृपा करेंगे। सो वह कृपा श्री रामप्रतापजी

त्रिपाठी के माध्यम से मुझे प्राप्त हुई। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के आदाता महोदय श्री जगदीश स्वरूप जी से मेरा साक्षात् परिचय नहीं है और न मैंने उन्हें इस सम्बन्ध में कभी लिखा ही। उनके द्वारा इस पुस्तक को प्रकाशन के लिए स्वीकार किया जाना उनकी गुणग्राहकता और निष्पक्ष हिन्दी सेवा का एक उदाहरण है, ऐसा मैं मानता हूं। मैं उनके और हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सहायक मन्त्री श्री रामप्रताप जी त्रिपाठी के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता अर्पित करता हूँ।

सम्मेलन मुद्रणालय के सुयोग्य व्यवस्थापक श्री सीताराम जी गुण्ठे, उनके स्थानापन्न श्री बाबू जालिमसिंह जी तथा उनके सब सहयोगियों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना मैं अपना पवित्र कर्तव्य मानता हूँ। "पालि साहित्य का इतिहास" के समान इस पुस्तक को भी उन्होंने बड़ी सावधानी और निर्दोषता के साथ छापा है। मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।

दिल्ली

१०—३—६१

भरतसिंह उपाध्याय

वस्तुकथा

प्रस्तुत पुस्तक का उद्देश्य पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं के आधार पर बुद्धकालीन भारत के भूगोल का अध्ययन प्रस्तुत करना है। इस प्रकार का अध्ययन भारतीय साहित्य की आज एक बड़ी आवश्यकता है। न मालूम हमारे कितने विस्मृत ऐतिहासिक नगर और गाँव पालि तिपिटक के पृष्ठों में साँसें ले रहे है। पालि तिपिटक ऐसे विवरणों से भरा पड़ा है जिनका भौगोलिक महत्व अत्यन्त उच्च कोटि का है और जो हमारे अतीत जीवन के कई अन्धकारावृत पक्षों को उद्घाटित करने वाला है। वे असंख्य नगर, निगम और गाँव जहाँ तथागत ने पदयात्रा की, वे नदियाँ, पर्वत, झीलें और भूमियाँ जो उनकी चरण-धूलि से पवित्र हुई, वे हमारे मगध और कोसल जैसे राज्य, अंग, काशी, चेदि और कुरु जैसे जनपद और शाक्य, कोलिय और लिच्छवि जैसे गण-तन्त्र जिनमे होकर तथागत ने अपनी चारिकाएँ की, वे सड़कें और मार्ग जिन्होंने नमित होकर तथागत के चरणों को छुआ, वे असंख्य जन-समूह जो नाना जनपदों से भगवान् शाक्यमुनि की शरण मे आये और उनके उपदेशामृत से तृप्त हुए, वे जन-जातियाँ और वे उद्योग-केन्द्र, वे हमारी स्थलीय और सामुद्रिक व्यापारिक परम्पराएँ, जिन सब का विवरण पालि तिपिटक मे है, उस भौगोलिक चित्र की ओर इंगित करती है जो हमारे देश का करीब २५०० वर्ष पूर्व था। पालि तिपिटक की इसी सूचना पर आधारित और प्रामाण्य में उस के अधीन वह सूचना का आगार है जो उसके उपकारी साहित्य, विशेषतः उसकी अट्ठकथाओं, मे निहित है। सूचना के इस अगाध महासागर की अभी पूरी खोज नहीं हुई है। अट्ठकथाओं के सहित पालि तिपिटक के अनुशीलन से और उसमें से भौगोलिक सूचना के सावधानीपूर्वक निकालने और संग्रह करने से एक ऐसी महत्वपूर्ण सामग्री हमारे हाथ लग सकती है जिसके आधार पर बुद्धकालीन भारत के भूगोल का पुनर्निर्माण किया जा सकता है। इस प्रकार के पुनर्निर्माण की कितनी बड़ी आवश्यकता है, यह इसी बात से जाना जा सकता है कि इस

दिशा मे अब तक जो काम किया गया है, वह अत्यन्त अल्प और नगण्यप्राय ही है।

पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओ के आधार पर बुद्धकालीन भारत के भूगोल का कोई परिपूर्ण और शृंखलाबद्ध अध्ययन अभी अंग्रेजी या अन्य किसी विदेशी भाषा मे प्रकाशित नही हुआ है। हिन्दी या किसी अन्य भारतीय भाषा की तो कोई बात ही नही, जहाँ पालि का अनुशीलन अभी अपनी शैशवावस्था मे ही है। अंग्रेजी मे इस विषय पर लिखी जाने वाली प्रथम पुस्तक डॉ० विमलाचरण लाहा-कृत "ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज़म" है, जो लन्दन से सन् १९३२ मे प्रकाशित हुई थी। डॉ० लाहा ने यह पुस्तक पूर्वकालीन पालि ग्रन्थो के आधार पर लिखी है, परन्तु जिन स्रोतो से सामग्री सकलन का उन्होने प्रयत्न किया है, उनका एक अत्यन्त अल्प अश ही वे यहाँ उपस्थित कर सके है। न तो पालि तिपिटक का ही और न विशाल अट्ठकथा-साहित्य का ही परिपूर्ण और समुचित उपयोग डॉ० लाहा इस ग्रन्थ मे कर सके है। स्वय लगता है कि इस कमी की सम्यक् अनुभूति उन्हे स्वय रही है और उसकी पूर्ति की निरन्तर चेष्टा उन्होने अपने 'हिस्ट्री ऑव पालि लिटरेचर", दो भाग, लन्दन, १९३३, के परिशिष्ट 'ए" मे, 'ज्योग्रेफीकल एसेज़", प्रथम भाग, कलकत्ता, १९३८, मे, "इण्डिया एज़ डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्स्ट्स् ऑव बुद्धिज़म एण्ड जैनिज़म', लन्दन, १९४१, के प्रथम परिच्छेद मे, "इण्डालाजीकल स्टडीज़", भाग द्वितीय कलकत्ता १९५२, और भाग तृतीय, इलाहाबाद, १९५४, मे तथा अन्य कई स्फुट निबन्धो मे की है, जहाँ एक ही सामग्री का अनेक जगह सकलित करने की पुनरुक्ति भी काफी की गई है। फिर भी पालि स्रोतो से बुद्धकालीन समाज, इतिहास, भूगोल और आर्थिक जीवन सम्बन्धी जितनी सामग्री सकलित करने का प्रशसनीय उद्योग डॉ० लाहा ने अपने विभिन्न ग्रन्थो और स्फुट निबन्धो मे किया है, उतना सम्भवत किसी एक विद्वान् के विषय मे नही कहा जा सकता। अत उनकी 'ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज़म" भी एक प्रेरणाप्रद रचना अवश्य है, परन्तु जैसा हम अभी कह चुके है, वह एक अपूर्ण अध्ययन है और उसमे पूर्वकालीन पालि ग्रन्थो का अधूरा ही उपयोग किया गया है। अनेक ग्राम, नगर आदि ऐसे है जो बुद्ध-काल मे प्रसिद्ध थे और जहाँ की यात्रा भगवान् बुद्ध ने की थी, परन्तु इस ग्रन्थ मे उनका नामोल्लेख तक नही है। इस प्रकार के स्थानो मे उजुञ्ञा, उत्तर, उत्तरका,

ओपसाद, कंककरपत्त, किम्बिला, चण्डलकप्प, आतुमा, तोदेय्य, भद्दवती, मेदलुम्प (मेतलूप), मातुला, वेबन्जा, माधुक, सालवतिका और सज्जनेल जैसे बीसो नाम गिनाये जा सकते है। मकुल पर्वत पर भगवान् ने अपना छठा वर्षावास किया था और बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद की दसवो वर्षा उन्होने पारिलेय्यक वन मे बिताई थी। इन दोनो स्थानो का इस पुस्तक मे नामोल्लेख तक नही है। सुह्म (सुम्भ) जनपद और उसके प्रसिद्ध कस्बे सेतक, सेदक या देमक तक का उल्लेख नही किया गया है। इसी प्रकार अन्य कई जनपद और उनके नगर भी रह गये है। जिन नगरों, निगमो, ग्रामो, नदियो, पर्वतो, आरामो और चेतियो (चैत्यो) के विवरण डॉ० लाहा ने दिये भी है, उनको भी अग्रेजी वर्णमाला के क्रम से कोश-रूप मे सूचीबद्ध कर दिया है। (देखिये पृष्ठ २३–४७, ५१–५५, ५६–५९, ६१–६७)। इसलिये उनकी भौगोलिक रूपरेखा स्पष्ट नही हो पाई है। कुछ स्थल इस पुस्तक के चिन्त्य भी है, जिन पर हम अपने विषय का विवेचन करते समय प्रकाश डालेंगे। फिर भी हमे यह अवश्य कह देना चाहिये कि "ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज़म' एक स्थायी महत्व की रचना है और डॉ० मललसेकर ने उसे अपनी "डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स" मे अनेक जगह उद्धृत किया है।

डॉ० लाहा के प्राचीन भारतीय भौगोलिक अध्ययन की चरम परिणति उनके अभी हाल मे प्रकाशित "हिस्टॉरिकल ज्याग्रेफी ऑव एन्शियण्ट इण्डिया" (पेरिस, १९५४) ग्रन्थ के रूप मे हुई है। इस ग्रन्थ का विषय सम्पूर्ण प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक भूगोल का विवेचन करना है और स्रोतो का क्षेत्र भी विस्तृत और व्यापक है। अत जहाँ तक पालि साहित्य के आधार पर बुद्धकालीन भूगोल का सम्बन्ध है, उसे एक गौण और अनुपात के अनुसार ही स्थान यहाँ मिल सका है। इसलिये इस ग्रन्थ के सम्बन्ध मे भी बुद्धकालीन भूगोल के विषय को लेकर सामग्री की अपूर्णता की वही बात कही जा सकती है, जो 'ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज़्म' के सम्बन्ध मे। कुछ असगतियाँ भी यहाँ चली आई है। उदाहरणतः इस एक ही पुस्तक मे "प्राचीन भारत" और "प्राचीन भारत के महाजनपद" के शीर्षकों से जो भारत के दो मानचित्र दिये गये है, उनमे कम्बोज और वाह्लीक जनपदो की इतनी विभिन्न स्थितियाँ दिखा दी गई है कि उनमे कुछ साम्य ही नही है, और इन दोनो जनपदो के विवरण जो पुस्तक मे दिये गये हैं (क्रमशः पृष्ठ ८८-

८९ तथा १३३) उनसे एक ही स्थिति का मेल खा सकता है, दोनों का बिलकुल नहीं। इसी प्रकार की असंगतियों के कुछ अन्य उदाहरण भी इस पुस्तक से दिये जा सकते हैं।

डॉ० विमलाचरण लाहा के उपर्युक्त ग्रन्थ या ग्रन्थों के अलावा अन्य कोई स्वतन्त्र विवेचनात्मक ग्रन्थ बुद्ध के जीवनकालीन भारतीय भूगोल पर अंग्रेजी या अन्य किसी विदेशी भाषा में, जहाँ तक लेखक को मालूम है, लिखा हुआ नही मिलता। हाँ, कुछ ग्रन्थ ऐसे अवश्य हैं जिनका दूर का सम्बन्ध बुद्धकालीन भूगोल से है, परन्तु जो स्वयं न तो पालि तिपिटक या उसके अट्ठकथा-साहित्य के आधार पर लिखे गये हैं और न बुद्ध के जीवनकालीन भूगोल से सम्बन्धित हैं। ऐसे ग्रन्थो में सबसे अग्रणी स्थान जनरल कनिंघम-लिखित "एन्शियण्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया", प्रथम खण्ड, बौद्ध युग, का है, जो सन् १८७१ में लन्दन से प्रकाशित हुआ था। इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ में, जो वास्तविक समालोचनात्मक अनुसन्धान पर आधारित है, लेखक ने अलक्षेन्द्र के भारत-आक्रमण (चतुर्थ शताब्दी ईसवी-पूर्व) के ग्रीक विवरणों और चीनी यात्री यूआन् चुआङ् के यात्रा-विवरण (सातवी शताब्दी ईसवी) के आधार पर प्राचीन भारतीय भूगोल का विवरण दिया है। अतः जिस काल के भूगोल की रूपरेखा कनिंघम ने अपने उपर्युक्त ग्रन्थ में प्रस्तुत की है, वह चतुर्थ शताब्दी ईसवी-पूर्व से लेकर सातवीं शताब्दी ईसवी तक का है। चूँकि चीनी यात्री यूआन् चुआङ् मुख्यतः एक बौद्ध भिक्षु था और उसने प्रधानतः उन स्थानों की यात्रा की थी जो भगवान् बुद्ध के जीवन और कार्य से सम्बन्धित थे, अतः उसके विवरण के आधार पर तत्कालीन भारतीय भूगोल का विवेचन करते हुए जनरल कनिंघम ने अनिवार्य रूप से अनेक बौद्ध स्थानों की खोजें की हैं, जिनका स्थायी और आधारभूत महत्व है। यद्यपि जनरल कनिंघम के द्वारा की हुई अनेक बौद्ध स्थानों की आधुनिक पहचानें बाद की खोजों के द्वारा अप्रामाणिक सिद्ध कर दी गई हैं और कनिंघम का मनमाने ढंग से भारतीय स्थानों के चीनी रूपान्तरों को तोड़ना-मरोड़ना और अपनी मान्यता के अनुकूल लाने के लिये यूआन् चुआङ् के यात्रा-विवरण के पाठ के उत्तर-पश्चिम को उत्तर-पूर्व पढ़ लेना[1]

१. देखिये एन्शियण्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५६६।

या पूर्व को पश्चिम पढ़ लेना[1], ठीक वैज्ञानिक मार्ग नहीं माना जा सकता, परन्तु फ़िर भी यह निश्चित है कि भारतीय पुरातत्व और विशेषतः प्राचीन भारतीय भूगोल के सम्बन्ध में जनरल कनिंघम एक मार्ग-निर्माता थे और उनके सामने वे सब कठिनाइयाँ थीं जो एक मार्ग-निर्माता के सामने आया करती हैं। एक सबसे बड़ी कमी जो कनिंघम के अध्ययन में है, वह यह है कि उसे पालि साहित्य का सहारा प्राप्त नहीं है। इस प्रकार उनके अध्ययन की पृष्ठभूमि ही लुप्त है। हम जानते हैं कि पालि टैक्स्ट् सोसायटी, जिसने सर्वप्रथम रोमन लिपि में पालि ग्रन्थों के प्रकाशन और उनके अंग्रेजी अनुवादों का कार्य हाथ में लिया, सन् १८८१ में लन्दन में रायस डेविड्स् के द्वारा स्थापित की गई थी और उसका सर्वप्रथम प्रकाशन सन् १८८२ में निकला था। अतः पालि स्रोतों का उपयोग "एन्शियण्ट ज्योग्रेफ़ी ऑव इण्डिया" (लन्दन, १८७१) के लेखक के लिये स्वाभाविक तौर पर सम्भव नहीं हो सकता था। यह खेद की बात है कि जनरल कनिंघम के इस ग्रन्थ के द्वितीय संस्करण (कलकता, १९२४) के सम्पादक श्री सुरेन्द्रनाथ मजूमदार शास्त्री ने अपनी "टिप्पणियों" में कहीं-कहीं पौराणिक उद्धरण तो अनावश्यक रूप से काफ़ी दिये हैं, परन्तु ग्रन्थ के मौलिक विषय से सम्बन्धित जिन पालि विवरणों की आवश्यकता थी उनकी नितान्त उपेक्षा कर दी गई है। सम्भवतः श्री मजूमदार शास्त्री यह भूल गये हैं कि जिस ग्रन्थ का वे सम्पादन कर रहे हैं और जिस पर "नोट्स्" लिख रहे हैं, उसका सम्बन्ध मुख्यतः बौद्ध स्थानों के भूगोल से है, पौराणिक भूगोल के विवेचन से नहीं।

चीनी यात्रियों के यात्रा-विवरण विशेषतः बौद्ध स्थानों के वर्णनों से सम्बन्धित हैं। उनके विदेशी भाषाओं में अनुवाद हुए हैं, जिन्हें हम बुद्धकालीन भूगोल पर विवेचनात्मक ग्रन्थ तो नहीं कह सकते, क्योंकि वे काफ़ी उत्तरकालीन हैं और फिर अनुवादकों का मुख्य उद्देश्य अनुवाद करना रहा है, भौगोलिक विवेचन नहीं। फिर भी इन अनुवादों का हमारे अध्ययन की दिशा में एक मूल्य अवश्य है, क्योंकि वे अन्ततः उन स्थानों का ही विभिन्न युगों में वर्णन उपस्थित करते हैं जो मूलतः

---

१. देखिये वाटर्स की भी इस सम्बन्ध में शिकायत, औन् यूआन् च्वाङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३०८।

भगवान् बुद्ध के जीवन और कार्य से सम्बन्धित रहे थे। अतः विषय से दूरतः सम्बन्धित होने पर भी उनका उल्लेख यहाँ कर देना अनावश्यक न होगा। इस प्रकार के अनुवादों में जे० लेज्जे कृत "दि ट्रेविल्स ऑव फा-हयान", जो फा-ह्यान (३९९-४१४ ई०) के यात्रा-विवरण "फो-क्यू-की" का अनुवाद है, सन् १८८६ में ऑक्सफर्ड से प्रकाशित हुआ था। इसी यात्रा-विवरण का एक दूसरा अनुवाद एच० ए० गाइल्स ने "दि ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान ऑर रिकार्ड ऑव बुद्धिस्ट किंग्डम्स" शीर्षक से किया है, जो केम्ब्रिज से सन् १९२३ में प्रकाशित हुआ है। इसी की द्वितीय आवृत्ति अभी हाल में सन् १९५६ में रटलेज एण्ड केगन पॉल, लन्दन, द्वारा की गई है। चीनी यात्री सुंग्-युन् और हुइ-सेंग् (६०० ई०) के यात्रा-विवरणों का अनुवाद एस० बील ने "बुद्धिस्ट रिकार्ड्स् ऑव दि वेस्टर्न वर्ल्ड" के प्रथम भाग में किया है और ओ-कुंग् नामक चीनी यात्री (८०० ई०) का यात्रा-विवरण सन् १८७५ के "जर्नल एशियाटीक" में अनुवादित किया गया है। प्रसिद्धतम चीनी यात्री यूआन् चुआङ् (६२९-६४५ ई०) का यात्रा-विवरण, जिसका मौलिक चीनी नाम "सि-यु-कि" है, प्रथम बार फ्रेंच विद्वान् एम० स्टेनिसलेस जुलियन द्वारा फ्रेंच भाषा में अनुवादित किया गया, जो सन् १८५७-५८ में पेरिस से प्रकाशित हुआ। बाद में अंशतः इस फ्रेंच अनुवाद के आधार पर और अंशतः चीनी मूल का भी आश्रय लेकर एस० बील ने इस महत्वपूर्ण यात्रा-विवरण का "बुद्धिस्ट रिकॉर्ड्स् ऑव दि वेस्टर्न वर्ल्ड" शीर्षक से अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया, जो दो भागों में सन् १८८४ में लन्दन से प्रकाशित हुआ। सर्वाधिक प्रामाणिक और व्याख्या-सहित अनुवाद इस यात्रा-विवरण का थॉमस वाटर्स ने "औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया" शीर्षक से किया, जिसे टी० डब्ल्यू० रायस डेविडस् और एस० डब्ल्यू० बुशल ने योग्यतापूर्वक सम्पादित कर रॉयल एशियाटिक सोसायटी, लन्दन से सन् १९०४–१९०५ में, दो भागों में, प्रकाशित करवाया है। इ-त्सिङ् (६७३ ई०) के यात्रा-विवरण का अंग्रेजी अनुवाद जापानी विद्वान् जे० तकाकुसु ने "ए रिकार्ड ऑव दि बुद्धिस्ट रिलिजन ऐज प्रेक्टिज्ड इन इण्डिया एण्ड दि मलाया आर्कीपेलेगो" शीर्षक से किया है, जो सन् १८९६ में ऑक्सफर्ड से प्रकाशित हुआ। हम यहाँ इन चीनी यात्रियों में से किसी के भी यात्रा-विवरण के हिन्दी अनुवाद का सहर्ष उल्लेख करते, परन्तु खेद है कि हममें से फ्रेंच विद्वान् एम० स्टेनिसलेस जुलियन के समान कोई ऐसा सुकृती नहीं है जिसने

पूरे बीस वर्ष तक चीनी (और संस्कृत) भाषा का एकनिष्ठ अध्ययन केवल यूआन् चुआङ् के यात्रा-विवरण का अनुवाद करने के लिये किया हो। हमारे अधिकतर हिन्दी अनुवाद अंग्रेजी अनुवादों के ही अनुवाद हैं। अतः वस्तुतः उल्लेखनीय कुछ नहीं है।

कुछ ऐसे सन्दर्भ ग्रन्थों का भी उल्लेख हमें यहाँ कर देना चाहिये जो प्रस्तुत विषय पर विवेचनात्मक ग्रन्थ तो नहीं कहे जा सकते, परन्तु जिनका इस प्रकार के अध्ययन में मूल्य और उपयोग अवश्य है। इस श्रेणी के ग्रन्थों में श्री नन्दोलाल दे-कृत "दि ज्योग्रेफीकल डिक्शनरी ऑव एन्शियण्ट एण्ड मेडिवल इण्डिया" (द्वितीय संस्करण, लन्दन, १९२७) एक उल्लेखनीय रचना है। परन्तु जहाँ तक बुद्धकालीन भौगोलिक स्थानों का सम्बन्ध है, उनका एक काफी कम अंश ही यहाँ आ सका है और जो लिया भी गया है उस पर भी अत्यन्त संक्षेप में निर्णय दे दिया गया है (जैसा एक कोश-ग्रन्थ में अनिवार्य है) और पहचानों के सम्बन्ध में सकारण विवेचन प्रस्तुत नहीं किये गये हैं। इस भौगोलिक कोश से अधिक उपयोगी और स्थायी मूल्य वाली एक दूसरी संकलनात्मक रचना है। प्रसिद्ध सिंहली विद्वान् डॉ० जी० पी० मललसेकर-कृत "डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स", जो सन् १९३७ में लन्दन से प्रकाशित हुई। पालि टैक्स्ट सोसायटी द्वारा प्रकाशित मूल पालि ग्रन्थ और उनके अंग्रेजी अनुवादों की अनुक्रमणिकाओं के आधार पर यह नाम-कोश तैयार किया गया है और पालि अनुशीलन में इसका वही महत्व है जो वैदिक साहित्य के स्वाध्याय में मेकडोनल और कीथ द्वारा संकलित "दि वैदिक इण्डेक्स ऑव नेम्स एण्ड सब्जैक्ट्स्" का या महाभारत के सम्बन्ध में सोरेन्सेन-कृत "इण्डेक्स टू महाभारत" का। फिर भी, जैसा हम कह चुके हैं, यह एक नाम-कोश ही है, किसी एक विषय पर विवेचनात्मक ग्रन्थ नहीं। रतिलाल मेहता ने केवल जातकों में उल्लिखित भौगोलिक नामों की एक सूची, जो स्वयं एण्डरसन-कृत जातकों के "इण्डेक्स" (जातक, जिल्द सातवीं, पालि टैक्स्ट् सोसायटी, लन्दन, १८९७) पर आधारित है, कोश रूप में ही अपने ग्रन्थ "प्री-बुद्धिस्ट इण्डिया" (बम्बई, १९३९) के पृष्ठ ३६८-४५५ में दी है, जो उस रूप में उपयोगी है, परन्तु पूर्ण नहीं कही जा सकती। हिंगुल पब्बत का उल्लेख कुणाल जातक (जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ४१५—पालि टैक्स्ट् सोसायटी संस्करण; हिन्दी अनुवाद, पञ्चम

खण्ड, पृष्ठ ५०१) में है और इसी प्रकार धोनसाख जातक (जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ १५७—पालि टैक्स्ट् सोसायटी संस्करण; हिन्दी अनुवाद, तृतीय खण्ड, पृष्ठ ३२०–३२१) में सुंसुमारगिरि का। परन्तु इन दोनों नामों का रतिलाल मेहता द्वारा प्रस्तुत सूची में उल्लेख नहीं हैं। इसी प्रकार असातरूप जातक (जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ ४०७—पालि टैक्स्ट् सोसायटी संस्करण; हिन्दी अनुवाद, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ५७४) में (कोलिय जनपद के) कुण्डिय नामक नगर तथा उसके पास के कुण्डधान वन का उल्लेख है, जिसे श्री रतिलाल मेहता द्वारा प्रस्तुत सूची में कोई स्थान नहीं मिल सका है। अन्य कई महत्वपूर्ण स्थानों के नाम भी इसी प्रकार छूट गये हैं।

बुद्धकालीन भूगोल के कतिपय अंशों से सम्बन्धित कुछ स्फुट अध्ययन का भी हमें यहाँ उल्लेख कर देना चाहिए, जो निबन्धों या पुस्तिकाओं आदि के रूप में विकीर्ण रूप से प्रकाशित हुआ है। विशेषत: पालि टैक्स्ट् सोसायटी, रॉयल एशियाटिक सोसायटी, एशियाटिक सोसायटी ऑव बंगाल और बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी (बाद में बिहार रिसर्च सोसायटी) के जर्नलों में, आर्कलोजीकल सर्वे ऑव इण्डिया की वार्षिक रिपोर्टों और मिमोयर्स में, ऑल इण्डिया ऑरियन्टल कान्फ्रेंस के वार्षिक विवरणों में, इण्डियन एण्टिक्वेरी मे, इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली में और महाबोधि सभा के अंग्रेजी मासिक "दि महाबोधि" में कुछ स्फुट विवेचन हमें कभी-कभी बुद्धकालीन भूगोल के कुछ पक्षों से सम्बन्धित भी मिल जाते है, जिनमें कहीं-कहीं पालि स्रोतों का भी आश्रय लिया गया है। इसी प्रकार इम्पीरियल और डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियरों का भी प्राचीन स्थानों की खोज में अपना महत्व है। इम्पीरियल गज़ेटियर ऑव इण्डिया (नया संस्करण, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ७६-८७) में फ्लीट ने जो भौगोलिक टिप्पणी दी है, वह महत्वपूर्ण है। विभिन्न डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियरों से भी आवश्यकतानुसार कुछ सहायता ली जा सकती है,- यद्यपि मेरठ, मुरादाबाद, बरेली, इटावा और एटा जैसे हमारी दृष्टि से कई महत्व पूर्ण जिलों के विवरणों में बुद्धकालीन भौगोलिक इतिहास के सम्बन्ध में प्राय: कुछ नहीं कहा गया है। हमें यह ध्यान में रखना ही चाहिये कि ये गज़ेटियरें काफी समय पूर्व लिखी गई सरकारी रिपोर्टें हैं और प्राचीन इतिहास या भूगोल का विवेचन करना उनका मुख्य प्रयोजन नहीं है।

बिहार सरकार के जन-सम्पर्क विभाग ने नालन्दा, राजगृह, वैशाली और बोध-गया जैसे बुद्धकालीन प्रसिद्ध स्थानों पर कुछ विवरण-पुस्तिकाएँ प्रकाशित की हैं, जिन्हें निराशाजनक ही कहा जा सकता है। पालि विवरणों के आधार पर उनमें पुनर्जीवन के संचार का कोई प्रयत्न उपलक्षित नहीं होता।

डॉ० विमलाचरण लाहा ने "आर्केलोजीकल सर्वे ऑव इण्डिया" के विभिन्न मिमोयरों में तथा 'इण्डोलोजीकल स्टडीज' (भाग तृतीय) में, अयोध्या, कपिलवस्तु, मथुरा, चम्पा, मिथिला, वैशाली, श्रावस्ती, कौशाम्बी, राजगृह, तक्षशिला और पाटलिपुत्र आदि बुद्धकालीन नगरों पर सुन्दर लेख लिखे हैं, जो पालि तथा अन्य भारतीय साहित्य सम्बन्धी स्रोतों पर आधारित हैं। इन विवरणों में भिन्न-भिन्न परम्पराओं को बिना काल-क्रम का ध्यान किये मिलाकर डॉ० लाहा ने कहीं-कहीं उसी प्रकार की अस्तव्यस्तता और गड़बड़ी पैदा की है, जिस प्रकार की बुद्ध-जीवनी के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न परम्पराओं को बिना विवेक के मिलाकर उनसे पूर्व एच० कर्न और रॉकहिल ने की थी, जिसे विद्वानों ने ठीक नहीं समझा है।

डॉ० वेणीमाधव बड़ुआ लिखित "गया एण्ड बुद्धगया" (संशोधित संस्करण, कलकत्ता, १९३५) अपने विषय पर एक विशद और विद्वत्तापूर्ण रचना है, जो पालि साहित्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

बाबू पूर्णचन्द्र मुखर्जी लिखित "ए रिपोर्ट औन् ए टूर ऑव एक्सप्लोरेशन ऑव दी एंटीक्विटीज़ इन दि तराई, नेपाल, एण्ड दि रिजन ऑव कपिलवस्तु" (कलकत्ता, १९०१) अपने विषय की एक अत्यन्त प्रामाणिक रचना है। इसमें जो निष्कर्ष निकाले गये हैं, वे आज भी मान्य हैं। शाक्य और कोलिय गणतन्त्रों के अनेक बुद्ध-कालीन स्थानों की आधुनिक पहचान के सम्बन्ध में इस खोजपूर्ण 'प्रतिवेदन' से अधिक अभी कुछ नहीं कहा जा सकता। और न तब तक सम्भवतः कहा जा सकेगा जब तक इस क्षेत्र की खुदाई का काम अग्रसर नहीं होता।

श्री नगेन्द्रनाथ घोष-लिखित "अर्ली हिस्ट्री ऑव कौशाम्बी" (इलाहाबाद, १९३५) कौशाम्बी के ऐतिहासिक भूगोल पर एक सुन्दर रचना है और इसके दो परिच्छेद (द्वितीय और तृतीय) बुद्धकालीन कौशाम्बी से सम्बद्ध हैं, जहाँ पालि स्रोतों से भी कुछ (केवल कुछ) सामग्री संकलित की गई है। यह खटकने वाली बात ही मानी जायगी कि कौशाम्बी के इतिहास पर लिखी जाने वाली इस पूरी पुस्तक में कहीं भी कौशाम्बी

के प्रसिद्ध बदरिकाराम नामक विहार का उल्लेख तक नहीं है और न कौशाम्बी और उसके घोषिताराम के समीप स्थित प्लक्षगुहा (पिलक्खगुहा) का ही। लेखक ने कौशाम्बी की उत्पत्ति के सम्बन्ध में पुराणों के आधार पर तो कुछ लिखा है, परन्तु पालि परम्परा के आधार पर कुछ नहीं कहा है, जब कि बुद्धघोष द्वारा प्रदत्त प्रभूत सामग्री उसे इस सम्बन्ध में उपलब्ध हो सकती थी और उसका तुलनात्मक उपयोग भी लाभदायक हो सकता था।

ए० फुशेर की पुस्तक "नोट्स् ऑन दि एन्शियण्ट ज्योग्रेफी ऑव गन्धार" (अंग्रेजी अनुवाद, कलकत्ता, १९१५) यूआन् चुआङ् के इस प्रदेश-सम्बन्धी यात्रा-विवरण पर टिप्पणी के रूप में है और गन्धार के प्राचीन भूगोल पर आज भी एक प्रामाणिक रचना मानी जा सकती है। इस पुस्तक में पुरुषपुर (पेशावर) और पुष्करावती तथा उनके अनेक स्तूपों के भग्नावशेषों के जो मानचित्र दिये गये है, वे यह बतलाते हैं कि यूरोपीय विद्वान् चाहे जितनी अल्प मात्रा मे काम करे फिर भी उसमें उनकी अपनी एक अलग छाप रहती है।

साँची और तक्षशिला पर दो पुस्तके सर जोन्ह मार्शल ने लिखी थी, "गाइड टू साँची" (द्वितीय संस्करण, दिल्ली, १९३६) और "गाइड टू टेक्सिला" (तृतीय संस्करण, दिल्ली १९३७) जिनके आधार पालि विवरण न होकर प्राचीन वास्तु-कला सम्बन्धी भग्नावशेष ही हैं। कहने की आवश्यकता नही कि ये सब निबन्ध और पुस्तिकाएँ बुद्धकालीन भूगोल के स्वतन्त्र और व्यवस्थाबद्ध अध्ययन के स्थान को नहीं ले सकतीं।

पालि स्रोतों के आधार पर जो अत्यन्त अल्प और स्फुट कार्य बुद्धकालीन भूगोल के सम्बन्ध में अंग्रेजी में किया गया है, उसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके है। अब हम हिन्दी की ओर दृष्टिपात करते हैं। हिन्दी मे यद्यपि एक भी स्वतन्त्र ग्रन्थ इस विषय पर नहीं है, परन्तु महापण्डित राहुल सांकृत्यायन द्वारा तैयार की गई सूचियों में, जो उनके ग्रन्थ "बुद्धचर्या" के द्वितीय परिशिष्ट में, विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद) के अन्त में तथा दीघ-निकाय के हिन्दीं अनुवाद (जिसमें उन्हें भिक्षु जगदीश काश्यप का भी सहयोग मिला है) के अन्त में परिशिष्ट के रूप में तथा इसी प्रकार मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद) के परिशिष्ट के रूप में, संलग्न हैं, हमें उनकी सूक्ष्म सूझ-बूझ और बुद्धकालीन भूगोल के अगाध ज्ञान के ऐसे साक्ष्य मिलते हैं, जिनका परिचय इस

क्षेत्र में काम करने वाले किसी आधुनिक विद्वान् ने प्रायः नहीं दिया है। उदाहरणत. किम्बिला, कीटागिरि, एरकच्छ या एरककच्छ, मच्छिकासण्ड, सेतकण्णिक, कजंगल, भग्ग देश और उसके सुंसुमारगिरि जैसे कई स्थानों, नगरों और प्रदेशों के सम्बन्ध में उन्होंने नई बातें कही हैं, जो पहले के विद्वानों के द्वारा नहीं कही गई हैं। अपने विस्तृत पालि साहित्य के अध्ययन के आधार पर और एक चिरन्तन प्रवासी की तरह स्वयं स्थानों की यात्रा कर और उनका निरीक्षण कर महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने अनेक स्थानों की पहचान के सम्बन्ध में ऐसे सहेतुक और अन्तर्दृष्टिपूर्ण सुझाव दिये हैं, जो भारतीय मनीषा के लिये गौरव-स्वरूप हैं। यही कारण है कि हिन्दी ग्रन्थ "बुद्धचर्या" को डॉ० विमलाचरण लाहा के प्रसिद्ध खोजपूर्ण ग्रन्थ "ट्राइब्स इन एन्शियण्ट इण्डिया" (पूना, १९४३) में भग्ग देश और उसके सुंसुमारगिरि के सम्बन्ध में उद्धृत किया गया है, जिससे स्वयं डॉ० लाहा के अध्ययन को महत्व मिला है। हम अपने अध्ययन में यथास्थान राहुल जी के अनेक निष्कर्षों और भौगोलिक मन्तव्यों का उल्लेख करेंगे और कहीं-कहीं आवश्यकतानुसार उनसे अपना मतभेद भी प्रकट करेंगे। भिक्षु जगदीश काश्यप ने "उदान" के हिन्दी अनुवाद के अन्त में तथा भिक्षु धर्मरक्षित त्रिपिटकाचार्य के सहयोग से संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद) के दो भागों के अन्त में जो नाम-सूचियाँ दी हैं, वे बुद्धकालीन भूगोल के अध्ययन में उपयोगी हैं।

डॉ० राजबली पाण्डेय ने "गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियों का इतिहास" (गोरखपुर, सं० २००३ वि०) में बुद्धकालीन महाजनपदों और विशेषतः कपिलवस्तु के शाक्यों, रामग्राम के कोलियों, पिप्पलिवन के मौर्यों और कुशीनगर और पावा के मल्लों के गणतन्त्रों के भौगोलिक पक्षों पर अच्छा प्रकाश डाला है, यद्यपि पालि स्रोतों का पूर्ण और विधिवत् उपयोग नहीं किया गया है। कहीं-कहीं असावधानी और अवैज्ञानिक अध्ययन के भी लक्षण दिखाई पड़ते हैं। उदाहरणतः पृष्ठ ६८ पर महावस्तु को पालि ग्रन्थ के रूप मे निर्दिष्ट कर दिया गया है। पृष्ठ ७८ पर मल्ल राष्ट्र के दक्षिण में मौर्य राज्य को बताया गया है और पृष्ठ ७४ पर मौर्यों के राज्य के दक्षिण-पश्चिम में कोलियों के राज्य को। यदि ये दोनों बातें ठीक हैं तो कोलियों का राज्य मल्ल राष्ट्र के पश्चिम में किस प्रकार हो सकता है ? परन्तु यही बात लेखक ने पृष्ठ ७८ पर लिखी है। दीपवंस और महावंस में न कही गई बातों

का इन ग्रन्थों पर आरोप लेखक ने किया है (पृष्ठ ७८)। इसे अवैज्ञानिक ही कहा जा सकता है। फिर भी साक्षात् अवेक्षण से प्राप्त ज्ञान और अपने विषय के साथ आत्मीयता, इस ग्रन्थ की अपनी विशेषताएँ हैं जो इस प्रकार के अध्ययन-ग्रन्थों में प्रायः नहीं मिलतीं।

भिक्षु धर्मरक्षित त्रिपिटकाचार्य-लिखित "कुशीनगर का इतिहास" (द्वितीय संस्करण, बुद्धाब्द २४९३) कुशीनगर के भौगोलिक इतिहास पर एक प्रामाणिक रचना है जो पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं पर आधारित है। विशेषतः कुछ नदियों और तराई के कुछ स्थानों के सम्बन्ध में भिक्षु धर्मरक्षित जी ने नई बातें कही हैं, जिनकी प्रामाणिकता अभी सिद्ध होना बाकी है। एक संक्षिप्त लेख भी "बुद्धकालीन भारत का भौगोलिक परिचय" शीर्षक भिक्षु धर्मरक्षित त्रिपिटकाचार्य ने लिखा है, जो संयुत्त-निकाय के हिन्दी अनुवाद के पहले भाग की भूमिका के रूप में भी निकला था और अलग पुस्तिका के रूप में भी प्राप्त है। अत्यन्त संक्षिप्त होते हुए भी यह लेख महत्वपूर्ण है।[1]

"वैशाली अभिनन्दन ग्रन्थ" (श्री जगदीशचन्द्र माथुर आई० सी० एस० तथा योगेन्द्र मिश्र द्वारा सम्पादित, वैशाली संघ, वैशाली, बिहार, १९४८) वैशाली के सम्बन्ध में कई अधिकारी विद्वानों के लेखों और भाषणों का संग्रह है। इसके कुछ अंश अंग्रेजी में हैं और कुछ हिन्दी में और इसी प्रकार स्रोत भी विभिन्न हैं। महाबोधि सभा के हिन्दी मासिक "धर्मदूत" में वैशाली, पावा, देवदह और राजगृह आदि बौद्ध स्थानों के सम्बन्ध में खोजपूर्ण लेख प्रकाशित हुए हैं।

बुद्धकालीन भूगोल के सम्पूर्ण पूर्वगत अध्ययन की पृष्ठभूमि में इस प्रस्तुत निबन्ध का क्या स्थान है, यह कहना लेखक के लिये अत्यन्त कठिन है। इतना अवश्य विनम्रता-

---

१. यद्यपि दो-एक बातें चिन्त्य हैं, जैसे कि अम्बाटक वन के मच्छिकावनमण्ड को वज्जि जनपद में दिखाना (पृष्ठ १२)। वस्तुतः मच्छिकासण्ड एक नगर था और इसके समीप अम्बाटक वन था, तथा ये दोनों स्थान, विनय-पिटक के स्पष्ट साक्ष्य पर, काशी जनपद में स्थित थे। इसी प्रकार तेलवाह नदी के तट पर स्थित अन्धपुर को मज्झिम देस में दिखाना (पृष्ठ ६) चिन्त्य है। इसे असन्दिग्ध रूप से दक्षिणापथ में होना चाहिये।

पूर्वक कहा जा सकता है कि पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं के आधार पर बुद्धकालीन भूगोल का यह प्रथम पूर्ण और शृंखलाबद्ध अध्ययन है, जिसे प्रस्तुत करने का लेखक ने प्रयत्न किया है। इसमें उसे कहाँ तक सफलता मिली है, इसका निर्णय तो अधिकारी विद्वान् ही कर सकते हैं। पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं में जो भौगोलिक सामग्री मिल सकती है, उस सब का यथासम्भव संकलन कर मैंने यहाँ व्यवस्थित अध्ययन के रूप में उसे प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। किसी पूर्वगामी विवेचनात्मक ग्रन्थ के सम्बन्ध में ऐसा नहीं कहा जा सकता। भूगोल-विज्ञान का जो रूप मैंने यहाँ लिया है और जो शैली स्वीकार की है, वह भी मेरे पूर्वगामी विद्वानों से भिन्न प्रकार की है। आधुनिक भूगोल-शास्त्र केवल पृथ्वी के धरातल, जलवायु आदि का विवरण मात्र नही है। वह पृथ्वी का अध्ययन है, परन्तु मानव और उसके सम्पूर्ण वातावरण के सम्बन्ध के साथ, जो उतना ही सांस्कृतिक भी है जितना कि भौतिक। अतः आधुनिक भूगोल के महत्वपूर्ण अंग हैं, प्राकृतिक भूगोल, राजनैतिक भूगोल, मानव-भूगोल, और आर्थिक और व्यापारिक भूगोल, जिन सब का प्रतिनिधित्व इस पुस्तक के परिच्छेद करते हैं। किसी पूर्वगामी ग्रन्थ में भूगोल-विज्ञान के सम्बन्ध में इतनी व्यापक दृष्टि को लेकर विवेचन नहीं किया गया है। जहाँ तक स्वीकृत विवेचन-शैली का सम्बन्ध है, मैंने स्रोतों के उपयोग और उनके समालोचनात्मक परीक्षण में द्विविध ढंग को अपनाया है। पहले मैंने उस सब भौगोलिक सामग्री को संकलित और व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है जो पालि तिपिटक और उसके अट्ठकथा-साहित्य में उपलब्ध है। फिर इस सब सामग्री की समीक्षा इस दृष्टि से की गई है कि अनेक बुद्धकालीन स्थानों की वर्तमान स्थितियों पर प्रकाश पड़े। बुद्धकालीन भूगोल की सबसे बड़ी समस्या वस्तुतः उन अनेक स्थानों की आधुनिक पहचान करना है जो अभी अन्धकारावृत हैं। कनिंघम और उनके बाद के पुरातत्व-विभाग के विद्वानों के प्रयत्नों के परिणाम-स्वरूप उन बौद्ध स्थानों की तो काफी खोज हो चुकी है जो यूआन् चुआङ के यात्रा-विवरण से सम्बद्ध हैं। परन्तु इनके अलावा अन्य ऐसे अनेक स्थान हैं जो बुद्ध-काल में प्रसिद्ध थे, परन्तु जिनकी यात्रा यूआन् चुआङ या अन्य चीनी यात्री नहीं कर सके थे। उनकी भी आधुनिक पहचान की पूरी खोज होनी चाहिये। मैंने भरसक प्रयत्न किया है कि इस सम्बन्ध में आवश्यक सामग्री पालि

विवरणों के आधार पर प्रस्तुत करूँ। इस प्रकार के प्रयत्नों से अनेक स्थानों की आधुनिक पहचान के सम्बन्ध में काफी अधिक प्रकाश पड़ा है, ऐसा मेरा विश्वास है। परन्तु इस विषय का परिपूर्ण अध्ययन तो तभी सम्भव हो सकेगा जब न केवल प्राचीन बौद्ध स्थानों का खनन-कार्य, जो अभी अत्यन्त प्रारम्भिक अवस्था में है, पूरा हो जायगा, बल्कि जब प्राचीन जैन साहित्य और बौद्ध संस्कृत साहित्य का भी अधिक परिपूर्ण पर्यवेक्षण इस दृष्टि से कर लिया जायगा और उनके तुलनात्मक साक्ष्य को न केवल रामायण, महाभारत और पुराणों के वर्णनों से बल्कि विदेशी स्रोतों से भी यथासम्भव मिला लिया जायगा। प्रस्तुत निबन्ध का विषय चूँकि पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं के आधार पर बुद्ध के जीवनकालीन भूगोल का विवेचन करना ही है, अतः उसका क्षेत्र सीमित है। फिर भी इस युग के स्थानों की वर्तमान पहचान करने के लिये कहीं-कही लेखक को अनिवार्यतः विस्तृत विवेचन में भी जाना पड़ा है और दूसरे स्रोतों का भी साक्ष्य लेना आवश्यक हो गया है। ऐसे स्थलों में लेखक ने यह प्रयत्न किया है कि केवल उन तथ्यों का ही साक्ष्य लिया जाय जिनसे (१) या तो विवेचित बौद्ध स्थानों की आधुनिक पहचान करने में सहायता मिलती हो, या (२) जो विवेचित विषय के किसी अंग पर अधिक प्रकाश डालते हों, या (३) जो पालि स्रोतों में प्राप्त सूचना का समर्थन करते हों या उसे पूर्णता प्रदान करने में सहायक हों। इस प्रकार पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं पर आधारित इस अध्ययन में विशेषतः चीनी यात्रियों के विवरणों और आधुनिक पुरातत्व सम्बन्धी खोजों का भी विधिवत् उपयोग किया गया है। बुद्धकालीन जनपदों, नगरों, निगमों और ग्रामों के पूर्ण विस्तृत विवरण उपलब्ध करने के अतिरिक्त यहाँ प्रथम बार भगवान् बुद्ध की चारिकाओं के भूगोल को स्पष्टतापूर्वक निरूपित करने का प्रयत्न किया गया है, जिसे भी इस अध्ययन की एक विशेषता माना जा सकता है।

यद्यपि यह पुस्तक बुद्धकालीन भारत के सर्वाङ्गीण भौगोलिक अध्ययन के रूप में ही लिखी गई है, फिर भी इसके विषय के अनेक महत्वपूर्ण पक्ष बुद्ध-पद-अंकित भूमि से ही सम्बद्ध हैं। अतः इसे यदि बुद्ध के जीवन की भौगोलिक भूमिका भी समझा जाय तो इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं। फा-ह्यान ने गृध्रकूट पर्वत-शिखर

पर रात भर दीपक जलाते हुए किसी प्रकार अपने आँसुओं को रोककर कहा था, "मैं, फा-ह्यान, इतनी देर बाद पैदा हुआ हूँ कि मैं बुद्ध से नहीं मिल सकता। मैं सिर्फ उनके चिन्हों और वास-स्थान को एकटक होकर निहार सकता हूँ।" इस पुस्तक के वर्णनों ने यदि बुद्ध के चिन्हों और वास-स्थानों के सम्बन्ध में कुछ भी इस प्रकार की छटपटाहट हमारे अन्दर पैदा की या उसकी शान्ति का उपाय किया, तो इससे बढ़कर कृतार्थता लेखक और पाठको के लिए भी और क्या होगी ?

मुझे आशा है कि पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं पर आधारित बुद्ध-कालीन भूगोल का यह अध्ययन अपने विषय सम्बन्धी ज्ञान की वृद्धि करेगा और उस विस्तृत और समृद्ध विरासत की अधिकाधिक खोज की ओर विद्वानों को प्रवृत्त करेगा जो पालि परम्परा मे निहित है।

विषय-सूची

पहला परिच्छेद

स्रोत : उनका प्रामाण्य और भौगोलिक महत्व

दूसरा परिच्छेद

जम्बुद्वीप : प्रादेशिक विभाग और प्राकृतिक भूगोल

चौथा परिच्छेद

मानव-भूगोल

पाँचवाँ परिच्छेद

आर्थिक और व्यापारिक भूगोल

परिशिष्ट

पहला परिच्छेद

स्रोत : उनका प्रामाण्य और भौगोलिक महत्व

जिन स्रोतों के आधार पर बुद्धकालीन भारत के भूगोल का यह अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, उनका रूप दो प्रकार का है। (१) मौलिक और आधारभूत स्रोत, जिनका प्रतिनिधित्व पालि तिपिटक के विभिन्न ग्रन्थ करते हैं। (२) सहायक और गौण स्रोत, जिनके अन्तर्गत पालि तिपिटक की अट्ठकथाएँ सम्मिलित है। बुद्ध-काल की भौगोलिक अवस्थाओं को प्रकट करने में इनका प्रामाण्य क्या है, यह अब हमें देखना है।

पालि तिपिटक (सं० त्रिपिटक) भगवान् बुद्ध के उपदेशों और संवादों का प्राचीनतम संकलन है जो आज हमें प्राप्त है। बुद्ध-वचनों का यह प्रामाणिकतम लेखबद्ध रूप मध्य-देश के जन-साधारण के व्यवहार में आने वाली उस (पालि) भाषा में लिखा गया है, जिसमें भगवान् बुद्ध ने अपने उपदेश दिये थे। अतः बुद्ध के देश और काल को समझने के लिए पालि तिपिटक के समान अन्य कोई साधन हमारे पास नही है। पालि तिपिटक में आने वाला प्रत्येक शब्द चाहे भगवान् बुद्ध के द्वारा भले ही उच्चरित न किया गया हो, परन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि उसका अधिकतर भाग छठी-पाँचवी शताब्दी ईसवी-पूर्व बुद्ध-मुख से ही निःसृत हुआ था और उसी रूप में वह ग्राह्य है।

पालि तिपिटक तीन पिटकों या पिटारियो का संग्रह है, जिनके नाम हैं सुत्त-पिटक, विनय-पिटक और अभिधम्म-पिटक, जो पुनः अनेक ग्रन्थों में विभक्त हैं। पालि तिपिटक के सभी ग्रन्थ एक युग के नहीं हैं। उनका संकलन विभिन्न समयों में और विभिन्न स्थानों पर किया गया। अतः पालि तिपिटक की प्रमाणवत्ता निश्चित होते हुए भी सीमित और आपेक्षिक है। डा० गायगर ने भाषा-विज्ञान की

दृष्टि से विवेचन करते हुए सिद्ध किया है कि चूँकि पालि भाषा ही, जो मागधी का एक रूप थी, वह मूल भाषा थी जिसमें भगवान् बुद्ध ने अपने उपदेश दिये थे, अतः पालि तिपिटक को हमें बुद्ध-वचनों का मौलिक और प्रामाणिकतम लेखबद्ध रूप मानना पड़ेगा।[1] ऐतिहासिक आधार पर विचार करते हुए भी हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि पालि तिपिटक के जो प्राचीनतम अंश हैं उनकी उत्पत्ति शास्ता के जीवन-काल में ही हुई और जो अंश अपेक्षाकृत अर्वाचीन माने जा सकते हैं, वे भी सम्राट् अशोक के समय (ईसवी-पूर्व २७३ से ईसवी-पूर्व २३६ तक) तक अपना अन्तिम और निश्चित रूप प्राप्त कर चुके थे। बौद्ध संगीतियों के इतिहास में बिना विस्तार-पूर्वक गये[2] हम यह कह सकते हैं कि पालि तिपिटक के स्वरूप का क्रमशः निर्माण और विनिश्चय उन तीन संगीतियों के परिणाम-स्वरूप हुआ जो बुद्ध-परिनिर्वाण (पाँचवी शताब्दी ईसवी-पूर्व) के बाद प्रायः दो शताब्दियों में सम्पन्न हुई। इनमें से पहली संगीति में, जो बुद्ध-परिनिर्वाण के कुछ सप्ताहों बाद ही राजगृह की सप्तपर्णी नामक गुफा में हुई, शास्ता के द्वारा सिखाये गये धम्म और विनय का संगायन किया गया। दूसरी संगीति, जो वैशाली की संगीति थी, इसके करीब १०० वर्ष बाद हुई और उसने कुछ विवादग्रस्त विनय-सम्बन्धी नियमों का निपटारा किया। तृतीय संगीति सम्राट् अशोक के शासन-काल में पाटलिपुत्र में हुई और पालि तिपिटक को इस संगीति में अन्तिम विनिश्चित स्वरूप प्रदान किया गया। अभिधम्म-साहित्य के विकास की दृष्टि से इस संगीति का विशेष महत्व है, क्योंकि इसी समय कथावत्थुप्पकरण को, जो इस संगीति के सभापति स्थविर मोग्गलिपुत्त तिस्स की रचना थी, अभिधम्म-पिटक में सम्मिलित कर लिया

१. पालि लिटरेचर एण्ड लेंग्वेज, पृष्ठ ४-७।

२. पालि साहित्य के विकास की दृष्टि से तीन बौद्ध संगीतियों का विस्तृत विवेचन लेखक ने "पालि साहित्य का इतिहास" के दूसरे अध्याय (पृष्ठ ७४-९०) में किया है। पिष्टपेषण के भय से और अपने प्रकृत विषय से दूर जा पड़ने की सम्भावना से यहाँ इस विषय का विस्तृत विवेचन उपस्थित नहीं किया गया है।

गया। इसी संगीति के परिणामस्वरूप अशोक-पुत्र महिन्द (सं० महेन्द्र) अपने अन्य स्थविर साथियों के सहित धर्म-प्रचारार्थ लंकाद्वीप गये और अपने साथ अन्तिम रूप से परिपूर्ण और पाटलिपुत्र की संगीति में विनिश्चित पालि तिपिटक को भी लेते गये। यह निर्विवाद सत्य है कि आज जिस रूप में पालि तिपिटक हमें मिलता है, वह अपने अधिकांश रूप में बिलकुल वही है जिसका विनिश्चय पाटलिपुत्र की संगीति ने किया था। अशोक के भाब्रू शिलालेख का साक्ष्य भी यही है[1] और इसी तथ्य की ओर संकेत भरहुत और साँची के अभिलेख और उनकी पाषाण-वेष्टनियों पर अंकित जातकों के अनेक चित्र करते हैं।[2] उनका अन्तिम साक्ष्य यही है कि तीसरी शताब्दी ईसवी-पूर्व पालि तिपिटक प्रायः उसी रूप में और अपने विभिन्न धम्म-परियायों या धर्मोपदेशों के प्रायः उन्हीं नामों के सहित विद्यमान था, जिनमें वह आज पाया जाता है। स्थविर महेन्द्र और उनके साथी भिक्षुओं के द्वारा ले जाये गये पालि तिपिटक को प्रथम बार लेखबद्ध रूप सिहली राजा वट्टगामणि के शासन-काल में लंका में प्रथम शताब्दी ईसवी-पूर्व में दिया गया, जब से वह उसी रूप में चला आ रहा है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि पालि तिपिटक के संकलन की उपरली

---

१. इस शिलालेख में अशोक ने कुछ धम्म-परियायों या धम्म-पलियायों के सतत अध्ययन और मनन की प्रेरणा भिक्षु-भिक्षुणियों और उपासक-उपासिकाओं को दी है। ये सभी धम्म-पलियाय पालि तिपिटक के अंगों के रूप में आज भी विद्यमान हैं, जिनकी पहचान के सम्बन्ध में विद्वानों में कहीं कुछ अल्प मतभेद भी हैं। लेखक ने इस विषय सम्बन्धी विस्तृत विवेचन "पालि साहित्य का इतिहास" (पृष्ठ ६२७-६३१) में किया है।

२. भरहुत और साँची के स्तूपों में बुद्ध-जीवन के अनेक चित्र अंकित हैं। भरहुत स्तूप की पाषाण-वेष्टनियों पर अंकित जातक-कहानियों की सूची के लिए देखिए रायस डेविड्स् : बुद्धिस्ट इण्डिया, पृष्ठ १३८ (प्रथम भारतीय संस्करण, सितम्बर १९५०); मिलाइये लाहा : हिस्ट्री ऑव पालि लिटरेचर, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६६७ (परिशिष्ट 'बी'); विण्टरनित्स : हिस्ट्री ऑव इण्डियन लिटरेचर, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १७-१८।

काल-सीमा बुद्ध-परिनिर्वाण अर्थात् पाँचवीं शताब्दी ईसवी-पूर्व है और निचली काल-सीमा प्रथम शताब्दी ईसवी-पूर्व, यद्यपि उसके मुख्य ग्रन्थों का संकलन अशोक के काल तक सम्पन्न हो चुका था। वस्तुतः सर्वांश में 'बुद्धवचन' होने के रूप में तो पालि तिपिटक के प्रामाण्य की कुछ आपेक्षिकता भी कही जा सकती है, क्योंकि संगीतिकारों का भी उसके निर्माण में कुछ न कुछ हाथ हो सकता है, परन्तु इससे हमारे वर्तमान उद्देश्य में कोई हानि नहीं आती। संगीतिकारों ने भी कोई योगदान पालि तिपिटक के स्वरूप-निर्माण में दिया हो, परन्तु वह योगदान भी अन्तिम रूप से अशोक के काल तक दे दिया गया था, जिसे पालि तिपिटक के संकलन की अन्तिम तिथि माना जा सकता है।[1]

भौगोलिक दृष्टि से भी पालि तिपिटक की प्राचीनता सिद्ध की जा सकती है। 'सुत्त-पिटक के प्रथम चार निकायों और विनय-पिटक के प्राचीनतम

---

१. बुद्ध-काल से लेकर अशोक-काल तक के संकलित या रचित पालि साहित्य के काल-क्रम का विवरण (जो अधिकतर अनुमानाश्रित और अनिश्चित ही हो सकता है) देने का सर्वप्रथम प्रयत्न डॉ० टी० डब्लू० रायस डेविड्स् ने किया था। उनके निष्कर्षों के लिये देखिये "बुद्धिस्ट इण्डिया", पृष्ठ १२१-१२२ (प्रथम भारतीय संस्करण, १९५०)। डॉ० विमलाचरण लाहा ने इस अध्ययन को विकसित करने का प्रयत्न "हिस्ट्री ऑव पालि लिटरेचर" जिल्द पहली, पृष्ठ १-४२ में किया है। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने "बुद्धचर्या" में पालि तिपिटक के कुछ सुत्तों और अंशों को काल-क्रम के अनुसार ग्रथित करने का प्रयत्न किया है, परन्तु यह कार्य अपनी समग्रता में असम्भव है, ऐसा उन्होंने स्वीकार किया है। "सभी के लिये तो उसी वक्त आशा छूट गई, जबकि पिटक को कंठस्थ करने वाले, काल-परम्परा को लिपिबद्ध न कर ही, इस लोक से चले गये।" बुद्धचर्या, पृष्ठ २ (प्राक्कथन)। पालि तिपिटक के काल-क्रम के सम्बन्ध में कुछ विचार के लिये देखिए "हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑव दि इण्डियन पीपुल", जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४०७-४०९ भी। पालि तिपिटक के विभिन्न ग्रंथों का विवेचन करते हुए प्रस्तुत लेखक ने उनके काल-क्रम का विस्तृत विवेचन "पालि साहित्य का इतिहास" में किया है।

अंशों में पूर्व दिशा में कलिंग से परे और दक्षिण में गोदावरी से परे किसी स्थान का निर्देश नहीं किया गया है। परन्तु अशोक के द्वितीय शिलालेख में सुदूर दक्षिण के चोल, पाण्ड्य, सत्यपुत्र, केरलपुत्र (चोला पण्डिया सतियपुत्तो केललपुत्तो) जैसे जनपदों के उल्लेख हैं। इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि सुत्त-पिटक के प्रथम चार निकायों के भूगोल का युग अशोक के युग से पूर्वकालीन होना चाहिए। यही बात लंका के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। सुत्त-पिटक के प्रथम चार निकायों में लंकाद्वीप का कोई उल्लेख नहीं है, परन्तु अशोक के युग में वह एक सुविज्ञात द्वीप था, जहाँ उसके प्रव्रजित पुत्र और पुत्री धर्म-प्रचारार्थ गये थे। अशोक और उसके समकालीन सिंहली राजा देवानं पिय तिस्स के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध का उल्लेख मिलता है। तंबपंनि (ताम्रपर्णि—श्रीलंका) का उल्लेख अशोक के द्वितीय शिलालेख में भी आया है। अतः सामान्यतः सुत्त-पिटक के प्रथम चार निकायों और विनय-पिटक के अधिकांश भाग को हमें तीसरी शताब्दी ईसवी-पूर्व में पहले संकलित मानना पड़ेगा।

पालि तिपिटक के अन्तः साक्ष्य से भी यह बात स्पष्ट होती है। विनय-पिटक के चुल्लवग्ग में प्रथम दो संगीतियों का तो उल्लेख है, परन्तु तृतीय संगीति का वहाँ उल्लेख नहीं है। अतः स्पष्टतः वह अशोक-पूर्व युग में संकलित किया गया था। चूँकि इसी चुल्लवग्ग में सुत्त-पिटक के पाँच निकायों और (विनय-पिटक के) सुत्त-विभंग का उल्लेख है, अतः इन ग्रन्थों को निश्चयतः चुल्लवग्ग से अधिक प्राचीन संकलन होना चाहिये। कथावत्थु, जो अशोककालीन रचना है, सुत्त-पिटक, विनय-पिटक और अभिधम्म-पिटक के शेष ग्रन्थों की विद्यमानता की सूचना देती है। अतः इस सब साहित्य को अशोक-पूर्व युग का होना चाहिए। वस्तुतः पालि तिपिटक का मूल बुद्ध-जीवन में ही है और इसी कारण उसे छठी और पाँचवीं शताब्दी ईसवी-पूर्व के भारत के चित्र को जानने का एक विश्वसनीय साधन माना जा सकता है। बुद्ध के जीवन-काल की परिस्थितियों का वह प्राचीनतम लेखबद्ध विवरण है और इस रूप में उसका प्रामाण्य न केवल निर्विवाद है बल्कि सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में इस दृष्टि से उसका अपना एक अलग स्थान ही है।[१]

---

१. "बुद्ध-वचनं" के रूप में पालि तिपिटक की प्रामाणिकता का विस्तृत विवेचन लेखक ने "पालि साहित्य का इतिहास" पृष्ठ १११–१२१ में किया है।

पालि तिपिटक, जैसा हम अभी कह चुके हैं, तीन पिटकों में विभक्त है, जिनके नाम है सुत्त-पिटक, विनय-पिटक और अभिधम्म-पिटक। अभिधम्म-पिटक का विषय बौद्ध तत्वज्ञान की सूक्ष्म नैतिक और मनोवैज्ञानिक समस्याओ का गहनतापूर्वक विवेचन करना है, अत उसके सात ग्रन्थो में स्फुट और प्रासंगिक रूप से भले ही कही कुछ अल्प भौगोलिक सूचना मिल जाय, परन्तु इस दृष्टि से उसका कोई उल्लेखनीय महत्व नही कहा जा सकता। भौगोलिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण सुत्त-पिटक और विनय-पिटक ही है, जिनके इस सम्बन्धी महत्व पर कुछ प्रकाश हम 'वस्तुकथा' मे भी डाल चुके है। यहाँ उनके विभिन्न ग्रन्थो का उल्लेख करते हुए उनमे प्राप्त भौगोलिक निर्देशो का कुछ सक्षिप्त विवरण देना उचित होगा।

सुत्त-पिटक पाँच निकायो या शास्त्र-समूहो मे विभक्त है, जिनके नाम है दीघ-निकाय, मज्झिम-निकाय, सयुत्त-निकाय, अगुत्तर-निकाय और खुद्दक-निकाय। दीघ-निकाय मे दीर्घ आकार के सुत्तो का सकलन है। ऐसा जान पडता है कि इस निकाय का सग्रह अत्यन्त प्राचीन काल मे कर लिया गया था, क्योकि इसके प्रथम सुत्त, ब्रह्मजाल-सुत्त, का उद्धरण सयुत्त-निकाय मे इन शब्दो मे दिया गया है, "ब्रह्मजाल-सुत्त मे जो बासठ मिथ्या दृष्टियाँ कही गई है. . ."।[1] दीघ-निकाय मे कुल ३४ सुत्त है, जिन्हे तीन वग्गों मे इस प्रकार विभक्त किया गया है (१) सीलक्खन्ध वग्ग, जिसमे सुत्त-सख्या १–१३ सगृहीत है। (२) महावग्ग, जिसमे सुत्त-सख्या १४–२३ सगृहीत है और (३) पाथेय या पाटिक वग्ग, जिसमे चौबीसवी सख्या से लेकर चौतीसवी सख्या तक के सुत्त सकलित है।

दीघ-निकाय के प्रथम सुत्त, ब्रह्मजाल-सुत्त, मे हम भगवान् बुद्ध को राजगृह और नालन्दा के बीच लम्बे रास्ते पर जाते देखते हैं। "भगवा अन्तरा च राजगह अन्तरा चा नालन्द अद्धान-मग्ग-पटिपन्नो होति"। इस सुत्त मे अनेक प्रकार की जीविकाओ का भी उल्लेख किया गया है, जिनके द्वारा उस समय लोग जीवन यापन करते थे। दीघ-निकाय के द्वितीय सुत्त, सामञ्ञफल-सुत्त का उपदेश राजगृह मे जीवक के आम्रवन मे भगवान् के दर्शनार्थ गये राजा अजातशत्रु वैदेहिपुत्र के

---

१. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ५७२।

प्रति दिया गया था। इस सुत्त में अनेक प्रकार के शिल्पस्थानों (सिप्पायतनानि) का वर्णन किया गया है, जिनसे उस समय की दस्तकारी की अवस्था और व्यावसायिक भूगोल पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। दीघ-निकाय के तृतीय सुत्त, अम्बट्ठ-सुत्त, में हम भगवान् को कोसल देश में इच्छानंगल नामक ब्राह्मण-ग्राम के समीप इच्छा-नंगल वनखण्ड में विचरते देखते हैं। यहीं ब्राह्मण पण्डित पौष्करसाति का शिष्य अम्बट्ठ माणवक भगवान् से मिलने गया था। पौष्करसाति ब्राह्मण के सम्बन्ध में कहा गया है कि उसे कोसल देश मे उक्कट्ठा नामक नगरी की सारी आय दान के रूप में कोसलराज प्रसेनजित् की ओर से मिली हुई थी। "उस समय पौष्करसाति ब्राह्मण कोसलराज प्रसेनजित् द्वारा प्रदत्त राजभोग्य, राजदाय, ब्रह्मदेय, जनाकीर्ण, तृण-काष्ठ-उदक-धान्य-सम्पन्न उक्कट्ठा का स्वामी था।" इस सुत्त में हिमालय के समीप (हिमवन्तपस्से) सरोवर के किनारे स्थित एक बड़े शाक (सागौन) के वनखण्ड (महासाकवनखण्डो) का भी उल्लेख है, जहाँ राजा इक्ष्वाकु (ओक्काकों) के चार निर्वासित पुत्रों ने अपना निवास बनाया था। इस सुत्त में शाक्य (साकिय) जाति की उत्पति और शाक्यों के कपिलवस्तु-स्थित संस्थागार (सन्थागार) का भी उल्लेख है, जिससे उस समय के राजनैतिक भूगोल पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। दीघ-निकाय के चतुर्थ सुत्त, सोणदण्ड-सुत्त, में हम भगवान् बुद्ध को अंग देश में चारिका करते हुए उसकी चम्पा नामक नगरी में पहुँचते देखते हैं। "भगवा अंगेसु चारिकं चरमानो येन चम्पा तदवसरि।" यहाँ भगवान् ने गग्गरा पोक्खरणी नामक पुष्करिणी के तीर पर विहार किया था। "भगवा चम्पायं विहरति गग्गराय पोक्खरणिया तीरे।" जिस प्रकार गत सुत्त से हमें पता चलता है कि उक्कट्ठा नामक नगरी कोसल राज्य में थी और उसकी आय कोसलराज प्रसेनजित् की ओर से ब्राह्मण पौष्करसाति को दान के रूप में दी गई थी, उसी प्रकार इस सुत्त का साक्ष्य यह है कि चम्पा नगरी, जो अङ्ग जनपद का एक अंग थी, उस समय मगधराज बिम्बिसार के राज्य में सम्मिलित थी और उसकी सारी आय दान के रूप में मगधराज श्रेणिक बिम्बिसार के द्वारा (रञ्ञा मागधेन सेनियेन बिम्बिसारेन) सोणदण्ड नामक ब्राह्मण को दी गई थी। "उस समय सोणदण्ड ब्राह्मण, मगधराज श्रेणिक बिम्बिसार द्वारा प्रदत्त, जनाकीर्ण, तृण-काष्ठ-उदक-धान्य-सहित राजभोग्य,

राजदाय, ब्रह्मदेय, चम्पा का स्वामी था।" सम्पूर्ण अग जनपद बुद्ध के जीवन-काल में मगध राज्य मे सम्मिलित था, ऐसा इस सुत्त का साक्ष्य है। कूटदन्त-सुत्त (५) हमारा परिचय खाणुमत नामक ब्राह्मण-ग्राम से कराता है, जो मगध देश में था। यही के समीप अम्बलट्ठिका (आम्रयष्टिका) नामक बाग मे भगवान् ने विहार किया था। महालि-सुत्त (६) मे हम भगवान् बुद्ध को वैशाली के समीप महावन की कूटागारशाला मे विहरते देखते है। "भगवा वेसालिय विहरति महावने कूटागारसालाय"। इस सुत्त मे कौशाम्बी के प्रसिद्ध बौद्ध विहार घोषिताराम का भी उल्लेख है। "कोसम्बिय घोसितारामे"। जालिय-सुत्त (७) का भी उपदेश भगवान् ने कौशाम्बी के घोषिताराम मे ही दिया था। इसीलिये इस सुत्त के आरम्भ मे कहा गया है "एक समय भगवा कोसम्बिय विहरति घोसितारामे।' कस्सप-सीहनाद-सुत्त (८) का उपदेश उजुञ्ञा के समीप कण्णकत्थल नामक मिगदाय (मृगदाव) मे दिया गया। पोट्ठपाद-सुत्त (९) मे हम भगवान् को श्रावस्ती मे अनाथपिण्डिक द्वारा निर्मित जेतवनाराम मे निवास करते देखते है। "भगवा सावत्थिय विहरति जेतवने अनाथिपिण्डिकस्स आरामे"। इस सुत्त मे तिन्दुकाचीर नामक एक आराम का भी उल्लेख है, जिसे कोसलेश्वर-महिषी मल्लिका ने श्रावस्ती के समीप बनवाया था। यही पोट्ठपाद नामक परिब्राजक रहता था। सुभ-सुत्त (१०) मे हम भगवान् बुद्ध के निर्वाण के कुछ दिन बाद ही आनन्द को श्रावस्ती मे अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन मे विहार करते देखते है। केवट्ट-सुत्त, केवड्ड-सुत्त या केवद्ध-सुत्त (११) मे हम भगवान् को नालन्दा के समीप पावारिक आम्रवन मे विहार करते देखते है। "भगवा नालन्दाय विहरति पावारिकम्बवने।" इस सुत्त मे नालन्दा के सम्बन्ध मे कहा गया है कि "यह नालन्दा समृद्ध, धनधान्यपूर्ण और बहुत घनी बस्ती वाली है" (नालन्दा इद्धा चेव फीता च बहुजना आकिण्णमनुस्सा)। लोहिच्च-सुत्त (१२) मे हम भगवान् को कोसल देश मे चारिका करते हुए उसकी सालवतिका नामक नगरी मे पहुँचते देखते है। "भगवा कोसलेसु चारिक चरमानो...... येन सालवतिका तदवसरि।" इस सुत्त से हमे यह भी पता चलता है कि कोसलराज प्रसेनजित् (पसेनदि) कोसल और काशी दोनो देशो का स्वामी था और इन दोनो देशो की आय का उपभोग करता था। तेविज्ज-सुत्त (१३) मे हम भगवान् बुद्ध को

कोसल देश के मनसाकट नामक ब्राह्मण-ग्राम के उत्तर मे अचिरवती नदी के किनारे एक आम्रवन मे विचरते देखते है। महापदान-सुत्त (१४) मे हम भगवान् को श्रावस्ती मे अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन की करेरी नामक कुटी मे (करेरि-कुटिकाय) विहार करते देखते है। इस सुत्त मे कुछ प्राचीन नगरियो के उल्लेख है जो अज्ञात बुद्ध-पूर्व युग मे भारत की राजधानी रही थी, जैसे कि बन्धुमती (जहाँ के खेमा मृगदाव का भी इस सुत्त मे उल्लेख है), अरुणवती, अनोमा, खेमवती, सोभवती और बाराणसी। कपिलवस्तु का भी इस सुत्त मे उल्लेख है और उक्कट्ठा के समीप सुभगवन का भी। इस सुत्त मे भगवान् ने एक उपमा का प्रयोग किया है, जिसमे काशी के सुन्दर वस्त्र का उल्लेख है "भिक्षुओ! जैसे मणिरत्न काशी के वस्त्र से लपेटा हुआ हो, तो न वह मणिरत्न काशी के वस्त्र मे चिपट जाता है और न काशी का वस्त्र मणिरत्न मे चिपट जाता है। सो क्यो? दोनो की शुद्धता के कारण"[1]। इस सुत्त मे हिमालय पर्वत पर रहने वाले एक मजु स्वर वाले, मनोज्ञ करविक नामक पक्षी का भी वर्णन है। महानिदान-सुत्त (१५) मे हम भगवान् को कुरु देश मे कुरुओ के निगम कम्मासदम्म (कल्माषदम्य) मे विहार करते देखते है। महापरिनिब्बाण-सुत्त (१६) दीघ-निकाय का सम्भवत सबसे अधिक महत्वपूर्ण सूत्र है और यह बात भौगोलिक दृष्टि से भी सर्वथा ठीक है। यहाँ हमे भगवान् बुद्ध की अन्तिम यात्रा का, जो उन्होने राजगृह से कुशीनगर तक की, परिपूर्ण वर्णन, रास्ते मे पडने वाले पडावो के विस्तृत विवरण के सहित, मिलता है। सुत्त के प्रारम्भ मे हम भगवान् बुद्ध को राजगृह के समीप गृध्रकूट पर्वत (गिज्झकूट पब्बत) पर विहार करते देखते है। यही मगधराज अजातशत्रु का महामात्य वर्षकार ब्राह्मण भगवान् से मिलने आया और उसने उन्हे बताया कि मगधराज अजातशत्रु वज्जियो पर आक्रमण करना चाहता है। भगवान् ने बिना वर्षकार से बाते किये आनन्द की ओर अभिमुख होकर (जो उस समय तथागत पर पखा झल रहे थे) कहा कि जब तक वज्जी सात अपरिहानिय धर्मों का पालन करते रहेगे, उनकी कोई हानि नही होगी। राजगृह के गृध्रकूट पर्वत से चलकर भगवान् अम्बलट्ठिका आये और राजागारक (राजकीय भवन) नामक स्थान मे ठहरे। अम्बलट्ठिका

१. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ९९

राजगृह और नालन्दा के बीच में आम्रवन के रूप में स्थान था। अम्बलट्ठिका से चलकर भगवान् नालन्दा आये, जहाँ वे प्रावारिक आम्रवन में ठहरे। नालन्दा से प्रस्थान कर भगवान् पाटलिगाम आये और यहाँ उन्होंने गंगा नदी को पार किया। जिस समय भगवान् पाटलिगाम में थे, उसी समय मगधराज अजातशत्रु वैदेहिपुत्र के दो महामात्य सुनीध (सुनीथ) और वस्सकार (वर्षकार) भगवान् से फिर मिलने आये। इस सुत्त से हमें यह सूचना मिलती है कि राजा अजातशत्रु उस समय वज्जियों को जीतने के लिए नगर को बसा रहा था। पाटलिगाम के जिस द्वार से भगवान् निकले, उसका नाम उनके सम्मान में मगधराज के उक्त दो महामात्यों द्वारा "गौतम द्वार" रक्खा गया और जिस घाट से उन्होंने गंगा को पार किया, उसका "गौतम तीर्थ"। गंगा को पार कर भगवान् कोटिग्राम आये और वहाँ से नादिका (नातिका) नामक ग्राम में पहुँचे। यहाँ भगवान् गिंजकावसथ नामक स्थान में ठहरे। नादिका से चलकर भगवान् बुद्ध वैशाली आये और यहाँ पहले वे अम्बपाली के आम्रवन में ठहरे और अम्बपाली के आतिथ्य को स्वीकार किया। तदनन्तर भगवान् समीप के बेलुव नामक एक छोटे से ग्राम में गये और वहीं उन्होंने स्वयं वर्षावास करने का विचार किया और भिक्षुओं को आदेश दिया कि वे वैशाली के आसपास विहरें। परन्तु इसी समय भगवान् को कड़ी बीमारी उत्पन्न हुई जिसे उन्होंने यह सोचकर दबा दिया कि बिना भिक्षु-संघ को अवलोकन किये और सेवकों को जतलाये वे परिनिर्वाण में प्रवेश नहीं करेंगे। वर्षावास के बाद एक दिन वे वैशाली में भिक्षार्थ आये और ध्यान के लिये आनन्द के साथ चापाल चैत्य में बैठे। यहीं उन्होंने कहा कि वे तीन मास बाद महापरिनिर्वाण में प्रवेश करेंगे। तदनन्तर भगवान् वैशाली की महावन कूटागारशाला में चले गये और वैशाली के आसपास विहरने वाले सब भिक्षुओं को आमंत्रित करते हुए भगवान् ने उनसे कहा कि जिस धर्म का उन्होंने उन्हें उपदेश दिया है उसका बहुजन-हितार्थ उन्हें ज्ञानपूर्वक पालन करना चाहिये, ताकि यह ब्रह्मचर्य (बुद्ध-धर्म) चिरस्थायी हो। इसी दिन वैशाली में भिक्षाचर्या करने के बाद भगवान् भण्डगाम की ओर चल पड़े। भण्डगाम से तथागत हत्थिगाम, अम्बगाम और जम्बुगाम नामक स्थानों पर रुकते हुए भोगनगर पहुँचे। भोगनगर में भगवान् ने आनन्द चेतिय नामक स्थान में निवास किया। भोगनगर से चलकर भगवान् पावा पहुँचे, जहाँ उन्होंने चुन्द सुनार

के आम्रवन में विहार किया। इसी सुनार के यहाँ अन्तिम भोजन किया और बीमार पड़ गये। पावा से चलकर भगवान् ने एक छोटी नदी (नदिका) का, जिसका नाम नहीं दिया गया है, जल पिया। इस नदी का पानी उस समय गंदा हो रहा था, क्योंकि पाँच सौ गाड़ियाँ वहाँ होकर थोड़ी ही देर पहले निकली थीं। भगवान् के कई बार के आग्रह पर आनन्द वहाँ जल लेने गये और उसके जल को स्वच्छ पाया। इसी समय मल्लपुत्र पुक्कुस ने भगवान् को एक दुशाला भेंट किया, जिसके एक भाग को भगवान् के आदेशानुसार उसने भगवान् को उढ़ा दिया और दूसरे को आनन्द को। इस छोटी नदी से आगे चलकर भगवान् ककुत्था नामक नदी पर आये जहाँ उन्होंने जल पिया और स्नान किया। ककुत्था नदी को पार कर भगवान् ने एक आम्रवन (अम्बवन) में विश्राम किया, जो (दीघनिकाय की अट्ठकथा के अनुसार) इसी नदी के दूसरे किनारे पर स्थित था। यहाँ से चलकर भगवान् ने एक और नदी को पार किया जिसका नाम हिरण्यवती था और तब वे कुसिनारा के समीप, मल्लों के उपवत्तन (उपवर्तन) नामक शाल-वन में आये, जहाँ उन्होंने रात्रि के अन्तिम याम में महापरिनिर्वाण में प्रवेश किया।

भगवान् बुद्ध की इस अन्तिम यात्रा का पूर्ण विवरण देने के अलावा महापरिनिब्बाण-सुत्त का अन्य भी प्रभूत भौगोलिक महत्व है। उदाहरणतः बुद्ध के जीवन-कालीन भारत के छह प्रसिद्ध नगरों (महानगरानि) का इस सुत्त में उल्लेख है। भगवान् के इस निर्णय को सुनकर कि वे कुसिनारा में परिनिर्वाण प्राप्त करेंगे, आनन्द ने उनसे प्रार्थना की कि वे इस क्षुद्र नगले में परिनिर्वाण प्राप्त न करें। "भन्ते, और भी महानगर हैं, जैसे कि चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी और वाराणसी। वहाँ भगवान् परिनिर्वाण प्राप्त करें।" (सन्ति हि भन्ते अञ्ञानि महानगरानि सेय्यथीदं चम्पा, राजगहं, सावत्थि, साकेतं, कोसम्बि, बाराणसी। एत्थ भगवा परिनिब्बायतु)। भगवान् आनन्द को यह कहकर चुप कर देते हैं कि कुसिनारा क्षुद्र नगरी नहीं है, क्योंकि प्राचीन काल में कुशावती नाम से महासुदस्सन नामक चक्रवर्ती राजा की राजधानी रह चुकी है और उस समय इसका विस्तार लम्बाई में पूर्व से पश्चिम तक १२ योजन और चौड़ाई में ७ योजन उत्तर से दक्षिण तक था। "रञ्ञो आनन्द महासुदस्सनस्स अयं कुसिनारा कुसावती नाम राजधानी अहोसि, पुरत्थिमेन च पच्छिमेन च द्वादसयोजनानि आयामेन उत्तरेण

च दक्खिणेन च सत्त योजनानि वित्थारेण।" इस पुरातनकालीन कुशावती नगरी के सम्बन्ध में ही इस सुत्त में कहा गया है "आनन्द ! कुशावती राजधानी समृद्ध, बहुजनाकीर्ण और सुभिक्ष थी। आनन्द ! कुशावती राजधानी दिन-रात हस्ति-शब्द, अश्व-शब्द, रथ-शब्द, भेरी शब्द, मृदंग-शब्द, वीणा-शब्द, गीत-शब्द, शंख-शब्द, ताल-शब्द और 'खाइये-पीजिये', इन दस शब्दों से शून्य न होती थी।" इस सुत्त में राजगृह के उन अनेक स्थानों का उल्लेख है जहाँ भगवान् ने अपने जीवन में किसी न किसी समय निवास किया था, जैसे कि गौतम न्यग्रोध, चोर प्रपात, वैभार गिरि की बगल में सत्तपण्णि गुहा (सप्तपर्णी गुफा), इसिगिलि (ऋषिगिरि) पर्वत की बगल में कालशिला, सीतवन में सप्पसोण्डिक, (सर्पशौण्डिक), तपोदाराम, वेणुवन में कलन्दक निवाप, जीवकम्बवन (जीवकाम्रवन) और मद्रकुक्षि मृगदाव। इसी प्रकार वैशाली के इन चैत्यों का भी इस सुत्त में उल्लेख है, जैसे कि, उदयन चैत्य, गौतमक चैत्य, सत्तम्ब (सप्ताम्र) चैत्य, बहुपुत्रक चैत्य और सारन्दद चैत्य। इन सब स्थानों में भगवान् ने किसी न किसी समय निवास किया था। भगवान् बुद्ध ने इस सुत्त में नेरंजरा नदी के समीप उरुवेला में बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद अपने निवास का निर्देश किया है। इसी प्रकार आतुमा नामक गाँव के भुसागार में अपने निवास का भी। हम पहले उल्लेख कर चुके हैं कि जब भगवान् पावा से कुशीनगर की ओर जा रहे थे तो मार्ग में पुक्कुस नामक मल्ल व्यापारी माल लदी पाँच सौ गाड़ियों के सहित कुशीनगर से पावा की ओर आ रहा था और बीच में पड़ने वाली नदी को उसने पार किया थी। इससे उस समय के व्यापारिक भूगोल पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। भगवान् बुद्ध के धातुओं के अंशों पर स्तूप-निर्माण के सम्बन्ध में इस सुत्त में उस समय के सात गणतन्त्रों का उल्लेख किया गया है, जैसे कि, पावा के मल्ल, कुसिनारा के मल्ल, पिप्पलिवन के मोरिय, वैशाली के लिच्छवि, कपिलवस्तु के शाक्य, अल्लकप्प के बुलिय और रामग्राम के कोलिय। महासुदस्सन-सुत्त (१७) का उपदेश कुशीनगर के समीप मल्लों के उपवर्तन नामक शालवन में दिया गया था। महापरिनिब्बाण-सुत्त के समान इस सुत्त में भगवान् के अन्तिम दिनों की जीवनी का वर्णन है और बुद्धकालीन भारत के छह महानगरों तथा पुरातन काल की कुशावती राजधानी का भी उसी के समान वर्णन है। जनवसभ-सुत्त (१८) का भौगोलिक महत्व इस बात के कारण है कि यहाँ बुद्ध-

कालीन भारत के दस जनपदों का दो-दो के जोड़ों के रूप में वर्णन है, जैसे कि, काशी और कोसल, वज्जी और मल्ल, चेति और वंस (वत्स), कुरु और पञ्चाल तथा मच्छ (मत्स्य) और सूरसेन। इस सुत्त में अंग और मगध राष्ट्रों का भी साथ-साथ मिला कर उल्लेख किया गया है। महागोविन्द-सुत्त (१९) में हम भगवान् को राजगृह के गृध्रकूट पर्वत पर विहार करते देखते हैं। इस सुत्त में अति प्राचीन-कालीन राजा रेणु के समय के जम्बुद्वीप (भारतवर्ष) के राजनैतिक भूगोल का विवरण है। इस सुत्त के अनुसार राजा रेणु के ब्राह्मण मन्त्री महागोविन्द ने सम्पूर्ण जम्बुद्वीप को सात राजनैतिक भागों में बाँट कर प्रत्येक राज्य की अलग-अलग राजधानी स्थापित की थी, जैसे कि:

	राज्य	राजधानी
१	कलिंग	दन्तपुर
२	अस्सक	पोतन
३	अवन्ती	माहिस्सति (माहिष्मती)
४	सोवीर	रोरुक
५	विदेह	मिथिला
६	अंग	चम्पा
७	काशी	वाराणसी

महासमय-सुत्त (२०) में हम भगवान् का शाक्यों के देश में कपिलवस्तु के महावन में विहार करते देखते हैं। सक्कपञ्ह-सुत्त (२१) में अम्बसण्ड नामक ब्राह्मण-ग्राम का उल्लेख है, जो राजगृह के पूर्व में अवस्थित था। इसी प्रकार इन्दसाल गुहा का भी यहाँ उल्लेख है, जो अम्बसण्ड ब्राह्मण-ग्राम के उत्तर में वेदियक (वेदिक) पर्वत की एक गुफा थी। महासतिपट्ठान-सुत्त (२२) में कुरुओं के निगम कम्मासदम्म का उल्लेख है, जिसका निर्देश एक गत सुत्त में भी आ चुका है। पायासि राजञ्ञ-सुत्त (२३) में कोसल देश के सेतव्या (श्वेताम्बी) नामक नगर का उल्लेख है, जिसके उत्तर में सिंसपावन नामक वन था। पाटिक-सुत्त या पाथिक सुत्त (२४) में हम भगवान् को मल्लों के निगम अनूपिय में विहरते देखते हैं। इस सुत्त में वैशाली के महावन में स्थित कूटागारशाला में भी भगवान्

के निवास का उल्लेख है और बुलू (बुमू, खुलू) लोगो के उत्तरका नामक कस्बे का भी। उदुम्बरिक-सीहनाद-सुत्त (२५) मे हम भगवान् को राजगृह के गृध्रकूट पर्वत पर बिचरते देखते हैं। इस सुत्त से हमे पता चलता है कि राजगृह और गृध्रकूट के बीच मे परिव्राजको का एक आराम था, जिसका नाम उदुम्बरिका था। इस उदुम्बरिका के समीप, गृध्रकूट पर्वत के नीचे, सुमागधा नामक सरोवर के तट पर, मोर निवाप नामक स्थान का भी इस सुत्त मे उल्लेख है। चक्कवत्ति-सीहनाद-सुत्त (२६) मे हम भगवान् को मगध के मातुला नामक स्थान मे विहरते देखते है। इस सुत्त मे जम्बुद्वीप के भावी चक्रवर्ती राजा शख और उसकी राजधानी केतुमती के सम्बन्ध मे भविष्यवाणी है। अग्गञ्ञ सुत्त (२७) मे हम भगवान् बुद्ध को श्रावस्ती मे मृगारमाता के प्रासाद पूर्वाराम मे विहार करते देखते है। इसी प्रकार सम्पसादनिय-सुत्त (२८) मे नालन्दा के प्रावारिक आम्रवन मे भगवान् के जाने का उल्लेख है और पासादिक-सुत्त (२९) मे शाक्य देश मे वेधञ्ञा नामक नगर के आम्रवन-प्रासाद मे जाने का। (शाक्य जनपद के) सामगाम नामक ग्राम का भी इस सुत्त मे उल्लेख है। पावा मे जैन तीर्थकर निगण्ठ नाटपुत्त (निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र) की मृत्यु का भी इस सुत्त मे उल्लेख है। लक्खण-सुत्त (३०) का उपदेश भगवान् ने श्रावस्ती मे अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन मे दिया। सिगालोवाद-सुत्त या सिगालोवाद-सुत्त (३१) मे राजगृह के वेणुवन और कलन्दक निवाप का निर्देश है। आटानाटिय-सुत्त (३२) मे उत्तरकुरु देश का विस्तृत पौराणिक वर्णन उपलब्ध है। इस सुत्त मे उसकी राजधानी आलकमन्दा का तथा आटानाटा, कुसिनाटा, परकुसिनाटा आदि नगरो का विवरण मिलता है। इस सुत्त के अनुसार उत्तरकुरु के राजा का नाम कुबेर है और इस देश मे एक सुन्दर पुष्करिणी है जिसका नाम धरणी है। सगीति-परियाय-सुत्त (३३) मे मल्लो के नगर पावा का उल्लेख है। यहाँ भगवान् ने चुन्द कर्मारपुत्र के आम्रवन मे विहार किया था। इस सुत्त मे मल्लो के नवीन सस्थागार (प्रजातन्त्र भवन) मे काफी रात गये तक मल्लो और भिक्षुओ को उपदेश करते हम भगवान् को देखते है। दसुत्तर-सुत्त (३४) मे हम भगवान् बुद्ध को चम्पा मे गग्गरा पोक्खरणी के तीर पर विहार करते देखते है। हम पहले देख चुके हैं कि सोणदण्ड-सुत्त का भी उपदेश भगवान् ने इस पुष्करिणी के तीर पर निवास करते समय ही दिया था।

मज्झिम-निकाय में मध्यम आकार के १५२ सुत्त संकलित हैं। प्रत्येक सुत्त अलग-अलग नाम देकर उसके भौगोलिक महत्व का विवेचन करना यहाँ इष्ट का न होगा, क्योंकि इससे विस्तार बढ़ जायगा और पुनरुक्ति की भी आशंका है। अत: समग्र रूप में मज्झिम-निकाय के १५२ सुत्तों का उपदेश जिन स्थानों पर दिया गया, उनका इस निकाय के सुत्तों की संख्या के अनुसार विवरण देना उचित होगा, जो इस प्रकार है :

स्थान	जिन संख्याओं के सुत्तों का उपदेश वहाँ दिया गया
उक्कट्ठा के सुभगवन में	१
श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम मे	२,३,४,५,९,११,१३,१६,१७,१९–२३, २५–२८,३०,३३,३८,४२,४३,४५–४७,४९,५९,६२–६५,७२,७८,८०,८६–८८,९३,९६,९९,१०२,१११–११५,११७,११९,१२०,१२३,१२७,१२९–१३२,१३४,१३५,१३७–१३९,१४३,१४५–१४९
श्रावस्ती मे मृगारमाता के प्रासाद पूर्वाराम मे	३७,१०७,१०९,११०,११८,१२१
कुरुओं के निगम कम्मासदम्म मे	१०,७५,१०६
कुरुओं के निगम थुल्लकोट्ठित में	८२
वैशाली के अवरपुर वनखण्ड मे	१२
वैशाली के महावन की कूटागारशाला मे	३५,३६,७१,१०५
वैशाली के वेलुवगामक मे	५२
शाक्य जनपद में कपिलवस्तु के न्यग्रोधाराम में	१४,१८,५३,१२२,१४२

स्थान	जिन संख्याओं के सुत्तों का उपदेश वहाँ दिया गया
शाक्य जनपद के मेतलुम्प या मेदलुम्प (मेतलूप) नामक निगम में	८९
देवदह निगम में (शाक्य जनपद)	१०१
सामगाम में (शाक्य जनपद)	१०४
सुंसुमारगिरि के भेसकलावन मृगदाव मे	१५,५०,८५
राजगृह के वेणुवन कलन्दकनिवाप में	२४,४४,५८,६१,६९,७३,७७,७९, ९७,१०८,१२४–१२६,१३६,१४४,१५१
राजगृह के गृध्रकूट पर्वत पर	२९,७४
राजगृह में जीवक कौमारभृत्य के आम्रवन में	५५
राजगृह में इसिगिलि (ऋषिगिरि) पर्वत पर	११६
राजगृह के तपोदाराम में	१३३
राजगृह में एक कुम्हार के घर पर	१४०
(वज्जी देश में) नादिका के गिंजकावसथ में	३१
(वज्जी देश में) नादिका के गोसिंग सालवन में	३२
(वज्जी देश में) उक्काचेल नामक स्थान पर गंगा के किनारे	३४
अंग देश की चम्पा नगरी में, गग्गरा पुष्करिणी के तीर पर	५१
अंग देश के अस्सपुर नगर में	३९,४०

स्थान	जिन संख्याओं के सुत्तों का उपदेश वहाँ दिया गया
अंगुत्तराप के आपण नामक कस्बे में	५४,६६,९२
कोसल देश में (स्थानों के नाम निर्दिष्ट नहीं)	८१,१००
कोसल देश में शाला (साला) नामक ब्राह्मण-ग्राम में	४१,६०
कोसल देश में नलकपान के पलासवन में	६८
कोसल देश के ओपसाद नामक ब्राह्मण-ग्राम में	९५
कोसल देश के नगरविन्देय्य नामक ब्राह्मण-ग्राम में	१५०
(कोसल देश के) इच्छानंगल वनखण्ड में	९८
कौशाम्बी के घोषिताराम में	४८,७६,१२८,
नालन्दा के प्रावारिक आम्रवन में	५६
कोलिय जनपद के हलिद्दवसन नामक निगम में	५७
चातुमा के आमलकीवन (आँवलों के वन) में	६७
विदेह देश में (स्थान का निर्देश नही है)	९१
(विदेह देश में) मिथिला के मखादेव आम्रवन में	८३
मथुरा (मधुरा) के गुन्दवन या गुन्दावन में	८४
उजुञ्ञा (उरुञ्जा) के कण्णकत्थल[1] नामक मृगदाव में	९०
काशी प्रदेश मे (स्थान का उल्लेख नही है)	७०

१. बम्बई विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित मज्झिम-निकाय (मज्झिम-पण्णासक) के देवनागरी संस्करण (पृष्ठ ३२९) में कण्णकत्थल पाठ है। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने कण्णत्थलक पाठ भी दिया है और उस का संस्कृत प्रतिरूप कर्णस्थलक सुझाया है। देखिये उनका मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३६८; वहीं पृष्ठ ६१५ में उन्होंने इसका संस्कृत प्रतिरूप गण्णत्थलक भी सुझाया है। दीघनिकाय-हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ ६१, में महापण्डित राहुल सांकृत्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप ने कण्णकत्थल पाठ ही स्वीकार किया है। परन्तु श्री नालन्दा से भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित दीघ-निकाय के संस्करण में स्वीकृत पाठ "कण्णकथल" है। देखिये दीघ-निकाय पालि, जिल्द पहली (सीलक्खन्धवग्गो), पृष्ठ १३८।

स्थान	जिन संख्याओं के सुत्तों का उपदेश वहाँ दिया गया
(काशी प्रदेश में) वाराणसी के खेमिय अम्बवन में	९४
(काशी प्रदेश में) वाराणसी के इसिपतन मिगदाय में	१४१
कुसिनारा के बलिहरण वनखण्ड में	१०३
कजंगला के सुवेणुवन या मुखेलुवन में	१५२

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होगा कि मज्झिम-निकाय के ७० सुत्तों का उपदेश केवल श्रावस्ती के जेतवनाराम में दिया गया और ५ का वहीं मृगारमाता के प्रासाद पूर्वाराम में। इस प्रकार मज्झिम-निकाय के कुल ७५ सुत्तों का उपदेश केवल श्रावस्ती में दिया गया। श्रावस्ती के इन दो स्थानों के अतिरिक्त वहीं के अन्धवन (वम्मिक-सुत्तन्त), राजकाराम (नन्दकोवाद-सुत्तन्त), रम्मकाराम (पासरासि या अरियपरियेसन सुत्तन्त), पूर्वकोष्ठक (पासरासि या अरियपरियेसन सुत्तन्त) और तिन्दुकाचीर मल्लिकाराम (समणमण्डिक-सुत्तन्त) के भी इस निकाय में उल्लेख हैं। श्रावस्ती के बाद जो दूसरा मुख्य स्थान इन सुत्तों में दृष्टिगोचर होता है, वह है राजगृह। जैसा ऊपर के विवरण से स्पष्ट है, यहाँ के वेणुवन कलन्दक निवाप, गृध्रकूट पर्वत, जीवक कौमारभृत्य के आम्रवन, इसिगिलि पर्वत, तपोदाराम और एक कुम्भकार के घर में, कुल मिला कर २२ सुत्तों का उपदेश दिया गया। उपर्युक्त स्थानों के अतिरिक्त राजगृह के इन स्थानों का भी इस निकाय में वर्णन है, जैसे कि, इसिगिलि की कालशिला (चूळ-दुक्खक्खन्ध-सुत्तन्त), वैभार पर्वत, वैपुल्य पर्वत, पाण्डव पर्वत (इसिगिलि-सुत्तन्त), गृध्रकूट पर शूकरखाता (दीघनख-सुत्तन्त), राजगृह के समीप दक्षिणागिरि (धानंजानि-सुत्तन्त) और मोरनिवाप परिब्राजकाराम (महासकुलुदायि-सुत्तन्त)। वस्तुतः मगध और कोसल देशों के जितने नगरों और ग्रामों आदि का उल्लेख इस निकाय में है, उतना अन्यत्र नहीं। जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, कुरु, शाक्य, वज्जी, अंग, कोलिय, विदेह और काशी प्रदेशों के कुछ स्थानों का ही उल्लेख इस निकाय में हुआ है। मगध देश के जिन स्थानों का उल्लेख ऊपर हो चुका है, उनके अतिरिक्त इन स्थानों का भी उल्लेख है जैसे कि, उरुवेला और उसमें स्थित सेनानीनिगम (पासरासि या अरियपरियेसन सुत्तन्त, महासच्चक-सुत्तन्त और बोधिराजकुमार-सुत्तन्त) गया और बोध-

गया (पासरासि या अरियपरियेसन सुत्तन्त) तथा पाटलिपुत्र के कुक्कुटाराम (अट्ठक नागर-सुत्तन्त) और वहीं घोटमुखी उपस्थानशाला, जो बुद्ध-परिनिर्वाण के बाद बनी (घोटमुख-सुत्तन्त)। इसी प्रकार कोसल देश के इन स्थानों का भी उल्लेख है, जैसे कि, देववन नामक शालवन जो ओपसाद नामक ब्राह्मण-ग्राम के उत्तर में था (चकि-सुत्तन्त), नगरक कस्बा जो श्रावस्ती के पास था और जहाँ से शाक्यों मेतलुम्प या मेतलूप नामक कस्बे की दूरी ३ योजन थी (धम्मचेतिय-सुत्तन्त), नल्कार गाम, जो श्रावस्ती के समीप था (सुभ-सुत्तन्त), चण्डलकप्प नामक गाँव जहाँ बुद्ध की उपासिका धानजानी ब्राह्मणी रहती थी (संगारव-सुत्तन्त) और साकेत, जो श्रावस्ती से रथविनीत (डाक) के सातवें पड़ाव पर स्थित था (रथविनीत-सुत्तन्त)। इसी प्रकार अन्य देशों मे, कुरु प्रदेश के थुल्लकोट्ठित में मिगाचीर नामक उद्यान का वर्णन है (रट्ठपाल-सुत्तन्त), काशी मे कीटागिरि का उल्लेख है (कीटागिरि-सुत्तन्त), पावा का उल्लेख है (सामगाम-सुत्तन्त), प्रयाग का उल्लेख है (वत्थ-सुत्तन्त) और कौशाम्बी की प्लक्ष गुहा का उल्लेख है (सन्दक-सुत्तन्त)। इस निकाय मे यवन और कम्बोज जैसे सीमान्त देशों का भी वर्णन है, और कहा गया है कि वहाँ भारतीय समाज के चार वर्णों के स्थान पर केवल दो ही वर्ग होते है, आर्य और दास। आर्य होकर दास हो सकता है, दास होकर आर्य हो सकता है। (अस्सलायण सुत्तन्त)। वाहोत (वाह्लीक) राष्ट्र मे बनाये गये वाहीतिक नामक वस्त्र का भी इस निकाय मे उल्लेख है (बाहीतिय सुत्तन्त) और इसी प्रकार सूनापरान्त जनपद का भी (पुण्णोवाद-सुत्तन्त)। जिन विभिन्न नदियों का इस निकाय के सुत्तों में उल्लेख हुआ है, उन के नाम हैं अचिरवती, गगा, बाहुमती, बाहुका, बाहुलिका, यमुना, सरभू (सरयू) सुन्दरिका और सरस्वती। दण्डकारण्य, कलिङ्गारण्य मेध्यारण (मेज्झारञ्ञ) और मातङ्गारण्य, जैसे अरण्यों का भी उल्लेख इस निकाय के एक सुत्त (उपालि-सुत्तन्त) में हुआ है। लिच्छवि, वज्जी, मल्ल (चूलसच्चक-सुत्तन्त) और शाक्य (चातुम-सुत्तन्त), जैसे गण-तन्त्रों या संघ-राज्यों का भी इस निकाय में उल्लेख है।

संयुत्त-निकाय ५ वग्गों (वर्गों) में विभक्त है, जिनमें क्रमशः ११,१०, १३,१०, और १२ अर्थात् कुल मिला कर ५६ संयुत्त हैं। इन संयुत्तों में भिन्न-भिन्न संख्याओं के सुत्त है। बुद्धकालीन भारतीय ग्रामीण जीवन का इस

निकाय में बड़ा सुन्दर चित्र मिलता है। भौगोलिक दृष्टि से भी संयुत्त-निकाय का प्रभूत महत्व है। संयुत्त-निकाय के अनेक सुत्तों की भौगोलिक पृष्ठभूमि प्रायः वही है जो दीघ और मज्झिम निकायों की। संयुत्त-निकाय के सर्वाधिक सुत्तों का उपदेश श्रावस्ती के जेतवनाराम में दिया गया, जिनकी संख्या ७२७ है। ९ सुत्तों का उपदेश श्रावस्ती में मृगारमाता के पूर्वाराम प्रासाद (जटिल-सुत्त, पवारणा-सुत्त, पुण्णमा-सुत्त, जरा-सुत्त, पठम पुब्बाराम-सुत्त, मोग्गल्लान-सुत्त आदि) में दिया गया। इस प्रकार संयुत्त-निकाय के कुल सुत्तों में से ७३६ का उपदेश केवल श्रावस्ती में दिया गया। कुछ अन्य सुत्त ऐसे भी हैं जिनका उपदेश श्रावस्ती के आसपास ही दिया गया, परन्तु निश्चित स्थान का उल्लेख नहीं किया गया है। श्रावस्ती के जिन अन्य स्थानों का निर्देश इस निकाय में मिलता है, उनमें राजकाराम (सहस्स-सुत्त), पुब्बकोट्ठक (पुब्बकोट्ठ -सुत्त), अन्धकवन या अन्धवन (सोमा-सुत्त, किसा-गोतमी सुत्त, विजया-सुत्त, उप्पलवण्णा-सुत्त, चाला-सुत्त, उपचाला-सुत्त, सिसूपचाला-सुत्त, सेला-सुत्त, वजिरा-सुत्त, बाल्हगिलान-सुत्त) और सललागार नामक विहार (सललागार-सुत्त) के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। श्रावस्ती और साकेत के बीच में स्थित तोरणवत्थु नामक एक गाँव का भी उल्लेख इस निकाय के खेमा-थेरी-सुत्त में है। श्रावस्ती के बाद जिस नगर का उल्लेख इस निकाय के विभिन्न सुत्तों की भौगोलिक पृष्ठभूमि के रूप में बहुल रूप से मिलता है, वह है राजगृह। इस नगर के प्रसिद्ध वेणुवन कलन्दकनिवाप में जिन सुत्तों का उपदेश दिया गया या जिनमें इसका उल्लेख है, उनके नाम हैं, दीघलट्ठि-सुत्त, नाना तित्थिय-सुत्त, सोप्पसि-सुत्त, आयु-सुत्त, गोधिक सुत्त, धनञ्ञानि-सुत्त, असुरिन्द-सुत्त, विलङ्गिक-सुत्त कोण्डञ्ञ-सुत्त, सुक्का-सुत्त, चीरा-सुत्त, दलिद्द-सुत्त, अक्कोस-सुत्त, अचेल-सुत्त, अञ्ञतित्थिय-सुत्त, सुसीम-सुत्त, गगा-सुत्त, तिंसति-सुत्त, जिण्ण-सुत्त, पठम-ओवाद-सुत्त, दुतिय-ओवाद-सुत्त, ततिय-ओवाद-सुत्त, घट-सुत्त, पठम सोण-सुत्त, दुतिय-सोण-सुत्त, वक्कलि-सुत्त, अस्सजि-सुत्त, सूचोमुखी-सुत्त, ञानाभिञ्ञा-सुत्त, चीवर-सुत्त, अट्ठिपेसि-सुत्त, अन्धभूत-सुत, समिद्धि-सुत्त, छन्न-सुत्त, सोण-सुत्त, सीवक-सुत्त, पुत्त-सुत्त, मणिचूल-सुत्त, पठम गिलान-सुत्त, दुतिय गिलान-सुत्त, ततीय गिलान-सुत्त, सिरिवड्ढ-सुत्त, मानदिन्न-सुत्त, किम्बिल-सुत्त, दीघायु-सुत्त और चिन्ता-सुत्त। राजगृह के इन

अन्य स्थानों का भी इस निकाय में उल्लेख है, जैसे कि, गृध्रकूट पर्वत (पासाण-सुत्त, देवदत्त-सुत्त, यजमान-सुत्त, चंकमं-सुत्त, पुग्गल-सुत्त, वेपुल्लपब्बत-सुत्त, पक्कन्त-सुत्त, अट्ठिपेसि-सुत्त, कूपनिमुग्ग-सुत्त, वक्कलि-सुत्त, सक्क-सुत्त, दुतिय गिलान-सुत्त, अभय-सुत्त, सूकरखाता-सुत्त, पपात सुत्त), सूकरखाता, जो गृध्रकूट पर एक स्थान था (सूकरखाता-सुत्त), वेपुल्ल पब्बत (पुग्गल-सुत्त, वेपुल्ल-पब्बत-सुत्त), सप्पसोण्डिक पब्भार (उपसेन-सुत्त), सीतवन (सुदत्त-सुत्त, उपसेन-सुत्त), प्रतिभानकूट (पपात-सुत्त), काल शिला (गोधिक-सुत्त, मोग्गल्लान-सुत्त, गोधिक-सुत्त), दक्षिणागिरि (कसि-सुत्त), तपोदाराम (समिद्धि-सुत्त), मद्दकुच्छि मिगदाय (सकलिक-सुत्त, जो कुछ परिवर्तन से दो बार इस निकाय में आया है), पिप्फलि गुहा (पठम गिलान सुत्त) और काश्यपकाराम (अस्सजि-सुत्त)। इस निकाय के कसि-सुत्त मे राजगृह के समीप दक्षिणागिरि पर स्थित एकनाला नामक ब्राह्मण-ग्राम का उल्लेख है और एक दूसरे सुत्त (अन्धकविन्द-सुत्त) में राजगृह के समीप अन्धकविन्द नामक ग्राम का। चिन्ता-सुत्त में राजगृह के समीप सुमागधा नामक पुष्करिणी का वर्णन है। अन्य नगरों में, जिनका प्रमुख रूप से इस सुत्त में उल्लेख है, वैशाली, कौशाम्बी, वाराणसी, साकेत और कपिलवस्तु अधिक महत्वपूर्ण है। वैशाली की प्रसिद्ध महावन कूटागारशाला का वर्णन पज्जुन्नधीतु-सुत्त, चुल्लपज्जुन्नधीतु-सुत्त, आयतन-सुत्त, ततिय वत-सुत्त, कलिङ्गर-सुत्त, विसाख-सुत्त, महालि-सुत्त, अनुराध-सुत्त, वेसालि-सुत्त, पठम गेलञ्ज-सुत्त, चेतिय-सुत्त, लिच्छवि-सुत्त और पठम छिग्गल-सुत्त में है। अम्बपाली-सुत्त तथा सब्ब-सुत्त में वैशाली-स्थित अम्बपाली के आम्रवन का उल्लेख है। वैशाली के चापाल चैत्य, गौतमक चैत्य, सप्ताम्र चैत्य, बहुपुत्रक चैत्य और सारन्दद चैत्य का उल्लेख इस निकाय के चेतिय-सुत्त में है। इसी निकाय के चीवर-सुत्त मे भी बहुपुत्रक चैत्य का उल्लेख है। वैशाली के समीप वेलुव ग्राम का उल्लेख इस निकाय के गिलान-सुत्त में है। कौशाम्बी और उसके प्रसिद्ध घोषिताराम का उल्लेख संयुत्त-निकाय के अनेक सुत्तो मे हुआ है, जैसे कि कोसम्बी-सुत्त, पारिलेय्य-सुत्त, खेमक-सुत्त, छन्न-सुत्त, भरद्वाज-सुत्त, घोसित-सुत्त, कामभू-सुत्त, उदायी-सुत्त, पठम-दारुक्खन्ध-सुत्त, उपवान-सुत्त, पिण्डोल-सुत्त, और सेख-सुत्त। कौशाम्बी के समीप बदरिकाराम नामक विहार का वर्णन खेमक-सुत्त में

है। सिंसपा-सुत्त के साक्ष्य पर सिंसपा वन कौशाम्बी से कुछ दूर पर स्थित था। वाराणसी और उसके समीप इसिपतन मिगदाय (ऋषिपतन मृगदाव) का उल्लेख पास-सुत्त, नलकलाप-सुत्त, अनोत्तापी-सुत्त, परम्परण-सुत्त, पञ्चवग्गिय-सुत्त, छन्न-सुत्त, सील-सुत्त, कोट्ठित-सुत्त, सारिपुत्त-कोट्ठित-सुत्त, धम्मदिन्न-सुत्त और धम्मचक्कपवत्तन-सुत्त में हुआ है। साकेत के अंजनवन मृगदाव का उल्लेख इस निकाय के ककुध-सुत्त, कुण्डलि-सुत्त और साकेत-सुत्त में हुआ है तथा इसी नगर के समीप स्थित कंटकीवन (जिसे अट्ठकथा में महाकरमण्ड वन भी कहा गया है) पदेस-सुत्त तथा पठम कण्टकी-सुत्त में उल्लिखित है। कपिलवस्तु के महावन (वैशाली के महावन का उल्लेख पहले किया जा चुका है) का उल्लेख इस निकाय के समय-सुत्त में तथा न्यग्रोधाराम का पिण्डोल-सुत्त, अवस्सुत-सुत्त, कङ्खेय्य सुत्त, पठम महानाम-सुत्त, दुतिय महानाम-सुत्त, महानाम-सुत्त और गिलान-सुत्त में है। अन्य नगरों, निगमों और ग्रामों में इस निकाय के गग्गरा-सुत्त में चम्पा नगरी और वहाँ की प्रसिद्ध गग्गरा पुष्करिणी का उल्लेख है। नालन्दा और उसके प्रावारिक आम्रवन का उल्लेख चीवर-सुत्त, नालन्दा-सुत्त, पच्छाभूमक-सुत्त, देसना-सुत्त, सङ्ख-सुत्त में मिलता है। पाटलिपुत्र के कुक्कुटाराम नामक विहार का परिचय हम पठम कुक्कुटाराम-सुत्त, सील-सुत्त तथा परिहान-सुत्त में प्राप्त करते हैं। पञ्चाल देश के आलवी नामक नगर और उसके अग्गालव चैत्य का उल्लेख निक्खन्त-सुत्त, अतिमञ्ञना-सुत्त और आलवक-सुत्त में है। अंग जनपद और उसके आपण नामक कस्बे का उल्लेख आपण-सुत्त में है। इस निकाय के परिनिब्बान-सुत्त में हम भगवान् बुद्ध को, दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त के समान, परिनिर्वाण के समय कुसिनारा में मल्लों के उपवर्तन (उपवत्तन) नामक शालवन में दो शाल-वृक्षों के नीचे विहार करते देखते हैं। मल्ल जनपद के उरुवेलकप्प कस्बे से भद्द-सुत्त और मल्लिक-सुत्त हमारा परिचय कराते हैं। कोसल देश के इच्छानंगल नामक गाँव और उसके समीप इसी नाम के वन से हमारा परिचय इच्छानंगल-सुत्त कराता है। कोसल देश के ही एकशाला नामक ब्राह्मण-ग्राम का परिचय हम पतिरूप-सुत्त में और इसी देश के शाला नामक ब्राह्मण-ग्राम का परिचय हम साला-सुत्त में प्राप्त करते हैं। वेलुद्वारेय्य-सुत्त में कोसल देश के वेलुद्वार नामक ब्राह्मण-ग्राम का उल्लेख है। वज्जी जनपद के उक्काचेल नामक ग्राम का उल्लेख हमें निब्बान-सुत्त और चेल-सुत्त में

मिलता है। इसी जनपद के कोटिग्राम नामक ग्राम का उल्लेख हमें पठम विज्जा-सुत्त में मिलता है। वज्जी देश के ञातिका, नादिका या नातिका नामक नगर के पास गिञ्जकावसथ नामक स्थान का उल्लेख हमें ञातिका-सुत्त, गिञ्जकावसथ-सुत्त और पठम गिञ्जकावसथ-सुत्त में मिलता है। वज्जी जनपद के पुब्बविज्झन नामक एक गाँव का परिचय हमें छन्न-सुत्त में मिलता है। यह गाँव भिक्षु छन्न की जन्मभूमि बताया गया है। काशियों के एक गाँव मिगपत्थक का उल्लेख हमें सञ्ञोजन-सुत्त में मिलता है। यह गाँव मच्छिकासण्ड में अम्बाटक वन के पीछे था। वज्जियों के हत्थिगाम नामक गाँव का परिचय हमें वज्जि-सुत्त में मिलता है। कुरु जनपद के प्रसिद्ध कस्बे कम्मासदम्म का उल्लेख निदान-सुत्त और सम्मसन-सुत्त में हुआ है। कोलिय जनपद के उत्तर नामक कस्बे का वर्णन हमें पाटलि-सुत्त में मिलता है। कोलियों के एक अन्य कस्बे हलिद्दवसन का उल्लेख मेत्त-सुत्त में हुआ है। शाक्यों के कस्बे के रूप में देवदह का उल्लेख देवदह-खण-सुत्त में है। शाक्य जनपद के सिलावती (शिलावती) नामक कस्बे या प्रदेश का उल्लेख सम्बहुल-सुत्त और समिद्ध सुत्त में है। मगध देश के गया का उल्लेख सूचिलोम तथा आदित्त सुत्तों में है। आदित्त-सुत्त मे गया के समीप गयासीस पर्वत का भी उल्लेख है। पिण्ड-सुत्त में मगध के पंचशाल नामक ब्राह्मण-ग्राम का उल्लेख है, जहाँ से बिना भिक्षा प्राप्त किये भगवान् बुद्ध रीता भिक्षापात्र लेकर लौट आये थे। उरुवेला के समीप सेनानीगाम का उल्लेख पास-सुत्त में है। उरुवेला का उल्लेख इस निकाय के अन्य अनेक सुत्तों में भी पाया जाता है। गंगा नदी के किनारे किम्बिला नामक नगर का उल्लेख हमें दुतिय दारुक्खन्ध-सुत्त में मिलता है। किम्बिल-सुत्त से हमें सूचना मिलती है कि इस नगर में भी (राजगृह के समान) एक वेणुवन था। वेरहच्चानि-सुत्त में कामण्डा नामक एक ग्राम का उल्लेख है और उदायी-सुत्त, सेदक-सुत्त और जनपद-सुत्त में सुम्भ (सं० सुह्म) जनपद के एक कस्बे का उल्लेख है, जिस का नाम सेदक, सेतक या देसक था। बुद्ध-पूर्व युग के पुरातन कालीन नगरों कुशावती और अरुणवती का क्रमशः गोमय-सुत्त और अरुणवती-सुत्त में विवरण है। संयुत्त-निकाय के विभिन्न सुत्तों में अंग, मगध, अवन्ती, वज्जी, कुरु, काशी, कोलिय, लिच्छवि, मल्ल, शाक्य और सुम्भ आदि जनपदों के उल्लेख बिखरे पड़े हैं। सूनापरान्त जनपद का उल्लेख पुण्ण-

सुत्त में है और ओकिलिनी-सुत्त में हम कलिंग-राजा का निर्देश पाते हैं। नदी, पर्वत और वनों के सम्बन्ध में हम इस निकाय में महत्वपूर्ण सूचना पाते हैं। पठम-सम्बेज्ज-सुत्त मे पाँच महा नदियों का उल्लेख है, यथा गंगा, यमुना, अचिरवती, सरभू और मही। अन्य अनेक सुत्तों में गंगा का पूर्व की ओर बहना बताया गया है। किम्बिला और उक्काचेल में होकर गगा के बहने का विभिन्न सुत्तों में वर्णन किया गया है।[1] अन्य नदियों में, जिनका इस निकाय के सुत्तों में उल्लेख है, उरुवेला के समीप बहने वाली नेरंजरा (तपोकम्म-सुत्त, नाग-सुत्त, सुभ-सुत्त, सत्तवस्सानि-सुत्त, आयाचन-सुत, गारव-सुत्त, ब्रह्म-सुत्त और मग्ग-सुत्त), कोसल जनपद की सुन्दरिका नदी (सुन्दरिका-सुत्त), श्रावस्ती में बहने वाली सुतनु नदी (सुतनु-सुत्त) और राजगृह के समीप की सप्पिणी नदी (सनंकुमार-सुत्त) के नाम उल्लेखनीय है। हिमवन्त या हिमालय पर्वत का उल्लेख नाना तित्थिय-सुत्त, रज्ज-सुत्त, नाग-सुत्त, हिमवन्त-सुत्त, मक्कट-सुत्त और पठम पब्बतुपमा सुत्त में है। नकुलपिता-सुत्त में भग्ग देश के सुंसुमार गिरि का उल्लेख है। श्रावस्ती जनपद के कुररघर नामक पर्वत का उल्लेख पठम हालिद्दिकानि

---

१. संयुत्त-निकाय के पठम-दारुक्खन्ध-सुत्त (संयुत्त-निकाय, हिन्दी अनुवाद, दूसरा भाग, पृष्ठ ५२५) में कहा गया है, "एक समय भगवान् कौशाम्बी में गंगा नदी के तीर पर विहार करते थे।" कौशाम्बी, जैसा हम उसे पुरातत्व सम्बन्धी खनन कार्य के ठोस साक्ष्य पर जानते हैं, गंगा नदी के किनारे पर नहीं है। इसी प्रकार इसी निकाय के फेण-सुत्त के आरम्भ में कहा गया है, "एक समय भगवान् अयोध्या में गंगा नदी के तट पर विहार करते थे।' (हिन्दी अनुवाद, पहला भाग, पृष्ठ ३८२)। निश्चयतः अयोध्या भी गंगा नदी के तट पर नहीं है। डॉ० ई० जे० थॉमस ने इन कठिनाइयों का अनुभव (दि लाइफ ऑव बुद्ध, पृष्ठ १५) में किया है, परन्तु "समझ में न आने वाली परम्परा" से अधिक वे इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कह सके हैं। कौशाम्बी के सम्बन्ध में मिलाइये हेमचन्द्र रायचौधरी: पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एशियन्ट इण्डिया, पृष्ठ १३१, पद-संकेत २ तथा वहीं देखिये मललसेकर-सम्पादित डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स" का निर्देश भी।

सुत्त, दुतिय हालिद्दिकानि-सुत्त तथा हलिद्दिक-सुत्त में है। अवन्ती के मक्करकट नामक अरण्य का उल्लेख लोहिच्च-सुत्त में है और भग्ग देश के भेसकलावन का नकुलपिता-सुत्त में। पारिलेय्य-सुत्त में हमें पारिलेय्यक वनखण्ड का उल्लेख मिलता है। (काशी जनपद के) मच्छिकासण्ड में अम्बाटक वन का उल्लेख हम सञ्ञोजन-सुत्त, पठम इसिदत्त-सुत्त, दुतिय इसिदत्त-सुत्त, कामभू-सुत्त, महक-सुत्त और गोदत्त-सुत्त में पाते हैं। इस प्रकार बुद्धकालीन भूगोल सम्बन्धी प्रभूत सामग्री हमें संयुत्त-निकाय में मिलती है।

भौगोलिक दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण सूचना जो हमें अंगुत्तर-निकाय में मिलती है, सोलह महाजनपदों सम्बन्धी विवरण है। अंग, मगध, काशी, कोसल, वज्जी, मल्ल, चेति, वंस, (वत्स) कुरु, पंचाल, मच्छ, (मत्स्य) सूरसेन, अस्सक, अवन्ती, गन्धार और कम्बोज, इन सोलह जनपदों का एक साथ उल्लेख प्रथम बार अंगुत्तर-निकाय में हुआ है।[१] राजगृह के गृध्रकूट पर्वत का कई बार उल्लेख इस निकाय में हुआ है। राजा अजातशत्रु का ब्राह्मण मंत्री वर्षकार यहीं भगवान् बुद्ध से मिलने आया था।[२] (बाद में जैसा हमने दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त में देखा है, वह अपने साथी मन्त्री सुनीध (सुनीथ) के सहित पाटलिग्राम में भी भगवान् से मिला था)। अंगुत्तर-निकाय में उल्लेख है कि एक बार भगवान् कोसल देश के पंकधा नामक नगर में गये थे और वहाँ से लौट कर वे राजगृह आये थे, जहाँ उन्होंने गृध्रकूट पर्वत पर विहार किया था।[३] एक अन्य अवसर पर भी हम उन्हें गृध्रकूट पर्वत पर विहार करते देखते हैं।[४] इसी निकाय में हम बुद्ध-शिष्य स्थविर महाकच्चान (महाकात्यायन) को मथुरा (मधुरा) के गुन्दावन में विहार करते देखते हैं।[५] कोसल के अनेक ग्रामों और नगरों का इस

---

१. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द पहली, पृष्ठ २१३; जिल्द चौथी, पृष्ठ २५२ (पालि टैक्सट् सोसायटी संस्करण)

२. वहीं, जिल्द चौथी, पृष्ठ १७-२१

३. वहीं जिल्द पहली, पृष्ठ २३६-२३७

४. वहीं जिल्द तीसरी, पृष्ठ १

५. वहीं, जिल्द पहली, पृष्ठ ६७

निकाय में उल्लेख है। एक बार भगवान् ने कोसल देश के वेनागपुर नामक ब्राह्मण-ग्राम में विहार किया था और वहाँ के ब्राह्मणों ने त्रिरत्न की शरणागति प्राप्त की थी।[1] उनके पंकधा जाने का उल्लेख हम पहले कर ही चुके हैं। कोसल देश के इच्छानंगल नामक ब्राह्मण-ग्राम में भी भगवान् के जाने का इस निकाय में उल्लेख है।[2] भगवान् कोसल देश के नलकपान नामक कस्बे में भी गये और उसके समीप पलासवन में ठहरे।[3] श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में भी भगवान् के ठहरने का अनेक जगह उल्लेख इस निकाय में है। इसी प्रकार महावन कूटागारशाला में हम भगवान् को विहार करते इस निकाय में कई बार देखते हैं। एक अवसर पर वैशाली के सारन्दद चैत्य में भी हम भगवान् को निवास करते देखते हैं। यहीं लिच्छवियों को भगवान् ने उन्नति के लिए सात बातों के पालन करने का उपदेश दिया था।[4] वैशाली के महावन में तरुण लिच्छवियों को धनुष-बाण और कुत्ते लिए हुए घूमते और शिकार खेलते इस निकाय में हम देखते हैं।[5] इस निकाय से हमें मालूम पड़ता है कि वज्जियों के भण्डगाम नामक ग्राम में भगवान् ने विहार किया था,[6] और कोलियों के कक्करपत्त नामक नगर में भी।[7] मल्लों के कुसिनारा-स्थित उपवत्तन नामक शालवन में भगवान् को विहार करते हम इस निकाय में भी देखते हैं,[8] और एक अन्य अवसर पर उन्हीं के उरुवेलकप्प नामक कस्बे में भी।[9] इस निकाय में हम भगवान् को मधुरा (मथुरा)

---

१. वहीं, जिल्द पहली, पृष्ठ १८०।
२. वहीं, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३०; जिल्द चौथी, पृष्ठ ३४०।
३. वहीं, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ १२२
४. वहीं, जिल्द चौथी, पृष्ठ १६
५. वहीं, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ७५।
६. वहीं, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १।
७. वहीं, जिल्द चौथी, पृष्ठ २८१।
८. वहीं, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ७९।
९. वहीं, जिल्द चौथी, पृष्ठ ४३८।

और वेरंजा में भी विहार करते देखते हैं।[1] वेरंजक-ब्राह्मण-सुत्त में हम उन्हें मथुरा और वेरंजा के रास्ते में जाते देखते हैं। वेरंजा में निवास करते समय ही भगवान् ने वेरंज या वेरंजक नामक ब्राह्मण को उपदेश दिया था।[2] भग्ग देश के भेसकलावन मिगदाय में भी भगवान् ने विहार किया था,[3] और विभिन्न अवसरों पर अंग देश के भद्दिय नगर में भी[4] और आलवी के अग्गालक चैत्य में भी।[5] कुरु देश के प्रसिद्ध कस्बे कम्मासदम्म में गम्भीर उपदेश करते भगवान् को हम इस निकाय में भी देखते हैं।[6] स्थविर नारद को हम इस निकाय में पाटलिपुत्र के कुक्कुटाराम नामक विहार में निवास करते देखते हैं।[7] इस निकाय से हमें सूचना मिलती है कि भगवान् ने एक बार कालामों के केसपुत्त नामक निगम की भी यात्रा की थी।[8] उन्होंने चेति जनपद के सहजाति नगर में भी विहार किया था।[9] एक अन्य अवसर पर भगवान् कजंगल गये थे और वहाँ के वेणुवन में ठहरे थे।[10] वाराणसी के समीप इसिपतन का भी इस निकाय में उल्लेख है,[11] और उत्तर नामक स्थविर के सखेय्य पर्वत पर महिसवत्थु नामक स्थान पर निवास करने का भी।[12] सयुत्त-निकाय के समान इस निकाय मे भी पाँच महानदियों का विवरण है, जैसे कि, गगा, यमुना, अचिरवती, सरभू

१. वहीं, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५७।
२. वहीं, जिल्द चौथी, पृष्ठ १७२।
३. वहीं, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६१।
४. वहीं, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३६।
५. वहीं, जिल्द चौथी, पृष्ठ २१८।
६. वहीं, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ २९-३०।
७. वहीं, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ५७।
८. वहीं, जिल्द पहली, पृष्ठ १८८।
९. वहीं, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ४१।
१०. वहीं, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ५४।
११. वहीं, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३२०।
१२. वहीं, जिल्द चौथी, पृष्ठ १६२।

और मही।[1] इस निकाय में दसम नामक गृहस्थ के अट्ठकनगर से पाटलिपुत्र आने का उल्लेख है, जहाँ के कुक्कुटाराम में वह स्थविर आनन्द के दर्शनार्थ गया था। यह जानकर कि आर्य आनन्द वैशाली के वेलुवगाम में गये हुए हैं, वह वहाँ उनके दर्शनार्थ गया।[2] इस निकाय से हमें यह सूचना मिलती है कि इस समय काशी ग्राम कोसलराज प्रसेनजित् (पसेनदि) के अधिकार में था।[3]

खुद्दक-निकाय के १५ ग्रन्थों में से वैसे तो प्रायः प्रत्येक में ही कुछ न कुछ भौगोलिक सूचना मिलती है, परन्तु विस्तार-भय से हम यहाँ उनमें से केवल कुछ में प्राप्त भौगोलिक निर्देशों का उल्लेख करेंगे। खुद्दक-निकाय के जिस ग्रन्थ में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भौगोलिक सूचना मिलती है, वह जातक या ठीक कहें तो जातकट्ठकथा है।

अंग और मगध जनपदों का विस्तृत विवरण जातक में उपलब्ध होता है। जातक की एक कथा के अनुसार अंगराजा (अंगराज) ने मगध को जीत लिया था।[4] ब्रह्मवड्ढन (वाराणसी) के राजा मनोज के द्वारा अंग और मगध को भी जीतने का उल्लेख है।[5] बुद्ध-पूर्व काल में एक समृद्ध राज्य के रूप में काशी का उल्लेख जातक में है।[6] कोसलराज प्रसेनजित् के पिता महाकोसल ने अपनी कन्या कोसलादेवी का विवाह मगधराज बिम्बिसार से किया था और काशी ग्राम को, जिसकी आय एक लाख थी, अपनी कन्या के स्नान और सुगंध के व्यय के लिए दिया था, इसका उल्लेख हरितमात जातक और वड्ढकिसूकर जातक में है। काशी प्रदेश की राजधानी वाराणसी का उल्लेख कई जातकों में है और उसका विस्तार बारह योजन बताया गया है।[7] रुक्खधम्म जातक और फन्दन जातक में, जहाँ शाक्यों और कोलियों के झगड़े का विवरण दिया गया है, रोहिणी नदी

---

१. वहीं, जिल्द चौथी, पृष्ठ १०१।
२. वहीं, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ३४२।
३. वहीं, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ५९।
४. जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ २७२।
५. जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ३१२-३१६।
६. जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ११५; जिल्द पहली, पृष्ठ २६२।
७. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ १६०।

को दोनों जनपदों की सीमा बताया गया है। जातक के वर्णनानुसार अंग जनपद की राजधानी चम्पा मिथिला से ६० योजन की दूरी पर थी।[1] सिवि जातक में सिवि राज्य की राजधानी अरिट्ठपुर नामक नगर बताया गया है। भीमसेन जातक में तक्कसीला (तक्षशिला) का एक विशाल शिक्षा-केन्द्र के रूप में वर्णन है। अस्सक जातक में अस्सक राज्य और उसकी राजधानी पोतलि का उल्लेख है। चेतिय जातक में कहा गया है कि चेति (चेदि) देश के राजा के पाँच पुत्रों ने हत्थिपुर, अस्सपुर, सीहपुर, उत्तरपंचाल और दद्दरपुर, इन पाँच नगरों को बसाया था। इसी जातक में उल्लेख है कि चेति राज्य की राजधानी सोत्थिवति नगरी थी। बावेरु जातक में बाबेरु (बेबीलान) नामक विदेशी राज्य का वर्णन है, जहाँ कुछ भारतीय व्यापारी सामुद्रिक यात्रा करते हुए गये थे। सुसन्धि जातक में तत्कालीन भारत के प्रसिद्ध बन्दरगाह भरुकच्छ (भड़ोंच) का उल्लेख है। गंगमाल जातक में गन्धमादन पर्वत का उल्लेख है। एक अन्य जातक-कथा में हिमवन्त पदेस के अन्तर्गत हिंगुल पब्बत का भी उल्लेख है। गन्धार जातक में हमें कस्मीर-गन्धार का उल्लेख मिलता है और विदेह राज्य का भी। कलिंगबोधि जातक में मद्द रट्ठ का उल्लेख है। कुम्भकार जातक से हमें सूचना मिलती है कि उत्तर-पंचाल की राजधानी कम्पिल्ल नामक नगरी थी। कण्ह जातक में संकस्स का उल्लेख है। सरभंग जातक में सुरट्ठ नामक देश का निर्देश है और एक अन्य जातक में कम्बोज देश का। सालित्तक जातक और कुरुधम्म जातक से हमें पता लगता है कि अचिरवती नदी श्रावस्ती में होकर बहती थी। बक ब्रह्मा जातक में एणी नामक नदी का उल्लेख है। चम्पेय्य जातक से हमें सूचना मिलती है कि चम्पा नदी अंग और मगध जनपदों की सीमा के बीच में होकर बहती थी। सरभंग जातक में गोदावरी नदी का उल्लेख है और उसे कविट्ठ वन के समीप बताया गया है। इसी जातक में मज्झिम देस का उल्लेख है। महाटवी में स्थित अंजन पर्वत तथा साकेत के समीप अंजन वन का भी उल्लेख विभिन्न जातक-कथाओं में है। जातक की विभिन्न कथाओं में हिमवन्त, उत्तर हिमवन्त, मद्दगिरि, अहोगग (अधोगंग) इसिधर, उदक पब्बत, नंदमूलक, निसभ, नेरु, पंडरक, मणिपस्स, मनोसिला, युगन्धर, यामन,

---

१. जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ ३२।

गिज्झकूट, चित्तकूट, तिकूट, जैसे अनेक पर्वतों और पहाड़ियों; अग्गिमाल समुद्द, खुरमाल, दधिमाल, वलभामुख, जैसे समुद्रों; अनोतत, कण्गमुण्डा, खेम, चक्कदह, छद्दन्त, संखपाल, और सिवली जैसी अनेक झीलों; गंगा, यमुना, हेमवता, केबुक, कोसिकी, सोटुम्बरा, नम्मदा, नेरंजरा, सीदा, मिगसम्मता, वेत्तवती, भागीरथी, सातोडिका जैसी अनेक नदियों और करंडक, कविट्ठ, दण्डकारण्य, नारिवन, मेज्झारञ्ञ जैसे अनेक वनों और अरण्यों के निर्देश हैं। इसी प्रकार नगरों में, ऊपर निर्दिष्ट नगरों के अलावा, अयोज्झा, अस्सपुर, इन्दपत्त, उज्जेनी, गया, कजंगल, किम्बिला, केतुमती, कुशावती, जेतुत्तर, मोलिनी, पुष्पवती, पयाग तित्थ (प्रयाग तीर्थ), भोगवती, रोरुव, मिथिला, द्वारका (द्वारवती), दन्तपुर, कोसम्बी, वेत्तवती, सीहपुर, हिरण्यवती जैसे नगरों के उल्लेख विभिन्न जातक-कथाओं में है। तत्कालीन राज्यों में अवन्ती, पंचाल, उत्तर पंचाल, उत्तरापथ, कोसल, कुरु, गन्धार, अस्सक, मेज्झ, मल्ल, सिवि, विदेह, महिसक, वंस, कोकनद, कोटुम्बर आदि के विवरण विभिन्न जातक-कथाओं में पाये जाते हैं। जातकों में अनेक गामों के भी विवरण हैं जैसे कि थूण नामक ब्राह्मण-ग्राम, गंगा नदी के किनारे गग्गलि गाँव, मगध का मचल नामक गाँव और राजगृह के समीप सालिन्दिय नामक ब्राह्मण-ग्राम, आदि। मिथिला के लम्बचूलक नामक बाजार का भी वर्णन एक जातक-कथा में है।

मगध जनपद के गिरिव्रज में स्थित गृध्रकूट पर्वत तथा उसके उत्तर में स्थित वेपुल्ल पर्वत का उल्लेख इतिवुत्तक के वेपुल्ल पब्बत-सुत्त में है। "सो खो पनायं अक्खातो वेपुल्लो पब्बतो महा। उत्तरो गिज्झकूटस्स मगधानं गिरिब्बजे।"

"उदान" के बोधि-वग्ग में हम भगवान् बुद्ध को उरुवेला में नेरजरा नदी के बोधि-वृक्ष के नीचे बुद्धत्व-प्राप्ति के तुरन्त बाद ही विहार करते देखते है। उसके बाद हम उन्हें अजपाल नामक बरगद के पेड़ (अजपाल न्यग्रोध) की छाया में विहार करते देखते हैं। श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में तथा वहीं स्थित मृगारमाता के पूर्वाराम प्रासाद में 'उदान' के कई ऊर्ध्वगामी उद्गार भगवान् के मुख से निकले। उसके कई अंश राजगृह के वेणुवन कलन्दकनिवाप में भी भगवान् के मुख से निःसृत हुए। 'उदान' से हमें पता चलता है कि भगवान् ने गया के गयासीस (गयाशीर्ष) पर्वत पर भी विहार किया था। कुण्डिया नगर के

को दोनों जनपदों की सीमा बताया गया है। जातक के वर्णनानुसार अंग जनपद की राजधानी चम्पा मिथिला से ६० योजन की दूरी पर थी।[1] सिवि जातक में सिवि राज्य की राजधानी अरिट्ठपुरनामक नगर बताया गया है। तिलमुट्ठि जातक में तक्कसिला (तक्षशिला) का एक विशाल शिक्षा-केन्द्र के रूप में वर्णन है। अस्सक जातक में अस्सक राज्य और उसकी राजधानी पोतलि का उल्लेख है। चेतिय जातक में कहा गया है कि चेति (चेदि) देश के राजा के पाँच पुत्रों ने हत्थिपुर, अस्सपुर, सीहपुर, उत्तरपंचाल और दद्दरपुर, इन पाँच नगरों को बसाया था। इसी जातक में उल्लेख है कि चेति राज्य की राजधानी सोत्थिवति नगरी थी। बावेरु जातक में बावेरु (वेबीलान) नामक विदेशी राज्य का वर्णन है, जहाँ कुछ भारतीय व्यापारी सामुद्रिक यात्रा करते हुए गये थे। सुसन्धि जातक में तत्कालीन भारत के प्रसिद्ध बन्दरगाह भरुकच्छ (भड़ोंच) का उल्लेख है। गंगमाल जातक में गन्धमादन पर्वत का उल्लेख है। एक अन्य जातक-कथा में हिमवन्त पदेस के अन्तर्गत हिंगुल पब्बत का भी उल्लेख है। गन्धार जातक में हमें कस्मीर-गन्धार का उल्लेख मिलता है और विदेह राज्य का भी। कलिंगबोधि जातक में मद्द रट्ठ का उल्लेख है। कुम्भकार जातक से हमें सूचना मिलती है कि उत्तर-पंचाल की राजधानी कम्पिल्ल नामक नगरी थी। कण्ह जातक में संकस्स का उल्लेख है। सरभंग जातक में सुरट्ठ नामक देश का निर्देश है और एक अन्य जातक में कम्बोज देश का। सालित्तक जातक और कुरुधम्म जातक से हमें पता लगता है कि अचिरवती नदी श्रावस्ती में होकर बहती थी। बक ब्रह्मा जातक में एणी नामक नदी का उल्लेख है। चम्पेय्य जातक से हमें सूचना मिलती है कि चम्पा नदी अंग और मगध जनपदों की सीमा के बीच में होकर बहती थी। सरभंग जातक में गोदावरी नदी का उल्लेख है और उसे कविट्ठ वन के समीप बताया गया है। इसी जातक में मज्झिम देस का उल्लेख है। महाटवी में स्थित अंजन पर्वत तथा साकेत के समीप अंजन वन का भी उल्लेख विभिन्न जातक-कथाओं में है। जातक की विभिन्न कथाओं में हिमवन्त, उत्तर हिमवन्त, मल्लगिरि, अहोगंग (अधोगंग), इसिधर, उदक पब्बत, नंदमूलक, निसभ, नेरु, पण्डरक, मणिपस्स, मनोसिला, युगन्धर, यामुन

---

१. जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ ३२।

गिज्झकूट, चित्तकूट, तिकूट, जैसे अनेक पर्वतों और पहाड़ियों; अग्गिमाल समुद्द, खुरमाल, दधिमाल, वलभामुख, जैसे समुद्रों, अनोतत्त, कण्णमुण्डा, खेम, चक्कदह, छद्दन्त, संखपाल, और सिवली जैसी अनेक झीलों; गंगा, यमुना, हेमवता, केबुक, कोसिकी, सोटुम्बरा, नम्मदा, नेरंजरा, सीदा, मिगसम्मता, वेत्तवती, भागीरथी, सातोडिका जैसी अनेक नदियों और करंडक, कविट्ठ, दण्डकारण्य, नारिवन, मेज्झारञ्ञ जैसे अनेक वनों और अरण्यों के निर्देश है। इसी प्रकार नगरों में, ऊपर निर्दिष्ट नगरों के अलावा, अयोज्झा, अस्सपुर, इन्दपत्त, उज्जेनी, गया, कजंगल, किम्बिला, केतुमती, कुशावती, जेतुत्तर, मोलिनी, पुष्पवती, पयाग तित्थ (प्रयाग तीर्थ), भोगवती, रोरुव, मिथिला, द्वारका (द्वारवती), दन्तपुर, कोसम्बी, वेत्तवती, सीहपुर, हिरण्यवती जैसे नगरों के उल्लेख विभिन्न जातक-कथाओं में है। तत्कालीन राज्यों में अवन्ती, पंचाल, उत्तर-पंचाल, उत्तरापथ, कोसल, कुरु, गन्धार, अस्सक, मेज्झ, मल्ल, सिवि, विदेह, महिसक, वंस, कोकनद, कोटुम्बर आदि के विवरण विभिन्न जातक-कथाओं मे पाये जाते है। जातकों में अनेक ग्रामों के भी विवरण है, जैसे कि थूण नामक ब्राह्मण-ग्राम, गंगा नदी के किनारे गग्गलि गाँव, मगध का मचल नामक गाँव और राजगृह के समीप सालिन्दिय नामक ब्राह्मण-ग्राम, आदि। राजा चण्ड प्रद्योत के राज्य में लम्बचूलक नामक एक कस्बे का भी उल्लेख एक जातक-कथा में है।

मगध जनपद के गिरिव्रज में स्थित गृध्रकूट पर्वत तथा उसके उत्तर में स्थित वेपुल्ल पर्वत का उल्लेख इतिवुत्तक के वेपुल्ल पब्बत-सुत्त में है। "सो खो पनायं अक्खातो वेपुल्लो पब्बतो महा। उत्तरो गिज्झकूटस्स मगधानं गिरिब्बजे।"

"उदान" के बोधि-वग्ग मे हम भगवान् बुद्ध को उरुवेला मे नेरंजरा नदी के बोधि-वृक्ष के नीचे बुद्धत्व-प्राप्ति के तुरन्त बाद ही विहार करते देखते है। उसके बाद हम उन्हे अजपाल नामक बरगद के पेड़ (अजपाल न्यग्रोध) की छाया में विहार करते देखते है। श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में तथा वही स्थित मृगारमाता के पूर्वाराम प्रासाद में 'उदान' के कई ऊर्ध्वगामी उद्गार भगवान् के मुख से निकले। उसके कई अंश राजगृह के वेणुवन कलन्दकनिवाप में भी भगवान् के मुख से निःसृत हुए। 'उदान' से हमें पता चलता है कि भगवान् ने गया के गयासीस (गयाशीर्ष) पर्वत पर भी विहार किया था। कुण्डिया नगर के

कुण्डिधान वन में विहार करते समय भगवान् के पास कोलियपुत्री सुप्रवासा का पति अपनी पत्नी के लिए भगवान् का आशीर्वाद लेने आया था। अनूपिया के आम्रवन में भी भगवान् को विहार करते हम 'उदान' में देखते हैं। वज्जी जनपद और वहाँ की वग्गुमुदा नामक नदी का उल्लेख 'उदान' के नन्दवग्ग में है। इसी वग्ग में हम भगवान् को वैशाली की महावन कूटागारशाला में विहार करते देखते हैं। मेघिय-वग्ग के आरम्भ में हम भगवान् को चालिका नामक नगर में चालिक (चालिय) नामक पर्वत पर विहार करते देखते हैं। इस वर्ग से हमें यह भी पता चलता है कि चालिय पर्वत के समीप ही जन्तुगाम नामक एक गाँव था, जिसके समीप किमिकाला नदी थी। आगे चलकर इसी वग्ग में हम भगवान् को कुसिनारा में उपवत्तन नामक मल्लों के शालवन में विहार करते देखते हैं। कोसल देश में, राजगृह के वेणुवन कलन्दक निवाप में, कौशाम्बी के घोषिताराम में, पालिलेय्यक के रक्षितवन में तथा श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में भी भगवान् को विहार करते हम इस वग्ग में देखते हैं। अवन्ती के कुररघर नामक पर्वत का उल्लेख सोण स्थविर सम्बन्धी वर्ग में है। मल्लों के राष्ट्र में भी थूण नामक एक ब्राह्मण-ग्राम था, इसका पता हमें 'उदान' के चूलवग्ग से लगता है। भगवान् की अन्तिम यात्रा के सम्बन्ध में कुसिनारा और ककुत्था नदी का उल्लेख 'उदान' के पाटलिगामिय वग्ग में है। इसी वग्ग में हम भगवान् को मगध के पाटलिगाम में चारिका करते देखते हैं। वज्जियों के आक्रमण को रोकने के लिए मगधराज के मंत्री सुनीध और वस्सकार पाटलिग्राम में नगर को बसा रहे थे, ऐसी सूचना हमें महापरिनिब्बाण-सुत्त के समान इस वग्ग में भी मिलती है। भगवान् पाटलिग्राम के जिस द्वार से निकले उसका नाम "गौतम द्वार" और जिस घाट से उन्होंने गंगा को पार किया उसका "गौतम तीर्थ" नाम रक्खा गया। वैशाली के चापाल चैत्य, उदयन चैत्य, गौतमक चैत्य, सप्ताम्र चैत्य, बहुपुत्रक चैत्य और सारन्दद चैत्य की रमणीयता की प्रशंसा भगवान् बुद्ध ने अपने मुख से 'उदान' के जात्यन्ध वग्ग में की है। 'उदान' के बोधिवग्ग और नन्दवग्ग में राजगृह की पिप्पलिगुहा का उल्लेख है, जहाँ आर्य महाकाश्यप अधिकतर निवास करते थे।

सुत्त-निपात में हम अंग, मगध, कोसल, और अवन्ति-दक्षिणापथ के कई प्रसिद्ध नगरों, नदियों, और ग्रामों आदि के उल्लेख पाते हैं। वंगीस-सुत्त में हम भगवान्

को आलवी के अग्गालव चैत्य में विहार करते देखते है। "भगवा आलवियं विहरति अग्गालवे चेतिये।" सेल-सुत्त में हम देखते हैं कि भगवान् अंगुत्तराप में चारिका करते हुए जहाँ अंगुत्तरापो का आपण नामक कस्बा था, वहाँ पहुँचे। "भगवा अगुत्तरापेसु चारिकं चरमानो......येन आपण नाम अंगुत्तरापानं निगमो तदवसरि"। वासेट्ठ-सुत्त का उपदेश भगवान् ने इच्छानंगल ग्राम के इच्छानंगल वन-खण्ड में विहार करते समय दिया था। ५०० हल चलवाते हुए कसि भारद्वाज नामक ब्राह्मण के पास भगवान् मगध के दक्षिणागिरि जनपद मे स्थित एकनाला नामक ब्राह्मण-ग्राम में, विहार करते हुए, गये थे। पब्बज्जा-सुत्त में हम भगवान् को प्रव्रजित होने के बाद कपिलवस्तु से आकर मगध की राजधानी गिरिव्रज अर्थात् प्राचीन राजगृह मे भिक्षार्थ चारिका करते और नगर के बाहर पाण्डव (पण्डव) पर्वत पर विहार करते देखते हैं, जहाँ बिम्बिसार उनसे मिलने गया। राजगृह के वेणुवन कलन्दक-निवाप, कपिलवस्तु, कौशाम्बी, श्रावस्ती के पूर्वाराम प्रासाद और जेतवनाराम, भोगनगर, लुम्बिनी, गया और पावा आदि नगरो के उल्लेख सुत्त-निपात के कई सुत्तो में हैं। पारायणवग्गो की वत्थुगाथा में गोदावरी नदी का उल्लेख है और अन्य सुत्तों में गगा, नेरजरा और सुन्दरिका नदियो के उल्लेख है। बावरि ब्राह्मण के सम्बन्ध मे सुत्तनिपात मे जो सूचना दी गई है, वह भोगोलिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कहा गया है कि कोसलदेशवासी "बावरि ब्राह्मण, जो मत्रपारगत था, आकिचन्य (-ध्यान) की कामना करता हुआ, कोसलवासियो के रम्य नगर (श्रावस्ती) से दक्षिणापथ मे गया। अलक नामक स्थान के निकट, अस्सक प्रदेश के मध्य, गोदावरी के तट पर, वह उछ तथा फल से जीवन यापन करता था।" "कोसलान पुरा रम्मा अगमा दक्खिणापथ। आकिचञ्ञ पत्थानो ब्राह्मणो मन्त-पारगु। सो अस्सकस्स विसये अलकस्स समासने। वसी गोधावरी कूले उछेन च फलेन च"। बावरि ब्राह्मण ने जब सुना कि इक्ष्वाकुवशज, शाक्यपुत्र कपिलवस्तु से निकल कर प्रव्रजित हुए है और उन्होने परम ज्ञान प्राप्त किया है, तो उसने उनकी परीक्षार्थ अपने सोलह शिष्यो को आदेश दिया कि वे श्रावस्ती जाकर उनके दर्शन करे। ये सोलह शिष्य अपने गुरु के आश्रम से चलकर श्रावस्ती आये और फिर वहाँ भगवान् को न पाकर श्रावस्ती से राजगृह गये, जहाँ के पाषाण-चैत्य में उस समय भगवान् ठहरे हुए थे। यहाँ उनका भगवान् से मिलना हुआ। बावरि के इन सोलह

शिष्यों ने गोदावरी तट पर स्थित अपने आश्रम से श्रावस्ती तक जिस मार्ग का अनुगमन किया, उसके बीच के पड़ाव के स्थानों का उल्लेख सुत्त-निपात में है, जिससे विदित होता है कि दक्षिण में पतिट्ठान (पैठन) से लेकर उत्तर में श्रावस्ती तक एक सड़क जाती थी, जिस पर पड़ने वाले मुख्य स्थान थे, पतिट्ठान, माहिस्सति (माहिष्मती), उज्जेनी, गोनद्ध, वेदिसं (विदिशा), वनसाह्वय या वनसह्वय, कोसम्बी (कौशाम्बी), साकेत और सावत्थि (श्रावस्ती)। बावरि के शिष्यों ने इसी मार्ग का अनुगमन किया था। "बावरि अभिवादेत्वा कत्वा च नं पदक्खिणं। जटाजिनधरा सब्बे पक्कामुं उत्तरामुखा। अलकस्स पतिट्ठानं पुरिमं माहिस्सतिं तदा। उज्जेनिं चापि गोनद्धं वेदिसं वनसव्हयं। कोसम्बिं चापि साकेतं सावत्थिं च पुरुत्तमं।" श्रावस्ती से जिस सड़क को इन शिष्यों ने राजगृह के लिए लिया, उसके मुख्य पड़ाव इस प्रकार दिये गये हैं—श्रावस्ती, सेतव्या, कपिलवस्तु, कुशीनगर, पावा, भोगनगर, वैशाली और मागधं पुरं (राजगृह) जहाँ के रमणीय पाषाण चैत्य में बावरि के शिष्य पहुँचे। "सेतव्यं कपिलवत्थुं कुसिनारं च मन्दिरं। पावं च भोगनगरं वेसालिं मागधं पुरं। पासाणकं चेतियं च रमणीयं मनोरमं।" इस प्रकार सुत्त-निपात में हमें बुद्धकालीन भारत के दो मुख्य मार्गों, एक श्रावस्ती से प्रतिष्ठान जाने वाले और दूसरे श्रावस्ती से राजगृह जाने वाले का, उनके बीच में पड़ने वाले स्थानों के उल्लेख के साथ, विवरण मिलता है, जो भौगोलिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

"पटिसम्भिदामग्ग" में श्रावस्ती का उल्लेख है और बाराणसी के समीप इसिपतन मिगदाय में भगवान् के विहार का भी। इस ग्रन्थ में हम स्थविर आनन्द को कौशाम्बी में विहार करते देखते हैं।

"विमानवत्थु" में चित्तलतावन का उल्लेख है और "पेतवत्थु" में वैशाली और श्रावस्ती जैसे कई नगरों के उल्लेख पाये जाते हैं।

"बुद्धवंस" में अमरावती नगरी का उल्लेख है। रम्मवती नामक नगरी का भी इस ग्रन्थ में उल्लेख है। कुसिनारा, वैसाली, कपिलवत्थु, अल्लकप्प, रामगाम, पाटलिपुत्र, अवन्तिपुर और मिथिला का भी इस ग्रन्थ में निर्देश है।

"चरियापिटक" में कुसावती (कुशावती) और इन्दपत्थ (इन्द्रप्रस्थ) नगरों का उल्लेख है। पंचाल और कलिंग देश का भी इस ग्रन्थ में निर्देश है।

"अपदान" में हमें सूचना मिलती है कि हंसवती नामक नगरी फूलों के लिए प्रसिद्ध थी। इस ग्रन्थ में बन्धुमती, अरुणवती और केतुमती नामक नगरियों का भी उल्लेख है और गंगा, यमुना, सिन्धु, चन्दभागा, सरयू और मही नदियों का भी। हिमालय (हिमवन्त) पर्वत का भी इस ग्रन्थ में कई जगह उल्लेख है।

"निद्देस" में गुम्ब, तक्कोल, तक्कसीला, कालमुख, मरणपार, वेसुग, वेरापथ, वंग, योन, अलसन्द, अजपथ, मण्डपथ जैसे अनेक स्थानों और प्रदेशों के उल्लेख, हैं। इस ग्रन्थ में बावरि ब्राह्मण के प्रसंग को लेकर वह सब भौगोलिक सूचना दी गई है, जिसका उल्लेख सुत्त-निपात के भौगोलिक महत्व का विवेचन करते समय हम पहले कर चुके हैं।

भौगोलिक दृष्टि से विनय-पिटक पालि तिपिटक का अत्यन्त महत्वपूर्ण अंश है। उसके अनेक नियमों का विधान भगवान् के द्वारा कपिलवस्तु, श्रावस्ती, राजगृह, वाराणसी, पाटलिपुत्र, कोटिग्राम, वैशाली, चम्पा, कौशाम्बी, कीटागिरि, आलवी और अनूपिया जैसे नगरों और कस्बों में किया गया। विनय-पिटक में भगवान् बुद्ध की प्रथम यात्रा का, जो उन्होने उरुवेला से वाराणसी के समीप इसिपतन मिगदाय तक की, उल्लेख है। एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भौगोलिक सूचना, जो हमें विनय-पिटक में मिलती है, मज्झिम देस की सीमाओं के सम्बन्ध में है। यहाँ मध्य-देश के पूर्व मे कंजगल नामक निगम, पूर्व-दक्षिण में सललवती नामक नदी, दक्षिण में सेतकण्णिक नामक निगम और पश्चिम में थूण नामक ब्राह्मण-ग्राम बताया गया है।[1] राजगृह के चारो ओर एक प्राकार था और उसमें एक विशाल दर-वाजा था जो रात को बन्द कर दिया जाता था और निश्चित समय के बाद एक बार राजा बिम्बिसार को भी नगर के अन्दर प्रवेश की अनुमति नहीं मिली थी और रात भर बाहर एक धर्मशाला में ही उसे निवास करना पड़ा था। जीवक और आकासगोत्त जैसे वैद्य राजगृह के निवासी थे। राजगृह के अनेक श्रेष्ठियों का विवरण विनय-पिटक में मिलता है। राजगृह के कई महत्वपूर्ण स्थानों का विनय-पिटक में उल्लेख है, जैसे कि, इसिगिलि पर्वत,[2] काल-

१. विनय-पिटक (हिन्दी-अनुवाद), पृष्ठ २१३।
२. वहीं, पृष्ठ ३९६।

शिला,[१] चोर प्रपात,[२] जीवकाम्रवन,[३] वेणुवन कलन्दक निवाप,[४] दक्षिणागिरि,[५] मद्रकुक्षि मृगदाव[६], लट्ठिवन में सुप्रतिष्ठ चैत्य[७], और सर्पशौण्डिक प्राग्भार[८]। इसी प्रकार वैशाली की महावन कूटागारशाला[९], गौतमक चैत्य[१०], और बालुकराम[११] के, कौशाम्बी के घोषिताराम[१२], बोध-गया के रत्नघर चैत्य[१३], आलवी के अग्गालव चैत्य[१४] और पाटलिपुत्र के कुक्कुटाराम[१५], के उल्लेख विनयपिटक में मिलते हैं। भद्दिय नगर के समीप जातियावन[१६], श्रावस्ती के पास अन्धवन[१७], वाराणसी-उरुवेला के मार्ग

१-३. वहीं, पृष्ठ ३९६।

४. वहीं, पृष्ठ ९७, ९८, १७१।

५. वहीं, पृष्ठ १२०, २७९।

६. वहीं, पृष्ठ १४०, ३९६।

७. वहीं, पृष्ठ ९५। मूल पालि शब्द 'सुप्पतिट्ठ चेतिय' है। अतः इसका संस्कृत प्रतिरूप 'सुप्रतिष्ठ चैत्य' ही ठीक है। महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने 'सुप्रतिष्ठित चैत्य' (विनय-पिटक, हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ ९५) किया है। चूंकि 'सुप्रतिष्ठित' नामक तीर्थ (सुप्पतिट्ठित तित्थं) उरुवेला से नेरंजरा नदी के तट पर था। (देखिये तीसरे परिच्छेद में उरुवेला का विवरण), अतः दोनों में गड़बड़ी न होने देने के लिये हमें राजगृह के लट्ठिवन में स्थित चैत्य को 'सुप्रतिष्ठ चैत्य' कहकर ही पुकारना चाहिये।

८. वहीं, पृष्ठ ३९६।

९. वहीं, पृष्ठ ५१९।

१०. वहीं, पृष्ठ २८०

११. वहीं, पृष्ठ ५५६।

१२. वहीं, पृष्ठ ३२२, ३५८, ३६१, ४८०, ५४७।

१३. वहीं, पृष्ठ ७७।

१४. वहीं, पृष्ठ ४७२।

१५. वहीं, पृष्ठ २८९।

१६. वहीं, पृष्ठ २०७।

१७. वहीं, पृष्ठ २८९।

पर काम्यासिम वनखण्ड[1] और पारिलेय्यक वन के रक्षित वनखण्ड[2] के उल्लेख भी विनय-पिटक में हैं। अवन्ती[3], उज्जेनी[4], सहजाति[5], नालन्दा[6], कुसिनारा[7], अम्बलपुर[8] जैसे नगरों के उल्लेख भी विनय-पिटक में हैं। चम्पा नगरी के समीप की प्रसिद्ध गग्गरा पुष्करिणी भी विनय-पिटक में निर्दिष्ट है।[9] राजगृह के समीप सड़क से जुड़े हुए अन्धकविन्द नामक ग्राम का भी उल्लेख विनय-पिटक में पाया जाता है[10]। और अवन्ती के पास कुररघर नामक पर्वत का भी।[11] अवन्ति-दक्षिणापथ प्रदेश का विनय-पिटक में उल्लेख है[12] और दक्षिणापथ के व्यापारी पूर्वदेश में व्यापारार्थ जाते थे, इसका भी साक्ष्य है[13]। बुद्धकालीन भारत के राजनैतिक भूगोल पर भी विनय-पिटक के विवरणों से पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। मगधराज अजातशत्रु द्वारा वज्जियों को अपने राज्य में मिलाने की चेष्टा का विनय-पिटक में विवरण है। साकेत से श्रावस्ती जाने वाले मार्ग का विनय-पिटक में उल्लेख है[14], और इसी प्रकार राजगृह से तक्षशिला को जाने वाले मार्ग का भी, जिस पर भी साकेत

---

१. वहीं, पृष्ठ ८९।
२. वहीं, पृष्ठ ३३३।
३. वहीं, पृष्ठ २११-२१५, ५५१।
४. वहीं, पृष्ठ २७१।
५. वहीं, पृष्ठ ५५१
६. वहीं, पृष्ठ ५४३।
७. वहीं, पृष्ठ ५४१।
८. वहीं, पृष्ठ ५५१।
९. वहीं, पृष्ठ २९८।
१०. वहीं, पृष्ठ १४३, २८३।
११. वहीं, पृष्ठ २११।
१२. वहीं, पृष्ठ ५५१।
१३. वहीं, पृष्ठ ३५४।
१४. "उस समय साकेत से श्रावस्ती जाने वाले मार्ग पर बहुत सी भिक्षुणियाँ जा रही थीं।" विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १२७।

पड़ता था।[1] राजगृह से वैशाली जाने वाले मार्ग का भी उल्लेख विनय-पिटक में है[2]।

अभिधम्म-पिटक के सात ग्रन्थों में, विशेषतः विभंग और कथावत्थु में, कहीं-कहीं कुछ अल्प भौगोलिक सूचना मिल जाती है, परन्तु उसमें कोई नवीनता नहीं है। अतः उसका उल्लेख करना यहाँ आवश्यक न होगा।

पालि तिपिटक, विशेषतः सुत्त-पिटक और विनय-पिटक, के भौगोलिक महत्व का किञ्चित् निर्देश करने के पश्चात् अब हम उसकी अट्ठकथाओं के भौगोलिक महत्व पर आते हैं। वस्तुतः इस सम्बन्ध में पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं के बीच विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती। इसका कारण यह है कि अट्ठकथाएँ पालि तिपिटक की पूरक ही हैं, उनका स्वतन्त्र महत्व नहीं है। यह ठीक है कि अट्ठकथाओं का काल पालि तिपिटक के संकलन-काल से काफी बाद का है। पालि तिपिटक के संकलन की निचली काल-सीमा, जैसा हम पहले देख चुके हैं, प्रथम शताब्दी ईसवी पूर्व है और मुख्य अट्ठकथाओं का रचना-काल चौथी-पाँचवीं शताब्दी ईसवी है। अतः वे काफी बाद की हैं, परन्तु हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि जिस परम्परा पर वे आधारित हैं, वह अत्यन्त प्राचीन है। पालि अट्ठकथाएँ प्राचीन सिंहली अट्ठकथाओं पर आधारित हैं, जो आज अभाग्यवश प्राप्त नहीं हैं। पालि अट्ठकथाओं की पूर्वभूमि के सम्बन्ध में यहाँ कुछ कहना आवश्यक होगा।

बौद्ध अनुश्रुति के अनुसार स्थविर महेन्द्र और उनके साथी भिक्षु पालि तिपिटक के साथ-साथ उसकी अट्ठकथा को भी अपने साथ लंका में ले गये थे।[3] यह निश्चित है कि जिस रूप में यह अट्ठकथा लंका ले जायी गई होगी, वह पालि तिपिटक के समान मौखिक ही रहा होगा। प्रथम शताब्दी ईसवी पूर्व जब लंकाधिपति वट्टगामणि अभय के समय में पालि तिपिटक लेखबद्ध किया गया, तो उसकी उपर्युक्त अट्ठकथा के भी लेखबद्ध होने की कोई सूचना हम नहीं पाते। अतः महेन्द्र द्वारा लंका में पालि तिपिटक की अट्ठकथा को भी ले जाये जाने का कोई

---

१. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २६७।

२. वहीं, पृष्ठ ४२८-४२९।

३. देखिए समन्तपासादिका की बाहिरनिदानवण्णना।

ऐतिहासिक आधार हमें नहीं मिलता। इन अट्ठकथाओं का कोई अंश आज किसी रूप में सुरक्षित भी नहीं है। हाँ, एक दूसरे प्रकार की अट्ठकथाओं के अस्तित्व का साक्ष्य हम सिंहल के इतिहास में अत्यन्त प्रारम्भिक काल से ही पाते हैं। ये प्राचीन सिंहली भाषा में लिखी हुई अट्ठकथाएँ थीं। जैसा हम अभी इसी परिच्छेद में देखेंगे, आचार्य बुद्धघोष इन्हीं प्राचीन सिंहली अट्ठकथाओं का पालि या मागधी रूपान्तर करने के लिए लंका गये थे। चौथी-पाँचवीं शताब्दी ईसवी में न केवल बुद्धघोष, बुद्धदत्त और धम्मपाल आदि के द्वारा रचित विस्तृत अट्ठकथा-साहित्य बल्कि प्राग्बुद्धघोषकालीन लंका का इतिहास ग्रन्थ दीपवंस और बाद में उसी के आधार पर रचित महावंस भी, अपनी विषय-वस्तु के मूल आधार और स्रोतों के लिए इन्हीं प्राचीन सिंहली अट्ठकथाओं के ऋणी हैं। महावंस-टीका (६३।५४९-५५०) के आधार पर गायगर ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि ये प्राचीन सिंहली अट्ठकथाएँ बारहवीं शताब्दी ईसवी तक प्राप्त थीं।[1] आज इनका कोई अंश सुरक्षित नहीं है।

जैसा अभी कहा गया, बुद्धघोष महास्थविर प्राचीन सिंहली अट्ठकथाओं का पालि रूपान्तर करने के लिए ही लंका गये थे। उन्होंने अपनी विभिन्न अट्ठकथाओं में जिन प्राचीन सिंहली अट्ठ कथाओं का निर्देश किया है, या उनसे उद्धरण दिये हैं, उनमें मुख्य ये हैं, (१) महा अट्ठकथा (२) महापच्चरी या महापच्चरिय, (१) कुरुन्दी या कुरुन्दियं, (४) अन्धट्ठ कथा, (३) संखेप अट्ठकथा, (६) आगमट्ठकथा और (७) आचरियानं समानट्ठकथा। दीघ, मज्झिम, संयुत्त और अंगुत्तर, इन चार निकायों की अपनी अट्ठकथाओं के अंत में आचार्य बुद्धघोष ने अलग-अलग कहा है "सा हि मया अट्ठकथाय सारमादाय निट्ठिता एसा" अर्थात् "इसे मैंने महाअट्ठकथा के सार को लेकर पूरा किया है।" इससे निश्चित है कि बुद्धघोष-कृत सुमंगलविलासिनी, पपञ्चसूदनी, सारत्थप्पकासिनी और मनोरथपूरणी (क्रमशः दीघ, मज्झिम, संयुत्त और अंगुत्तर निकायों की अट्ठकथाएँ) प्राचीन सिंहली अट्ठकथा, जिसका नाम महा अट्ठकथा था, पर आधारित हैं। उपर्युक्त कथन के साक्ष पर सद्धम्म-

---

१. पालि लिटरेचर एण्ड लेंग्वेज, पृष्ठ २५।

संगह (चौदहवीं शताब्दी) का यह कहना कि महा अट्ठकथा सुत्त-पिटक की अट्ठकथा थी,[1] ठीक मालूम पड़ता है। इसी प्रकार सद्धम्मसंगह के अनुसार महापच्चरी और कुरुन्दी क्रमशः अभिधम्म और विनय की अट्ठकथाएँ थीं।[2] कुरुन्दी विनय-पिटक की ही अट्ठकथा थी, इसे आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथाओं से पूरा समर्थन प्राप्त नहीं होता, क्योंकि विनय-पिटक की अट्ठकथा (समन्तपासादिका) के आरम्भ में उन्होंने अपनी इस अट्ठकथा के मुख्य आधार के रूप में कुरुन्दी का उल्लेख नहीं किया है। वहाँ उन्होंने केवल यह कहा है कि ये तीनों अट्ठकथाएँ (महाअट्ठकथा, महापच्चरी एवं कुरुन्दी) प्राचीन अट्ठकथाएं थी और सिंहली भाषा में लिखी गई थीं। 'गन्धवंस' में भी उपर्युक्त तीनों अट्ठकथाओं का उल्लेख किया गया है। वहाँ महाअट्ठकथा (सुत्त-पिटक की अट्ठकथा) को इन सब में प्रधान बताया गया है और उसे पुराणाचार्य (पोराणाचरिया) की रचना बतलाया गया है, जब कि अन्य दो अट्ठकथाओं को ग्रन्थाचार्यो (गन्धाचरिया) की रचनाएँ बतलाया गया है।[3] इससे स्पष्ट है कि गन्धवंस के अनुसार महाअट्ठकथा की प्राचीनता और प्रामाणिकता अन्य दो की अपेक्षा अधिक थी। अन्धट्ठकथा और संखेपट्ठकथा तथा इनके साथ-साथ चूलपच्चरी और पण्णवार नाम की प्राचीन सिंहली अट्ठकथाओं का उल्लेख समन्तपासादिका की दो टीकाओं वजिरबुद्धि और सारत्थदीपनी में भी किया गया है।[4] किन्तु इनके विषय में भी हमारी कोई विशेष जानकारी नहीं है।[5] "आचरियानं समानट्ठकथा", जिसका उल्लेख बुद्धघोष ने अट्ठसालिनी के

१-२. सद्धम्मसंगह, पृष्ठ ५५ (जर्नल ऑव पालि टैक्सट् सोसायटी, १८९० में प्रकाशित संस्करण)।

३. पृष्ठ ५९ एवं ६८ (जर्नल ऑव पालि टैक्सट् सोसायटी, १८८६, में प्रकाशित संस्करण)।

४. गायगर: पालि लिटरेचर एण्ड लैंग्वेज, पृष्ठ २५।

५. इनके कुछ अनुमानाश्रित विवरण के लिए देखिए लाहा: हिस्ट्री ऑव पालि लिटरेचर, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३७६; श्रीमती सी० ए० एफ० रायस डेविड्स्: ए बुद्धिस्ट मेनुअल ऑव साइकोलोजीकल एथिक्स, पृष्ठ २२ (भूमिका)।

आदि में किया है, किसी विशेष अट्ठकथा का नाम न होकर केवल अनेक अट्ठकथाओं के सामान्य सिद्धान्तों की सूचक है, यही मानना अधिक समीचीन जान पड़ता है। "आगमट्ठकथा" जिसका उल्लेख आचार्य बुद्धघोष ने अट्ठसालिनी और समन्तपासादिका के आदि में किया है, सम्पूर्ण आगमों या निकायों की एक सामान्य अट्ठकथा ही रही होगी। कुछ भी हो, बुद्धघोष ने जिन प्राचीन सिंहली अट्ठकथाओं का उल्लेख किया है, वे किन्ही लेखकों की व्यक्तिगत रचनाएँ न होकर महाविहारवासी भिक्षुओं की परम्परा-प्राप्त कृतियाँ थीं, जो उनकी सामान्य सम्पत्ति के रूप में चली आ रही थीं। आचार्य बुद्धघोष ने महाविहारवासी भिक्षुओं की आदेशना-विधि को लेकर ही अपनी समस्त अट्ठकथाएँ और विसुद्धिमग्ग लिखे, यह उन्होंने अनेक जगह स्पष्ट कर दिया है। समन्तपासादिका और अट्ठसालिनी के आरम्भ में उन्होंने कहा है:

महाविहारवासीनं दीपयन्तो विनिच्छयं।
अत्थं पकासयिस्सामि आगमट्ठकथासु पि।

यहाँ यह भी कह देना अप्रासंगिक न होगा कि महाविहार के अलावा उत्तर विहार नामक एक अन्य विहार के भिक्षुओं की परम्परा भी उस समय सिंहल में प्रचलित थी। बुद्धदत्त का उत्तर-विनिच्छय उसी पर आधारित है।

प्राचीन सिंहली अट्ठकथाओं को अपनी रचनाओं का आधार स्वीकार करने के अतिरिक्त आचार्य बुद्धघोष ने प्राचीन स्थविरों (पोराणकत्थेरा) या पुराने लोगों (पोराणा) के मतों के उद्धरण अनेक बार अपनी अट्ठकथाओं में दिये हैं।[१] ये प्राचीन स्थविर या पुराण लोग कौन थे? "गन्धवंस" के मतानुसार प्रथम तीन धर्म-संगीतियों के आचार्य भिक्षु, आर्य महाकात्यायन को छोड़ कर, पोराणा या पुराने लोग कहलाते हैं।[२] सम्भवतः प्राचीन सिंहली अट्ठकथाओं में इन प्राचीन आचार्यों के मतों का उल्लेख था। वहीं से उनका पालि

---

१. पोराणों के कुछ उद्धरणों के लिये देखिये विमलाचरण लाहा: दि लाइफ एंड वर्क ऑव बुद्धघोष, पृष्ठ ६५-६७।

२. "पालि साहित्य का इतिहास" के नवें अध्याय में "गन्धवंस" की विषय-वस्तु का विवेचन करते हुए लेखक ने इस विषय को स्पष्ट किया है।

रूपान्तर कर आचार्य बुद्धघोष ने अपनी अट्ठकथाओं में ले लिया है। इन पोराणों के उद्धरणों की एक बड़ी विशेषता यह है कि ये प्रायः गाथात्मक हैं और अनेक उद्धरण जो बुद्धघोष की अट्ठकथाओं में मिलते हैं, बिलकुल उन्ही शब्दों में "महावंस" में भी मिलते हैं। इससे इस मान्यता को दृढ़ता मिलती है कि बुद्धघोष की अट्ठकथाएँ और "महावंस" दोनों के मूल स्रोत और आधार प्राचीन सिंहली अट्ठकथाएँ ही हैं। "यथाहु पोराणा" (जैसा पुराने लोगों ने कहा है) या "तेने वे पोराणकत्थेरा" (इसी प्रकार प्राचीन स्थविर) आदि शब्दों से आरम्भ होने वाले इन "पोराण" आचार्यों के उद्धरणों को बुद्धघोष की अट्ठकथाओं और विसुद्धिमग्ग से यदि संग्रह किया जाय और "दीपवंस" आदि के इसी प्रकार के साक्ष्यों से उनका मिलान किया जाय, तो प्राचीन बौद्ध परम्परा सम्बन्धी एक व्यवस्थित और अत्यन्त मूल्यवान् सामग्री हमारे हाथ लग सकती है, जिसका ऐतिहासिक महत्व भी अल्प न होगा।

पालि साहित्य में अट्ठकथा-साहित्य का प्रारम्भ चौथी-पाँचवीं शताब्दी ईसवी से होता है। इस प्रकार बुद्ध-काल से लगभग एक हजार वर्ष बाद ये अट्ठकथाएँ लिखी गईं। निश्चय ही काल के इस इतने लम्बे व्यवधान के कारण इन अट्ठकथाओं की प्रामाणिकता उतनी सबल नहीं होती, यदि ये परम्परा से प्राप्त प्राचीन सिंहली अट्ठकथाओं पर आधारित नहीं होतीं। चूँकि ये उनकी ऐतिहासिक परम्परा पर आधारित है, अतः इतनी आधुनिक होते हुए भी बुद्ध-युग के सम्बन्ध में उनका प्रामाण्य मान्य है, यद्यपि स्वयं तिपिटक के बाद ही। चौथी-पाँचवीं शताब्दी में प्रायः समकालिक ही तीन बड़े अट्ठकथाकार पालि साहित्य में हुए हैं, जिनके नाम हैं, बुद्धदत्त, बुद्धघोष और धम्मपाल।

भौगोलिक दृष्टि से आचार्य बुद्धघोष-रचित अट्ठकथाएँ सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। उनकी लिखी हुई अट्ठकथाएँ इस प्रकार हैं :

१. समन्तपासादिका........विनय-पिटक की अट्ठकथा।
२. कंखावितरणी........पातिमोक्ख की अट्ठकथा।
३. सुमंगलविलासिनी........दीघ-निकाय की अट्ठकथा।
४. पंचसूदनी........मज्झिम-निकाय की अट्ठकथा।
५. सारत्थप्पकासिनी........संयुत्त-निकाय की अट्ठकथा।

६. मनोरथपूरणी........अंगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा।

७. परमत्थजोतिका........खुद्दक-निकाय के खुद्दक-पाठ और सुत्त-निपात की अट्ठकथा।

८. अट्ठसालिनी........धम्मसंगणि की अट्ठकथा।

९. सम्मोहविनोदनी........विभंग की अट्ठकथा।

१०. १४. पंचप्पकरणट्ठकथा........कथावत्थु पुग्गल-पञ्ञत्ति, धातुकथा, यमक, और पट्ठान, इन पाँच ग्रन्थों की अट्ठकथा।

इनके अतिरिक्त जातकट्ठकथा, धम्मपदट्ठकथा और अपदान-अट्ठकथा भी बुद्धघोष-रचित बताई जाती हैं, परन्तु इनके बुद्धघोष-कृत होने में कई विद्वानों ने संदेह प्रकट किये हैं। आचार्य बुद्धदत्त ने विनय-पिटक पर विनय-विनिच्छय और उत्तर विनिच्छय नामक दो अट्ठकथाएँ लिखीं, जो बुद्धघोष-कृत समन्तपासादिका के पद्यबद्ध संक्षेप हैं। उन्होंने बुद्धवंस पर मधुरत्थविलासिनी नामक अट्ठकथा भी लिखी, जिसका भौगोलिक महत्व है। बुद्धदत्त-कृत अभिधम्मावतार और रूपारूपविभाग, जो अभिधर्म दर्शन सम्बन्धी ग्रन्थ हैं, हमारी दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं हैं। आचार्य धम्मपाल ने अन्य ग्रन्थों के अलावा खुद्दक-निकाय के उदान, इतिवुत्तक, विमानवत्थु, पेतवत्थु, थेरगाथा, थेरीगाथा और चरियापिटक, इन सात ग्रन्थों पर परमत्थदीपनी नामक अट्ठकथा लिखी, जो भौगोलिक निर्देशों की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। अब हम कुछ प्रमुख अट्ठकथाओं के भौगोलिक महत्व का विवेचन करेंगे।

सुमंगलविलासिनी (दीघ-निकाय की अट्ठकथा) में, जैसे कि अन्य अट्ठकथाओं में, जो भौगोलिक सूचना हमें मिलती है, वह पालि तिपिटक के विवरणों की पूरक या सहायक ही कही जा सकती है। जिन स्थानों, देशों या जनपदों का विवरण मूल तिपिटक में आया है, उन्हीं का प्राचीन परम्परा पर आधारित अधिक विस्तृत विवरण प्रस्तुत करना अट्ठकथाओं का लक्ष्य है। दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त में मगधराज अजातशत्रु के वज्जियों पर चढ़ाई करने के इरादे को हम देखते हैं। इसी सम्बन्ध में सुमंगलविलासिनी हमें यह बतलाती है कि गंगा के घाट के पास आधा योजन अजातशत्रु का राज्य था और आधा योजन लिच्छवियों का। वहाँ पर्वत की जड़ से बहुमूल्य पदार्थ उतरता था। उसी पर झगड़ा था। इसी प्रकार महापरिनिब्बाण-सुत्त में भगवान् की राजगृह से कुसिनारा तक की जिस

यात्रा का विवरण है, उसी का अधिक विस्तृत विवरण देते हुए सुमंगलविलासिनी में राजगृह से कुसिनारा तक की दूरी पच्चीस योजन बताई गई है। यह सहायक और पूरक सूचना है, जो भौगोलिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसी प्रकार महासतिपट्ठान-सुत्त की व्याख्या करते हुए सुमंगलविलासिनी में कुरुदेश के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण भौगोलिक सूचना दी गई है। महामण्डल, मज्झिममंडल और अंतोमंडल या अन्तिम मंडल, इन तीन मंडलों के रूप में जम्बुद्वीप का विभाजन भी सुमंगलविलासिनी में किया गया है।[1] अनेक देशों, नगरों और स्थानों के नामकरण के हेतु बुद्धघोष ने इस अट्ठकथा में दिये हैं। इस प्रकार उन्होंने हमें बताया है कि अंग देश का यह नाम क्यों पड़ा,[2] कोसल देश क्यों 'कोसल' कहलाता था,[3] कौशाम्बी के घोषिताराम, कुक्कुटाराम और प्रावारिक आम्रवन किस प्रकार बने,[4] इसिपतन मिगदाय,[5] गिज्झकूट,[6] गन्धार[7] और सालवतिका[8] ने ये नाम किस प्रकार प्राप्त किए? आदि। सुमंगलविलासिनी में जम्बुद्वीप का विस्तार दस हजार योजन बताया गया है और उसके अन्तर्गत मज्झिम देस का भी उल्लेख है, जिसकी पूर्वी सीमा पर कजंगल नामक निगम बताया गया है।[9] जम्बुद्वीप के साथ-साथ अपरगोयान और उत्तर कुरुद्वीपों के भी विवरण दिये गये हैं। दक्षिणापथ को सुमंगलविलासिनी में गंगा के दक्षिण का प्रदेश बताया गया है।[10] उजुञ्ञा, कण्णकत्थल, मनसाकट और नादिका जैसे नगरों और ग्रामों; खरस्सरा, खण्डस्सरा, काकस्सरा और भग्गस्सरा जैसी झीलों

---

१. सुमंगलविलासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ २३९-२४२।
२. वहीं, जिल्द पहली, पृष्ठ २७९।
३. वहीं, पृष्ठ १३२।
४. वहीं, पृष्ठ ३१७-३१९।
५. वहीं, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३४९।
६. वहीं, पृष्ठ ५१६।
७. वहीं, पृष्ठ ३८९।
८. वहीं, पृष्ठ ३९५।
९. वहीं, पृष्ठ ४२९।
१०. वहीं, जिल्द पहली, पृष्ठ २६५।

और मुकुट-बन्धन और सारन्दद जैसे चैत्यों के विस्तृत विवरण इस अट्ठकथा में दिये गये हैं। शाक्यों और कोलियों के द्वारा रोहिणी नदी का बाँध बाँधने और उसके द्वारा अपने खेतों की सिंचाई करने का भी उल्लेख इस अट्ठकथा में है। रोहिणी नदी शाक्य और कोलिय जनपदों की सीमा पर होकर बहती थी, ऐसा यहाँ कहा गया है।[१] श्रावस्ती के जेतवनाराम के अन्दर चार कुटियाँ बनी हुई थीं, जिनके नाम इस अट्ठकथा के अनुसार करेरिकुटि, कोसम्बकुटि, गन्धकुटि और सललघर या सललागार थे। प्रथम तीन कुटियाँ अनाथपिण्डिक ने बनवाई थीं और सललघर या सललागार कुटी राजा प्रसेनजित् के द्वारा बनवाई गई थी, ऐसा इस अट्ठकथा का साक्ष्य है।[२]

पपञ्चसूदनी (मज्झिम-निकाय की अट्ठकथा) में कुरुराष्ट्र की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विस्तृत विवरण है और जम्बुद्वीप के अलावा पुब्बविदेह, अपरगोयान और उत्तरकुरु द्वीपों का भी उल्लेख है। किस प्रकार जम्बुद्वीप के कुरु, विदेह और अपरान्त जनपद बसाये गये, इसका यहाँ चक्रवर्ती राजा मन्धाता (मान्धाता) के दिग्विजय से सम्बन्धित विवरण है।[३] इसका उल्लेख हम द्वितीय परिच्छेद में करेंगे। सुमंगलविलासिनी के समान पपञ्चसूदनी में भी बुद्धकालीन नगरों, ग्रामों और स्थानों के नामों की व्याख्याएँ दी गई हैं, जो मनोरंजक होने के साथ-साथ प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक भूगोल पर पर्याप्त प्रकाश डालती हैं। इस प्रकार श्रावस्ती,[४] गिरिव्रज[५], वैशाली[६], उक्कट्ठा[७], कपिलवस्तु[८], गिज्झकूट[९], सुसुमार-

---

१. वहीं, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६७२।

२. वहीं, पृष्ठ ४०७।

३. पपञ्चसूदनी, जिल्द पहली, पृष्ठ २२५-२२६।

४. वहीं, पृष्ठ ५९।

५. वहीं, पृष्ठ १५१।

६. वहीं जिल्द दूसरी, पृष्ठ १९।

७. वहीं, जिल्द पहली, पृष्ठ ११।

८. वहीं, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६१।

९. वहीं, पृष्ठ ६३।

गिरि[1], इसिपतन मिगदाय[2], राजगृह[3], कलन्दक निवाप,[4] गोसिंग सालवन,[5] अंग,[6] कोसल[7], कौशाम्बी[8], शाक्य[9], कोलिय[10], हलिद्दवसन[11], और चम्पा[12] आदि ने ये नाम कैसे प्राप्त किये, इसके विस्तृत और मनोरंजक वर्णन इस अट्ठकथा में दिये गये हैं, जो प्राचीन परम्पराओं पर आधारित हैं। पपञ्चसूदनी में राजगृह की दूरी कपिल-वस्तु से ६० योजन और श्रावस्ती से १५ योजन बताई गई है।[13] हिमवन्त प्रदेश का विस्तार इस अट्ठकथा में तीन हजार योजन बताया गया है[14]। जेतवन, वेणुवन, अन्धवन, महावन, अञ्जनवन और सुभगवन के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी भी इस अट्ठकथा में दी गई है। मज्झिम देस की लम्बाई ३०० योजन, चौड़ाई २५० योजन और घेरा ९०० योजन इस अट्ठकथा में बताया गया है।[15]

सारत्थप्पकासिनी (संयुत्त-निकाय की अट्ठकथा) भौगोलिक सूचना की दृष्टि से एक अत्यन्त समृद्ध अट्ठकथा है। अंग और मगध देशों के विस्तृत विवरण यहाँ उपलब्ध है, राजगृह और उसके आसपास के तपोदाराम, सीतवन, सप्प-

---

१. वहीं, पृष्ठ ६५।
२. वहीं, पृष्ठ ६५।
३. वहीं, पृष्ठ १५१।
४. वहीं, पृष्ठ १३४।
५. वहीं, पृष्ठ २३५।
६. वहीं, पृष्ठ ३१२।
७. वहीं, पृष्ठ ३२६।
८. वहीं, पृष्ठ ३८९-३९०।
९. वहीं, पृष्ठ ६१।
१०. वहीं, जिल्द तीसरी, पृष्ठ १००।
११. वहीं, पृष्ठ १००।
१२. वहीं, पृष्ठ १।
१३. वहीं, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १५२।
१४. वहीं, जिल्द पहली, पृष्ठ ६।
१५. वहीं, जिल्द चौथी, पृष्ठ १७२।

सोण्डिक पब्बत, मद्दकुच्छि मिगदाय, वेभार पब्बत और सप्पिणी नदी; दक्खिणा-गिरि, एकनाला गाँव जैसे अनेक स्थानों के विस्तृत और स्पष्ट विवरण इस अट्ठकथा में मिलते है। इसी प्रकार श्रावस्ती के जेतवनाराम, आलवी के अग्गालव चेतिय, कौशाम्बी के घोसिताराम और उसके एक गावुत के फासले पर स्थित बदरिकाराम के सम्बन्ध में विस्तृत सूचना हमें इस अट्ठकथा में मिलती है। पपञ्च-सूदनी के समान इस अट्ठकथा में भी सुसुमारगिरि के नाम की व्याख्या की गई है और बताया गया है कि उसका यह नाम क्यों पड़ा।[1] इसी प्रकार अञ्जनवन नाम पड़ने का भी कारण इस अट्ठकथा में बताया गया है,[2] और सललागार विहार,[3] वैशाली[4] और इसिपतन[5] के नामकरण का भी। रोहिणी नदी के बाँध को लेकर शाक्य और कोलियो के विवाद का सुमंगलविलासिनी के समान इस अट्ठकथा में भी विवरण है[6]। इस अट्ठकथा मे मन्दाकिनी पोक्खरणी का भी उल्लेख है, जिसका विस्तार ५० योजन बताया गया है।[7]

मनोरथपूरणी (अंगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा) में हमें कभी गर्म न होने वाली 'अनोतत्त' (अनवतप्त) दह का वर्णन मिलता है।[8] पुब्बविदेह महाद्वीप तथा अन्य तीन महाद्वीपों का भी वर्णन इस अट्ठकथा में आचार्य बुद्धघोष ने किया है।[9] एक महत्वपूर्ण सूचना जो हमें मनोरथपूरणी में मिलती है, भगवान् बुद्ध के वर्षा-वासो के सम्बन्ध में है। भगवान् ने ज्ञान-प्राप्ति के बाद अपने ४६ वर्षावास किन-किन स्थानों पर बिताये, इसका पूरा ब्योरा देते हुए मनोरथपूरणी मे कहा गया

---

१. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २४९।
२. वहीं, जिल्द तीसरी, पृष्ठ २४७।
३. वहीं, पृष्ठ २६३।
४. वहीं, पृष्ठ २६५।
५ वहीं, पृष्ठ २९६।
६. वहीं, जिल्द पहली, पृष्ठ ६८।
७. वहीं, पृष्ठ २८१।
८. मनोरथपूरणी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ७५९।
९. वहीं, जिल्द पहली, पृष्ठ २६४।

है, "तथागत प्रथम बोधि में बीस वर्ष तक अस्थिर वास हो, जहाँ-जहाँ ठीक रहा, वहीं जाकर वास करते रहे। पहली वर्षा में इसिपतन में धर्म-चक्र प्रवर्तन कर... वाराणसी के समीप इसिपनन में वास किया। दूसरी वर्षा में राजगृह वेणुवन में, तीसरी और चौथी भी वहों। पाँचवी वर्षा में वैशाली में महावन कूटागारशाला में, छठी वर्षा मंकुल पर्वत पर। सातवीं त्रायस्त्रिंश भवन में। आठवीं भग्ग देश में सुंसुमार गिरि के भेसकलावन में, नवीं कौशाम्बी में। दसवीं पारिलेय्यक वन-खंड में। ग्यारहवीं नाला ब्राह्मण-ग्राम में। बारहवीं वेरंजा में। तेरहवीं चालिय पर्वत पर। चौदहवीं जेतवन में। पन्द्रहवीं कपिलवस्तु में। सोलहवीं आलवी में। सत्रहवीं राजगृह में। अठारहवीं चालिय पर्वत पर और उन्नीसवीं भी वहीं। बीसवीं वर्षा में राजगृह में बसे। इस प्रकार बीसवीं तक अनिबद्ध वर्षावास करते, जहाँ-जहाँ ठीक हुआ वहीं बसे। इससे आगे दो ही शयनासन (निवास-स्थान) ध्रुव परिभोग (सदा रहने) के किये। कौन से दो? जेतवन और पूर्वाराम।"[१] खुद्दक-निकाय के ग्रन्थ बुद्ध-वंस की अट्ठकथा (मधुरत्थविलासिनी) में भी इसी प्रकार की सूचना मिलती है।

वैशाली के संबंध में विनय-पिटक पर आधारित यह महत्वपूर्ण सूचना हमें मनोरथपूरणी में मिलती है कि उस समय वैशाली ऋद्ध, स्फीत, बहुजनाकीर्ण अन्न-पान-सम्पन्न नगरी थी। उसमें ७७०७ प्रासाद, ७७०७ कूटागार, ७७०७ आराम और ७७०७ पुष्करिणियाँ थीं। अन्य नगरों और स्थानों आदि के सम्बन्ध में इस अट्ठकथा में बहुत कुछ वही सूचना दी गई है, जिसका उल्लेख हम अन्य अट्ठ-कथाओं के सम्बन्ध में कर चुके हैं। भगवान् बुद्ध के प्रमुख शिष्यों, भिक्षु-भिक्षुणी और उपासक-उपासिकाओं, के जन्मस्थान आदि के प्रसंग में महत्वपूर्ण भौगोलिक सूचना इस अट्ठकथा में दी गई है।

खुद्दक-निकाय की अट्ठकथाओं में जिनका महत्व भौगोलिक दृष्टि से अधिक है, मुख्यतः खुद्दक पाठ की अट्ठकथा, धम्मपदट्ठकथा, सुत्त-निपात की अट्ठकथा (परमत्थजोतिका) और थेर-थेरी-गाथाओं पर अट्ठकथा (परमत्थदीपनी)

---

१. महापण्डित राहुल सांकृत्यायन द्वारा "बुद्धचर्या", पृष्ठ ७०-७१ में अनुवादित।

हैं, यद्यपि कुछ न कुछ सूचना इस निकाय के प्राय: सभी ग्रन्थों की अट्टकथाओं में मिलती है।

खुद्दकपाठ की अट्ठकथा में श्रावस्ती के जेतवनाराम का उल्लेख है और राजगृह के १८ विहारों का विवरण दिया गया है। कपिलवस्तु और वैशाली का भी इस अट्ठकथा में उल्लेख है और गंगा नदी और गयासीस पर्वत जैसे कई प्राकृतिक स्थानों के विवरण हैं।

धम्मपदट्ठकथा में हमें बुद्धकालीन भूगोल सम्बन्धी महत्वपूर्ण सूचना बिखरी हुई मिलती है। तक्षशिला, कपिलवस्तु, कौशाम्बी, वाराणसी, सोरेय्य, राजगृह सावत्थी, वैशाली जैसे अनेक नगरों, हिमवन्त, सिनेरु (सुमेरु), गन्धमादन और गिज्झकूट जैसे पर्वतों, वेणुवन, महावन, जेतवन जैसे वनों, मंगलपोक्खरणी जैसी पुष्करिणियों, अनोतत्त और छद्दन्त जैसी झीलों और गंगा और रोहिणी जैसी नदियों के प्रभूत वर्णन मिलते हैं। धम्मपदट्ठकथा के अनुसार कोसलराज प्रसेनजित् की शिक्षा तत्कालीन प्रसिद्ध शिक्षा-केन्द्र तक्षशिला में हुई थी और महालि नामक लिच्छवि राजकुमार और बन्धुल मल्ल उसके सहपाठी थे।[1] कोसलराज प्रसेनजित् ने अपनी पुत्री वजिरा का विवाह अजातशत्रु के साथ किया था और काशी ग्राम उसके सुगन्ध और स्नान के व्यय के लिए दिया था।[2] वाराणसी के एक व्यापारी का गधे की पीठ पर माल लादकर तक्षशिला व्यापारार्थ जाने का भी उल्लेख यहाँ है।[3] इसी प्रकार लाल वस्त्र से लदी पाँच सौ गाड़ियों को लेकर वाराणसी के एक व्यापारी का सावत्थी (श्रावस्ती) जाने का उल्लेख है।[4]

सुत्त-निपात की अट्ठकथा में प्रभूत भौगोलिक सामग्री भरी पड़ी है। श्रावस्ती, कपिलवस्तु, वाराणसी और राजगृह जैसे अनेक नगरों का इस अट्ठकथा में विस्तृत विवरण है और नेरंजरा जैसी नदियों और गंधमादन और चण्डगब्भ जैसे पर्वतों और पर्वत-गुफाओं के भी विवरण हैं। मगध और कोसल

---

१. धम्मपदट्ठकथा, जिल्द पहली, पृष्ठ ३३७-३३८।
२. वहीं, जिल्द तीसरी, पृष्ठ २६६।
३. वहीं, जिल्द पहली, पृष्ठ १२३।
४. वहीं, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४२९।

राज्यों के सम्बन्ध में प्रभूत सामग्री इस अट्ठकथा से संकलित की जा सकती है। इस अट्ठकथा में उल्लेख है कि वाराणसी का एक व्यापारी पाँच सौ गाड़ियाँ लेकर सीमान्त देश में गया और वहाँ उसने चन्दन खरीदा।[1]

थेर-थेरी-गाथाओं की अट्ठकथा (परमत्थदीपनी) में, जो आचार्य धम्मपाल की रचना है, अनेक बुद्धकालीन भिक्षु और भिक्षुणियों की जीवनियों के सम्बन्ध में भौगोलिक दृष्टि से महत्वपूर्ण विवरण दिये गये हैं, और इसी प्रकार इन्ही आचार्य के द्वारा रचित विमानवत्थु और पेतवत्थु की अट्ठकथाओं में भी, जिनका उपयोग हम अपने अध्ययन में करेंगे।

विनय-पिटक की अट्ठकथा (समन्तपासादिका) भौगोलिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। लिच्छवियों की शासन-विधि पर इस अट्ठकथा में विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है।[2] अन्ध और दमिल लोगों का वर्णन इस अट्ठकथा में म्लेच्छ (मलिक्खा) या अपरिचित लोगों के रूप में किया गया है।[3] इस अट्ठकथा में बौद्ध परम्परा के अनुसार चार महाद्वीपों का भी वर्णन है।[4] मगध की राजधानी राजगृह के नामकरण का कारण और बुद्ध-काल में उसकी जनसंख्या और विस्तार आदि के सम्बन्ध में इस अट्ठकथा मे विस्तृत विवरण है।[5] जेतवन और अशोकाराम के सम्बन्ध में इसी प्रकार विस्तृत सूचना दी गई है।[6] राजगृह के चारों ओर स्थित पाँच पहाड़ियों और विशेषतः गिज्झकूट पब्बत का भी विस्तृत विवरण इस अट्ठकथा में है।[7] इसी प्रकार इसिगिलि पर्वत के नाम पड़ने का कारण इस अट्ठकथा में बताया गया है।[8] वैशाली के समीप स्थित

---

१. परमत्थजोतिका (सुत्त-निपात की अट्ठकथा), जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५२३।
२. समन्तपासादिका, जिल्द पहली, पृष्ठ २१२।
३. वहीं, पृष्ठ २५५।
४. वहीं, पृष्ठ ११९।
५. वहीं, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ६१४।
६. वहीं, जिल्द पहली, पृष्ठ ४८-४९।
७. वहीं, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २८५।
८. वहीं, जिल्द पहली, पृष्ठ ३७।

महावन और कपिलवस्तु के समीप महावन का यहाँ स्पष्ट विवरण है।[१] वेभार पर्वत के नीचे, राजगृह के समीप, तपोदा नामक गरम सोते का यहाँ उल्लेख है।[२] सुत्त-पिटक की अट्ठकथाओ के समान इस अट्ठकथा में भी आचार्य बुद्धघोष ने विभिन्न नगरो और स्थानो के नाम पडने के कारण बताये है। इस प्रकार राजगृह के वेणुवन कलदक निवाप[३] श्रावस्ती[४] और वैशाली[५] के सम्बन्ध मे उसी प्रकार की सूचना दी गई है जिसका उल्लेख हम सुत्त-पिटक की अट्ठकथाओ के सम्बन्ध मे पहले कर चुके है। वैशाली के गोतमक चैत्य[६], राजगृह के समीप लट्ठिवन[७], कौशाम्बी के घोषिताराम[८] और विन्ध्याटवी (विञ्झाटवी)[९] के सम्बन्ध मे प्रभूत सूचना इस अट्ठकथा मे मिलती है, जिसका उपयोग हम अपने अध्ययन मे करेंगे।

अट्ठसालिनी (धम्मसंगणि की अट्ठकथा) का मुख्य विषय यद्यपि अभिधम्म-दर्शन की व्याख्या करना है, परन्तु यहाँ भी चार महाद्वीपो के वर्णन और बन्धुमती, भरुकच्छ (भारुकच्छक) साकेत और श्रावस्ती जैसे नगरो; कोसल, मगध, और काशी (कासिपुर) जैसे जनपदो तथा अचिरवती, गगा, गोदावरी, नेरजरा, अनोमा, मही और सरभू जैसी नदियो के उल्लेख मिलते है, जो भौगोलिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। कैलाश पर्वत-शिखर (केलासकूट) और अनोतत्त दह का भी इस अट्ठकथा मे उल्लेख है और इसी प्रकार मगलपोक्खरणी का भी। इसी प्रकार की कुछ अन्य भौगोलिक सूचना यत्र-तत्र बिखरी हुई अभिधम्म पिटक के ग्रन्थो की अन्य अट्ठकथाओ मे भी हमे मिल सकती है।

---

१. वहीं, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३९३।
२. वहीं, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५१२।
३. वहीं, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ५७५।
४. वहीं, पृष्ठ ६१४।
५. वहीं, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३९३।
६. वहीं, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ६३६।
७. वहीं, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ९७२।
८. वहीं, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ५७४।
९. वहीं, पृष्ठ ६५५।

ऊपर पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं की बुद्ध के जीवनकालीन भूगोल के सम्बन्ध में प्रमाणवत्ता और उनके भौगोलिक महत्व का कुछ विवेचन हम कर चुके हैं। अब हम यहाँ कुछ ऐसे पालि और संस्कृत बौद्ध साहित्य का संक्षिप्त निर्देश करेंगे जो यद्यपि हमारे अध्ययन के आधार के रूप में यहाँ ग्राह्य नहीं है, परन्तु प्रासंगिक रूप से जिसका उपयोग सहायक साक्ष्य के रूप में अथवा किन्हीं विशेष तथ्यों के समर्थन प्राप्त करने के लिए, करना कभी-कभी आवश्यक हो गया है। इस प्रकार के साहित्य में, जहाँ तक पालि का सम्बन्ध है, अशोक के अभिलेख, मिलिन्दपञ्हो, दीपवंस और महावंस उल्लेखनीय हैं। अशोक के अभिलेख भारत के जिस भौगोलिक चित्र को उपस्थित करते हैं, वह ईसवी-पूर्व तीसरी शताब्दी का है, अतः हमारे अध्ययन से, जिसका सम्बन्ध भगवान् बुद्ध के जीवनकालीन भूगोल से है, सम्बद्ध नहीं है। परन्तु फिर भी यहाँ कुछ ऐसी सूचना अवश्य मिलती है जिसका पालि तिपिटक के विवरणों से मिलान करने पर हम बुद्धकालीन जम्बुद्वीप के चित्र को अधिक ठीक तरह समझ सकते हैं। जैसा हम इस परिच्छेद के आरम्भ में दिखा चुके हैं, जम्बुद्वीप के विस्तार का जो चित्र अशोक के अभिलेखों में मिलता है और उसका जो चित्र पालि तिपिटक से विदित होता है; उनका मिलान करने से पालि तिपिटक की प्राचीनता पर प्रकाश पड़ता है। मिलिन्दपञ्हो, जो ईसवी सन् के करीब की रचना है, अपने इसी समय के भारतीय भौगोलिक चित्र को उपस्थित करती है, जिससे तुलनात्मक दृष्टि से कभी-कभी सहायता ली गई है। दीपवंस और महावंस लंका के इतिहास से सम्बन्धित ग्रन्थ हैं। इनमें से प्रथम ग्रन्थ का रचना-काल अनुमानतः ३५२-४५० ईसवी के बीच में है और दूसरे का सम्भवतः छठी शताब्दी ईसवी का आदि भाग। चूँकि अट्ठकथाओं के समान ये दोनों वंस-ग्रन्थ प्राचीन परम्परा पर, जैसी कि वह प्राचीन सिंहली अट्ठकथाओं में निहित थी, आधारित हैं, अतः उनके उन अंशों का, जो बुद्ध के जीवन-काल से सम्बन्धित हैं, कुछ साक्ष्य आवश्यकतावश यहाँ ले लिया गया है।

बौद्ध संस्कृत साहित्य में महावस्तु (ईसवी-पूर्व दूसरी शताब्दी से चौथी शताब्दी ईसवी तक), ललितविस्तर (ईसवी-पूर्व दूसरी शताब्दी से दूसरी शताब्दी ईसवी तक), अवदानशतक (दूसरी शताब्दी ईसवी) और दिव्यावदान (तीसरी-

चौथी शताब्दी ईसवी) जैसे ग्रन्थों में प्रभूत महत्वपूर्ण भौगोलिक सामग्री मिलती है, जिससे बुद्धकालीन भारतीय भूगोल पर भी पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। इसी प्रकार महाकवि अश्वघोष की रचनाएँ, विशेषत. बुद्ध-चरित और सौन्दरनन्द, भी कुछ हद तक महत्वपूर्ण है। इन सब के सहयोगी साक्ष्य की प्रस्तुत अध्ययन मे उपेक्षा नही की गई है। परन्तु यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि यह अध्ययन केवल पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं के आधार पर भगवान् बुद्ध के जीवनकालीन भूगोल से सम्बन्धित है।

दूसरा परिच्छेद

जम्बुद्वीप : प्रादेशिक विभाग और प्राकृतिक भूगोल

पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं में बुद्ध-काल में ज्ञात भारत देश के लिए जम्बुदीप (सं० जम्बुद्वीप) नाम का प्रयोग किया गया है।[1] कहा गया है

---

१. पुराणों में भी जम्बुद्वीप नाम का प्रयोग किया गया है, किन्तु एक विभिन्न अर्थ में। पुराणों के अनुसार पृथ्वी सप्त द्वीपों जम्बु, शाक, कुश, शाल्मल, क्रौंच, गोमेद और पुष्कर में विभक्त है, जिनमें एक जम्बुद्वीप है। इस जम्बुद्वीप के नव वर्ष हैं, जिनमें एक भारतवर्ष है। इस भारतवर्ष के भी नव भेद, खण्ड या द्वीप बताये गये हैं, जिनमें आठ के नाम तो हैं. इन्द्र द्वीप, कशेरुमान्, ताम्रपर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गन्धर्व और वरुण और नवम के सम्बन्ध में केवल इतना कहा गया है "अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः"। "सागरसंवृतः" नवम द्वीप का नाम राजशेखर-कृत "काव्यमीमांसा" (दसवीं शताब्दी ईसवी) में "कुमारी द्वीप" बताया गया है। "कुमारीद्वीपश्चायं नवमः"। विद्वानों का अनुमान है कि यह नवम द्वीप (कुमारी या कुमारिक द्वीप) ही वास्तविक भारत देश है और शेष आठ भाग बृहत्तर भारत के हैं। देखिए कनिंघम-कृत "एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया" (सुरेन्द्रनाथ मजूमदार-सम्पादित) में प्रथम परिशिष्ट के रूप में संलग्न श्री मजूमदार द्वारा लिखित "पुराणिक नाइन डिविजनस् ऑव ग्रेटर इण्डिया" शीर्षक लेख, पृष्ठ ७४९-७५४। आवश्यक पौराणिक उद्धरण वहाँ दे दिये गये हैं, जिनके लिए देखिए कनिंघम का विवरण भी, वहीं, पृष्ठ ६-८। कुमारी द्वीप को छोड़कर, शेष आठ उपर्युक्त भाग बृहत्तर भारत के ही हैं, इस मत से डा० लाहा भी सहमत हैं। देखिये उनका "इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्सट्स् ऑव

कि बुद्ध केवल जम्बुद्वीप मे ही उत्पन्न होते है।[२] सिहल के पालि इतिहास-ग्रन्थों,

---

बुद्धिज्म एण्ड जैनिज्म", पृष्ठ १५। इस प्रकार ज्ञात होगा कि पुराणों का जम्बु-द्वीप तो बौद्ध परम्परा के जम्बुद्वीप से अधिक विस्तृत है ही, पौराणिक भारतवर्ष भी, जिसका केवल एक नवम खंड ही प्रकृत भारत देश है, बौद्धों के जम्बुद्वीप से अधिक विस्तृत है। वस्तुतः पुराणों ने "भारतवर्ष" शब्द का प्रयोग कहीं तो बृहत्तर भारत के विस्तृत अर्थ में किया है और कहीं केवल भारत देश के अर्थ में भी। इस प्रकार पौराणिक विवरणों में पर्याप्त भ्रामकता है और अव्यावहारिकता भी। इसके विपरीत पालि के जम्बुद्वीप का भारतीय उप-महाद्वीप के अर्थ में, जैसा कि वह बुद्ध के जीवन-काल मे विदित था, एक सुनिश्चित अर्थ है और उसमें भौगोलिक व्यावहारिकता भी है। जैन ग्रन्थ 'जम्बुदीवपण्णत्ति' (१-१०) मे जम्बुद्वीप (प्राकृत जम्बुदीव) को एक महाद्वीप माना गया है और (पुराणों के ९ वर्षों के स्थान पर) उसके सात वर्षों या क्षेत्रों का वर्णन किया गया है, यथा भरह, हेमवय, हरि, विदेह, रम्मग, हेरण्णवय और एरावय। जैन परम्परा के अनुसार जम्बुद्वीप के मध्य में मेरु (सुमेरु) पर्वत स्थित है। इससे विदित होता है कि जम्बु द्वीप को यहाँ प्रायः एशिया के समान माना गया है। इसके विपरीत पालि का जम्बु-द्वीप सुमेरु (सिनेरु) पर्वत के दक्षिण में स्थित है और उससे स्पष्ट अभिप्राय भारत-देश से लिया गया है। जैन परम्परा में जम्बुद्वीप के अंगभूत भरहवास (भारतवर्ष) के सम्बन्ध में कहा गया है कि वह चुल्ल हिमवन्त के दक्षिण में और पूर्वी और पश्चिमी समुद्रों के बीच मे स्थित है। अतः जैन साहित्य के इस भरह-वास (भारतवर्ष) से ही हम साधारणतः पालि के जम्बुद्वीप को मिला सकते है। बौद्ध संस्कृत साहित्य में जम्बुद्वीप या भारत का एक नाम इन्द्रवर्द्धन भी है। जम्बु-द्वीप का चीनी रूपान्तर "चम्पु" है और इस नाम का प्रयोग चीनी यात्री यूआन् चुआङ ने किया है। देखिये थॉमस वाटर्स: औन् यूआन् चुआङस् ट्रैविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३२-३३। तिब्बती परम्परा मे भी भारत के लिए जम्बुद्वीप नाम का प्रयोग मिलता है। देखिए विन्टरनित्ज़ : हिस्ट्री ऑव इण्डियन लिटरेचर, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३६३, पद-संकेत ३। हमारा देश द्वितीय शताब्दी ईसवी-पूर्व चीनियों को "युआन्-तु" या "यिन्-तु" अर्थात् हिन्दु या शिन्तु (सिन्धु)

विशेषतः महावंस[१] और चूलवंस,[४] में जम्बुद्वीप को सीहल दीप (सिंहल द्वीप) और

के नाम से विदित था। बाद में वे इसका उच्चारण "थियन्-तु" करने लगे। देखिये कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया (सुरेन्द्रनाथ मजूमदार-सम्पादित) पृष्ठ ११। ऐसा माना जाता है कि चीनी शब्द "यिन्-तु" या "युआन्-तु" संस्कृत शब्द "इन्दु-देश" का रूपान्तर है। वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ १३२। चीनी लोग भारतवर्ष को "इन्दु-देश" क्यों कहते थे, इसका कारण बताते हुए यूआन् चुआङ ने लिखा है कि बुद्ध रूपी सूर्य के अस्त हो जाने के बाद इस देश के महात्मा ही सारे संसार के देशों के लिए इन्दु (चन्द्रमा) का काम करते है, जब कि अन्य देशों में जहाँ-तहाँ तारागणों के समान महापुरुष उत्पन्न होते रहते हैं। देखिये वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ १३८। यूआन् चुआङ ने भारतवर्ष के लिये जम्बुद्वीप (चीनी चम्पु) और "यिन्-तु", दोनों नामों का प्रयोग किया है। वहीं जिल्द पहली, पृष्ठ ३२-३३, १४०, पहले शब्द को भारतीय उप-महाद्वीप के अर्थ में और दूसरे को सिन्धु नदी से परे देश के अर्थ में, जिसका विभाजन उसने पाँच प्रदेशों के रूप में किया है, यथा, उत्तर, पूर्व, पश्चिम, मध्य और दक्षिण यिन्-तु। भारतवर्ष के प्राचीन चीनी नामों के विस्तृत विवेचन के लिये देखिए वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया : जिल्द पहली, पृष्ठ १३१-१४०। चूँकि मगध देश बौद्धों का पवित्रतम स्थान था, अतः कभी-कभी चीनी लोग सम्पूर्ण भारतवर्ष के लिए "मगध" नाम का भी प्रयोग करते थे। कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ १२। यह उल्लेखनीय है कि सम्राट् शीलादित्य (हर्षवर्द्धन) ने तत्कालीन चीनी सम्राट् के पास भेंटें भेजते हुए अपना परिचय "मगध" के राजा के रूप में ही दिया था। वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ १३२। भारतीय समाज में ब्राह्मणों की प्रमुखता होने के कारण चीनी लोग "ब्राह्मण-देश" (पो-लो-मेन् कु-ओ) के नाम से भी भारतवर्ष को जानते थे। वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ १४०। यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि वैदिक सूत्र-ग्रन्थों का आर्यावर्त (आर्य देश) और मनुस्मृति का मध्य-देश, जो दोनों प्रायः समान हैं, जम्बुद्वीप के

तम्बपण्णि दीप (ताम्रपर्णि द्वीप) से, जिन दोनों से तात्पर्य वर्तमान लंकाद्वीप से है, अलग देश बताया गया है। "जम्बुद्वीप" नाम पड़ने का यह कारण बताया गया है कि यहाँ जम्बु (जामुन) नामक वृक्ष, जिसके बृहदाकार का अतिशयोक्तिमय वर्णन किया किया गया है, अधिकता से पाया जाता है।[5] इसी कारण इसे "जम्बुसण्ड"[6] या "जम्बुवन"[7] भी कहा गया है।

जम्बुद्वीप के रूप में भारत-सम्बन्धी बौद्ध विचार को समझने के लिए और उसकी सीमा, विस्तार और आकार के सम्बन्ध मे ठीक धारणा निर्माण करने के लिये यह आवश्यक है कि पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओ में निहित

अंगभूत हैं। मिलाइये वाटर्स: औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ १३२।

२. जम्बुदीपे येव बुद्धा निब्बत्तन्तीति। जातकट्ठकथा, पठमो भागो, पृष्ठ ३८ (भारतीय ज्ञानपीठ, काशी), मिलाइये बुद्धवंस-अट्ठकथा, पृष्ठ ४८; पपञ्चसूदनी (मज्झिम-निकाय की अट्ठकथा), जिल्द दूसरी, पृष्ठ ९१७; महाबोधिवंस, पृष्ठ १२; अभिधर्मकोश (राहुल सांकृत्यायन द्वारा सम्पादित) ४।१०९।

३. ५।१३; १४।८, देखिए परिच्छेद १५ भी।

४. ३७।२१६, २४६।

५. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ९२; परमत्थजोतिका (सुत्त-निपात की अट्ठकथा), जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४४३; विसुद्धिमग्ग ७।४२ (धर्मानन्द कोसम्बी द्वारा सम्पादित देवनागरी संस्करण); समन्तपासादिका, जिल्द पहली, पृष्ठ ११९; मिलाइये अट्ठसालिनी, पृष्ठ २४१ (देवनागरी संस्करण); महावंस-अट्ठकथा, पृष्ठ ३३१; महाभारत में "जम्बुद्वीप" नाम की व्याख्या के लिये देखिये भीष्मपर्व ७।१९-२६।

६. जम्बुसण्डस्स इस्सरो, सेल-सुत्त (सुत्त-निपात), थेरगाथा, गाथा ९१४; मिलाइये परमत्थजोतिका (सुत्त-निपात की अट्ठकथा), जिल्द पहली, पृष्ठ १२१; अंगुत्तर-निकाय, जिल्द चौथी, पृष्ठ ९०।

७. पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४२३।

सृष्टि-विज्ञान सम्बन्धी बौद्ध विचार को हम देखें। बौद्ध परम्परा के अनुसार, जिसका उल्लेख विशेषत. अगुत्तर-निकाय,[1] कई जातकों,[2] मनोरथपूरणी,[3] अट्ठ-सालिनी,[4] सारत्थप्पकासिनी[5] और विसुद्धिमग्ग[6] मे हुआ है तथा जिसे बौद्ध संस्कृत साहित्य का भी समर्थन प्राप्त है[7] और यूआन् चुआङ ने भी अशत· जिसका अनुवर्तन किया है,[8] इस महाशून्य रूपी अन्तरिक्ष मे अनन्त चक्कवाल (चक्रवाल) या गोलाकार सृष्टियाँ, जिन्हे लोक-धातुएँ, भी कहा गया है, अवस्थित है। "विसुद्धिमग्ग" मे कहा गया है "अनन्त चक्रवालो और अनन्त लोक-धातुओ को भगवान् (बुद्ध) ने अपने अनन्त बुद्ध-ज्ञान से जाना, विदित किया, समझा।"[9] प्रत्येक चक्रवाल का विस्तार बारह लाख, तीन हजार, चार सौ पचास योजन है और प्रत्येक का अपना अलग-अलग सूर्य है, जो उसे प्रकाश देता है। हमारी पृथ्वी, जो इन्ही अनन्त चक्रवालो मे से एक है, चौबीस नहुत अर्थात् २ लाख ४० हजार योजन (एक नहुत बराबर दस हजार) मोटी है और चारो ओर समुद्र से घिरी हुई है।[10] यह चार महाद्वीपो (चतुन्न महादीपान) से युक्त

---

१. जिल्द पहली, पृष्ठ २२७; जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ५९।

२. देखिये विशेषतः जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३१३; जिल्द तीसरी, पृष्ठ २३९, ४८१; जिल्द छठी, पृष्ठ ३, ४३२।

३. पृष्ठ ४४०।

४. पृष्ठ २४०–२४३ (देवनागरी संस्करण)।

५. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४४२।

६. ७।४०-४५ (पृष्ठ १३९-१४०)।

७. देखिये विशेषतः दिव्यावदान, पृष्ठ २१४।

८. वाटर्स: औन् यूआन् चुआङस् ट्रैविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३०-३५।

९. अनन्तानि चक्कवालानि अनन्ता लोकधातुयो भगवा अनन्तेन बुद्धञाणेन अवेदि अञ्ञासि पटिविज्झि। विसुद्धिमग्ग ७।४४।

१०. सागरेण परिक्खित्तं चक्कं च परिमण्डलं। जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४८४; मिलाइये वहीं, जिल्द चौथी, पृष्ठ २१४।

है, जिनके नाम है जम्बुदीप (जम्बुद्वीप), पुब्बविदेह (पूर्वविदेह), उत्तरकुरु और अपरगोयान। ये चारो महाद्वीप सुमेरु (सिनेरु) पर्वत के चारो ओर अवस्थित है।[1] सुमेरु पर्वत की ऊँचाई १६८ योजन बताई गई है। सुमेरु के चारो ओर सात पर्वत-श्रेणियाँ फैली हुई है, जिनके नाम है, युगन्धर, ईसधर, करवीक, सुदस्सन, नेमिन्धर, विनतक और अस्सकण्ण।[2] पूर्व विदेह (पुब्बविदेहो) के सम्बन्ध मे बताया गया है कि यह सुमेरु पर्वत के पूर्व मे स्थित है। "पुरतो विदेहे पस्स।"[3] इसका विस्तार सात हजार योजन बताया गया है। उत्तरकुरु सुमेरु के उत्तर मे अवस्थित है। इसका विस्तार आठ हजार योजन है और यह समुद्र से घिरा है।[4] उत्तरकुरु को दीपवस मे "कुरु दीप" (कुरु द्वीप) कहकर पुकारा गया है। अपरगोयान (अपरगोयानं) जिसे महावस्तु[5] मे अपरगोदानिक या अपरगोदानिय, ललितविस्तर[7] मे अपरगोदानीय और तिब्बती दुल्व मे अपरगौदनि कहा गया है[8], सुमेरु के पश्चिम मे (गोयानिये च पच्छतो-विधुरपण्डित जातक) अवस्थित बताया गया है। इसका विस्तार ७००० योजन है। "सत्तयोजनसहस्सप्प-

---

१. महाभारत के भीष्म-पर्व मे भी सुमेरु के चारों ओर स्थित चार महाद्वीप बताये गये हैं, जिनमे से दो उत्तरकुरु और जम्बुद्वीप, के नाम तो पालि परम्परा के समान है, परन्तु पालि के अपरगोयान के स्थान पर केतुमाल और पुब्बविदेह के स्थान पर भद्राश्व नाम का प्रयोग किया गया है।

२. युगन्धरो ईसधरो करवीको सुदस्सनो।
नेमिन्धरो विनतको अस्सकण्णो गिरि ब्रहा।
एते सत्त महासेला सिनेरुस्स समन्ततो। विसुद्धिमग्ग ७।४२।

३. जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ २७८ (विधुर पण्डित जातक)

४. सुमंगलविलासिनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६२३; बुद्धवंस-अट्ठकथा, पृष्ठ ११३।

५. पृष्ठ १६।

६. जिल्द दूसरी, पृष्ठ १५९, ३७८।

७. पृष्ठ १९।

८ देखिये रॉकहिल : दि लाइफ ऑव दि बुद्ध, पृष्ठ ८४।

माणं अपरगोयानं"।[1] जम्बुद्वीप सुमेरु पर्वत के दक्षिण मे अवस्थित है और इसका विस्तार दस हजार योजन बताया गया है। "दससहस्सयोजनप्पमाणं जम्बुदीपं"।[2] इस दस सहस्र योजन विस्तार मे से चार सहस्र योजन विस्तार समुद्र का है, तीन सहस्र हिमालय पर्वत का और शेष तीन सहस्र योजन मे मनुष्य बसे हुए है[3]। यह भी कहा गया है कि चार महाद्वीपो मे से प्रत्येक पाँच-पाँच सौ लघु द्वीपो से घिरा हुआ है। "एकमेको चेत्थ महादीपो पचसत-पचसत-परित्तदीप-परिवारो"[4]। यह ध्यान मे रखना चाहिए कि दीप (स० द्वीप) से तात्पर्य यहाँ चारो ओर जल से घिरे टापू से नही है, बल्कि केवल दो ओर जल से घिरे (द्वीप) स्थल अथवा दोआब से है[5]। चारो महाद्वीपो की आपेक्षिक स्थिति के सम्बन्ध मे पालि विवरणो मे कहा गया है कि "जब जम्बुद्वीप मे सूर्योदय होता है, तो अपरगोयान मे रात का बीच का पहर होता है। अपरगोयान मे जब सूर्यास्त होता है, तो जम्बुद्वीप में अर्धरात्रि होती हे। अपरगोयान मे जब सूर्योदय होता है, तो जम्बुद्वीप मे दोपहर होता है, पूर्वविदेह मे सूर्यास्त और उत्तरकुरु मे अर्द्धरात्रि।"[6]

---

१. सुमंगलविलासिनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६२३, मिलाइये जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ २७८; परमत्थजोतिका (सुत्त-निपात की अट्ठकथा), जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४४३।

२. सुमंगलविलासिनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६२३; मिलाइये "जम्बुदीपो नाम महा, दसयोजनसहस्सप्परिमाणो"। जातकट्ठकथा, पृष्ठ ३८ (भारतीय ज्ञान-पीठ, काशी)।

३. परमत्थजोतिका, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४३७; उदान-अट्ठकथा, पृष्ठ ३००; मिलाइये महाबोधिवंस, पृष्ठ ७३।

४. विसुद्धिमग्ग ७।४४; मिलाइये परमत्थजोतिका, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४४२।

५. मिलाइये कनिंघम: एन्शियण्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ सैंतीस (भूमिका)।

६. मललसेकर: डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ११७।

चारों महाद्वीपों के उपर्युक्त पालि विवरण आधुनिक भौगोलिक परिभाषा में समझने में कठिन जान पड़ते हैं। फिर भी उनमें बहुत कुछ स्पष्ट सूचना भी है, जिसके आधार पर हम उनकी आधुनिक पहचान का कुछ अनुमान कर सकते हैं। उदाहरणतः, जम्बुद्वीप के सम्बन्ध में कहा गया है कि वह सुमेरु पर्वत के दक्षिण में है और उसमें हिमालय पर्वत सम्मिलित है। चौरासी हजार चोटियों से युक्त हिमालय (हिमवा) जम्बुद्वीप में है।[१] इस बात से स्पष्ट होता है कि पालि तिपिटक में जिस जम्बुद्वीप का उल्लेख किया गया है, वह हिमालय के दक्षिण में अवस्थित है। महा-उम्मग्ग-जातक में कहा गया है कि जम्बुद्वीप सागर से परिवृत (परिब्बत) है। इसका अर्थ यह है कि सम्पूर्ण दक्षिण भारत, जो उस समय की तरह आज भी सागरसंवृत है, पूर्व में बंगाल की खाड़ी और पश्चिम में अरब सागर से घिरा है, जम्बुद्वीप के अंग के रूप में पालि परम्परा को ज्ञात था। परन्तु उसका साक्षात् अवेक्षण से प्राप्त ज्ञान उसे था, ऐसा नहीं कहा जा सकता। जैसा हम पहले देख चुके हैं, बुद्ध के जीवन-काल में, जैसा निकायों से प्रकट होता है, दक्षिणापथ के रूप में दक्षिण भारत के केवल उस भाग का ज्ञान प्रारम्भिक पालि परम्परा को था, जो गोदावरी और अस्सक-अलक जनपदों से ऊपर का था। इस प्रकार अवन्ती जनपद की उज्जेनी (उज्जयिनी) और माहिस्सति (माहिष्मती) नगरियों से वह सुपरिचित थी। "अपदान" में दक्षिण भारत के अन्धका (आन्ध्र), सबरा (शबर), दमिला (तमिल) और कोलका (चोल) जैसे लोगों के उल्लेख अवश्य हैं और इसी प्रकार "जातक" में दमिल रट्ठ और चोल रट्ठ के भी। परन्तु गोदावरी से परे दक्षिणी प्रदेश के साथ सम्पर्क के साक्ष्य बुद्ध के जीवन-काल में नहीं मिलते। अवन्ति-दक्षिणापथ में भी बुद्ध के जीवन-काल में बहुत कम भिक्षु थे, ऐसा विनय-पिटक[२] में स्पष्टतः कहा गया है। हाँ, अशोक के काल में महारट्ठ या महाराष्ट्र (शिलालेख पंचम और त्रयोदश) के साथ-साथ दक्षिण भारत के सत्यपुत्र, केरलपुत्र, चोल और पाण्ड्य (शिलालेख

---

१. परमत्थजोतिका, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४४३; समन्तपासादिका, जिल्द पहली, पृष्ठ ११९; मिलाइये विसुद्धिमग्ग ७।४२।

२. पृष्ठ २१३ (हिन्दी अनुवाद)

द्वितीय) जैसे प्रदेश भी सुविज्ञात थे, ऐसा उसके अभिलेखो से प्रकट होता है। इसी प्रकार पालि तिपिटक के प्रथम चार निकायो मे लङ्का का उल्लेख नही है, परन्तु अशोक के समय मे वह एक सुविज्ञात द्वीप था, जहाँ उसके प्रव्रजित पुत्र और पुत्री धर्म-प्रचारार्थ गये थे। "महावस"[१] मे कहा गया है कि राजकुमार विजय ने उसी दिन लङ्का मे पैर रक्खे जिस दिन भगवान् बुद्ध का परिनिर्वाण हुआ। इससे यह ज्ञात होता है कि लङ्का मे भारतीयो का आना-जाना भगवान् बुद्ध के परि-निर्वाण या उसके कुछ समय बाद और अशोक के समय के पूर्व कभी आरम्भ हुआ। "जातक" के आधार पर मालूम पडता है कि ताम्रपर्णि द्वीप के साथ भारत के व्यापारिक सम्बन्ध बुद्ध-काल मे भी थे। परन्तु समुद्री मार्ग से ही आना जाना होता था, दक्षिण भारत मे होकर स्थलीय मार्ग से जाने का वहाँ भी उल्लेख नही है।

मज्झिम-निकाय के उपालि सुत्तन्त मे कलिगारण्य का उल्लेख है। दीघ-निकाय के महागोविन्द-सुत्त मे कलिग राज्य और उसकी राजधानी दन्तपुर का उल्लेख है और इसी प्रकार दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त तथा सयुत्त-निकाय के ओकिलिनी-सुत्त मे कलिग राजा के देश का उल्लेख आया है। कई जातक-कथाओ मे भी कलिग राज्य और उसकी राजधानी दन्तपुर का उल्लेख है। जातकट्ठकथा मे उत्कल (उक्कल) जनपद से मध्यदेश की ओर आते हुए दो व्यापारियो (तपस्सु और भल्लिक) का उल्लेख है। यद्यपि सोलह महाजनपदो की पालि सूची मे वग जनपद का उल्लेख नही है, परन्तु अगुत्तर-निकाय[२] मे एक अन्य जगह उसका उल्लेख है और इसी प्रकार खुद्दक-निकाय के ग्रन्थ महानिद्देस[३] मे भी। सयुत्त-निकाय के उदायि-सुत्त, सेदक-सुत्त और जनपद-सुत्त मे सुम्भ (सुह्म) जनपद का उल्लेख है, जिसे हम आधुनिक हजारीबाग और सथाल परगने के जिलो से मिला सकते है। इस प्रकार ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है

---

१. ६।४७ (हिन्दी अनुवाद)

२. जिल्द पहली, पृष्ठ २१३।

३. जिल्द पहली, पृष्ठ १५४; मिलाइयें मिलिन्दपञ्हो, पृष्ठ ३५१। (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

कि पूर्व में वंग और उसके नीचे सुह्म जनपद तो पालि परम्परा को विदित थे ही, सुह्म के नीचे उत्कल (उक्कल) और उससे भी नीचे महानदी और गोदावरी के बीच का प्रदेश, जो कलिंग कहलाता था, उसे विदित था। कलिग ठीक अन्धक राज्य के उत्तर में था, जिसके सम्बन्ध में पालि परम्परा की अभिज्ञता के सम्बन्ध में हम पहले कह चुके है।

जहाँ तक भारत या जम्बुद्वीप की पश्चिमी सीमा का सम्बन्ध है, पालि तिपिटक में 'अपरन्त' (अपरान्त) का वर्णन तो है ही, सुसन्धि जातक में भरुकच्छ (भड़ौंच) का स्पष्टतः उल्लेख है और रायस डेविड्स् के मतानुसार भरुकच्छ की ओर संकेत विनय-पिटक में भी है,[1] (यद्यपि स्पष्टतः भरुकच्छ नाग का निर्देश यहाँ नही आया है)। भगवान बुद्ध के कई शिष्य, जैसा हमें थेरगाथा की अट्ठकथा से विदित होता है, भरुकच्छ के निवासी थे। "उदान"[2] में सुप्पारक (वर्तमान सोपारा) का उल्लेख है। "अपदान"[3] मे सुरट्ठ, अपरन्तक और सुप्पारक जनपदो का उल्लेख है। दीघ-निकाय के महागोविन्द-सुत्त में सोवीर देश का वर्णन है और उसकी राजधानी रोरुक नामक नगरी बताई गई है। सूनापरान्त जनपद (कोणकन प्रान्त या ठाणा और सूरत जिलों के कतिपय अंश) बुद्ध के जीवन-काल में न केवल ज्ञात था, बल्कि बुद्ध-शिष्य स्थविर पूर्ण (जो वहाँ के निवासी थे और पहले व्यापारार्थ श्रावस्ती तक आते-जाते थे) वहाँ धर्म प्रचार करने के लिए भी गये थे, जिसका मज्झिम-निकाय के पुण्णोवाद-सुत्तन्त और संयुत्त-निकाय के पुण्ण-सुत्त मे उल्लेख है। सिन्धु-सोवीर देश के साथ व्यापारिक सम्बन्धों का उल्लेख हम तृतीय और पञ्चम परिच्छेदो मे करेंगे।

जम्बुद्वीप की उत्तर-पश्चिमी सीमा के सम्बन्ध में हमे यह जानना चाहिए कि गन्धार और कम्बोज नामक जनपद जम्बुद्वीप के सोलह महाजनपदो में सम्मिलित बताये गये है, जिसका आधुनिक तात्पर्य यह होगा कि अफगानिस्तान और कश्मीर का काफी भाग उस समय जम्बुद्वीप की सीमा के अन्तर्गत माना जाता था। जैसा

---

१. बुद्धिस्ट इण्डिया, पृष्ठ २३ (प्रथम भारतीय संस्करण, सितम्बर १९५०)
२. पृष्ठ ११ (हिन्दी अनुवाद)
३. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३५९।

पुक्कुसाति और महाकप्पिन की कथाओं से[१] तथा बुद्धकालीन व्यापारिक सम्बन्धों के विवरण से[२] स्पष्ट होगा, गन्धार और कम्बोज जनपद व्यापारिक सम्बन्धों द्वारा मध्यदेश और उसके श्रावस्ती नगर के साथ संयुक्त थे और बुद्ध की कीर्ति उनके जीवन-काल में ही इन जनपदों तक पहुँच चुकी थी, जहाँ से कुछ संवेगापन्न व्यक्ति उनके दर्शन करने मगध देश तक आये भी थे। पुक्कुसाति और महाकप्पिन के अलावा सुहेमन्त नामक एक अन्य बुद्ध-शिष्य स्थविर भी सीमान्त के निवासी थे। उत्तर-पश्चिम सीमा-प्रान्त के इन जनपदों के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क की यह परम्परा आगे भी चलती रही। अशोक के शिलालेखों में गन्धार (शिलालेख पञ्चम) और यवन (शिलालेख पञ्चम और त्रयोदश) जनपदों का तो उल्लेख है ही, उसने अपने तेरहवें शिलालेख में सिरिया के तत्कालीन राजा अन्तियोकस को अपना पड़ोसी राजा (प्रत्यन्त नरपति) बताया है। अतः यह निश्चित है कि अफगानिस्तान और बलोचिस्तान उसके राज्य में, जो उस समय जम्बुद्वीप कहलाता था, सम्मिलित थे। इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि बुद्धकालीन जम्बुद्वीप, जैसा कि वह पालि तिपिटक को ज्ञात था, उत्तर में हिमालय (हिमवा) से लेकर दक्षिण में समुद्र-तट तक (यद्यपि केवल गोदावरी के तट तक के स्पष्ट वर्णन निकायों में प्राप्त हैं और उससे परे दक्षिण भारत के साथ सम्पर्क के साक्ष्य केवल अशोक के युग में मिलते है) और पूर्व और दक्षिण-पूर्व में वंग, सुह्म, उत्कल और कलिंग से लेकर पश्चिम में सिन्धु-सोवीर और उत्तर-पश्चिम में अफगानिस्तान और कश्मीर तक फैला हुआ प्रदेश माना जाता था। कई विद्वानों ने पौराणिक जम्बुद्वीप का उल्लेख करते हुए उसके प्रभूत विस्तार का उल्लेख किया है। इस प्रकार डा० काशीप्रसाद जायसवाल ने पौराणिक जम्बुद्वीप को समग्र एशिया से मिलाया है।[३] डा० हेमचन्द्र रायचौधरी ने भी उसके विस्तृत रूप का उल्लेख किया है।[४] इसी प्रकार सुरेन्द्रनाथ मजूमदार ने पौराणिक

१. देखिये आगे तृतीय परिच्छेद में गन्धार और कम्बोज जनपदों का विवरण।
२. देखिये आगे पाँचवाँ परिच्छेद।
३. इण्डियन एण्टीक्वेरी, जिल्द बासठवीं, पृष्ठ १७०।
४. स्टडीज इन इण्डियन एंटिक्विटीज, पृष्ठ ७१।

जम्बुद्वीप के अगभूत भारतवर्ष के नव खण्डो को बृहत्तर भारत के नव खण्ड बताने का प्रयत्न किया है और उसके केवल एक खण्ड या द्वीप (कुमारी द्वीप) को ही वास्तविक भारत देश माना है।[१] हमे यह ध्यान रखना चाहिए कि इस अति विस्तृत पौराणिक जम्बुद्वीप का पालि तिपिटक के जम्बुद्वीप से कोई सम्बन्ध नही है। पालि परम्परा के जम्बुद्वीप की सीमाये भारतीय उप-महाद्वीप के रूप मे अत्यन्त सुनिश्चित है, जिनका उल्लेख हम ऊपर कर चुके है।

जम्बुद्वीप के आकार के सम्बन्ध मे पालि तिपिटक मे जो वर्णन मिलता है, उससे यह स्पष्ट होता है कि जम्बुद्वीप के दक्षिण मे समुद्र-तट तक का ज्ञान बुद्ध के जीवन-काल मे लोगो को था। दीघ-निकाय के महागोविन्द-सुत्त मे "महापठवी" जिससे वहाँ जम्बुद्वीप से तात्पर्य है, उत्तर की ओर चौडी या विस्तृत (आयत) और दक्षिण की ओर बैलगाडी (शकट) के अग्र भाग (मुख) की शक्ल की कही गई है। "उत्तरेण आयत दक्खिणेन सकटमुख"। जम्बुद्वीप के रूप मे भारत के आकार का भौगोलिक दृष्टि से कितना सही वर्णन है! जम्बुद्वीप, जो उत्तर मे गन्धार-कश्मीर से लेकर असम तक फैले हिमालय के कारण "आयत" है और दक्षिण मे कुमारी अन्तरीप, जो पहले के समान आज भी "शकट मुख" है। यहाँ यह कह देना अनावश्यक न होगा कि पालि परम्परा का अनुसरण करते हुए ही यूआन् चुआड ने सातवी शताब्दी ईसवी मे जम्बुद्वीप को अर्द्ध चन्द्र या "इन्दुकला" के आकार का बताया था,[२] अर्द्ध चन्द्र, जिसका व्यास उत्तर की ओर है और अर्द्धवृत्त दक्षिण की ओर। इसी प्रकार एक दूसरे चीनी लेखक ने, जिसने "फह-के-लि-तु" नामक ग्रन्थ लिखा है, भारत देश के आकार को उत्तर मे चौडा और दक्षिण मे सँकरा बताया है और

---

१. देखिये उनके द्वारा सम्पादित कनिंघम की "एन्शियण्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया" परिशिष्ट प्रथम, पृष्ठ ७४५-७५४; मिलाइये लाहा: इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्स्ट्स ऑव बुद्धिज्म एन्ड जैनिज्म, पृष्ठ १७; ज्योग्रेफीकल ऐसेज, पृष्ठ १२०।

२. बील: बुद्धिस्ट रिकार्ड्स् ऑव दि वेस्टर्न वर्ल्ड, जिल्द पहली, पृष्ठ ७०; वाटर्स: औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ १४०।

विनोदपूर्वक कहा है "इस देश के निवासियों के मुख भी उसी शक्ल के हैं जिस शक्ल का उनका देश है"[१]।

जम्बुद्वीप के सम्बन्ध में पालि विवरणों में कहा गया है कि उसमें चौरासी हजार नगर हैं।[२] इसे हम एक मोटी संख्या मात्र मान सकते हैं। दीपवंस[३] और महावंस[४] में कहा गया है कि अशोक ने इनमें से प्रत्येक मे एक बौद्ध विहार बनवाया। अंगुत्तर-निकाय[५] में भगवान् बुद्ध ने जम्बुद्वीप के लोगों की प्रशंसा करते हुए कहा है कि वे साहस, मानसिक जागरूकता और धार्मिक जीवन, इन तीन बातों में उत्तरकुरु और तावतिंस लोक के मनुष्यों से श्रेष्ठ होते है। कथावत्थु[६] मे भी उनके आचरण की प्रशंसा की गई है। जम्बुद्वीप के सम्बन्ध मे भगवान् ने एक भविष्यवाणी भी की थी। दीघ-निकाय के चक्कवत्ति-सीहनाद-सुत्त का उपदेश देते समय उन्होंने कहा था कि जिस समय भगवान् मेत्तेय (मैत्रेय) बुद्ध का आविर्भाव होगा, उस समय "यह जम्बुद्वीप सम्पन्न और समृद्ध होगा। ग्राम, निगम, जनपद, और राजधानी इतने संनिकट होंगे कि एक मुर्गी भी कूद कर एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँच जाय। सरकडे के वन की तरह जम्बुद्वीप मनुष्यों की आबादी से भर जायगा।" काकाति जातक में जम्बुदीप समुद्द (जम्बुद्वीप समुद्र) का उल्लेख है और कहा गया है कि उसके परे केबुक नामक नदी है,[७] जिसकी आधुनिक पहचान आज तक कोई विद्वान् नही कर सका है।

अब हम शेष तीन महाद्वीपों के विवरण पर आते है। पालि परम्परा के अनुसार चक्रवर्ती राजा चारो महाद्वीपों पर राज्य करता है। पहले वह पूर्व दिशा

---

१. देखिये कनिंघम: एन्शियण्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ १२-१३।

२. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ ८४; सुत्त-निपात की अट्ठकथा (परमत्थजोतिका), जिल्द पहली, पृष्ठ ५९; मिलाइये चक्कवत्ति-सीहनाद-सुत्त (दीघ० ३।३)

३. पृष्ठ ४९।

४. ५।१७६ (हिन्दी अनुवाद); मिलाइये महाबोधिवंस, पृष्ठ १०२।

५. जिल्द चौथी, पृष्ठ ३९६।

६. पृष्ठ ९९।

७. जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ९१।

में पुब्बविदेह (पूर्वविदेह) की विजय करता है, उसके बाद दक्षिण दिशा में जम्बुद्वीप पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् वह पश्चिम में अपरगोयान और उत्तर में उत्तरकुरु की विजय-यात्रा के लिये प्रस्थान करता है।[१] अत्यन्त अज्ञात प्राचीन काल में, बल्कि कहना चाहिए कि प्रथम कल्प में ही (पठमकप्पे) चक्रवर्ती राजा मन्धाता (सं० मान्धाता) ने इसी क्रम से चारों महाद्वीपों की दिग्विजय की थी। संसार विजय करने के पश्चात् राजा मान्धाता जम्बुद्वीप में आये। उनके साथ शेष तीन महाद्वीपों से भी कुछ लोग चले आये, जो यहीं जम्बुद्वीप में बस गये। पुब्बविदेह से आने वाले लोग जिस प्रदेश में बसे, उसका नाम उन्हीं के नाम पर विदेह रट्ठ (विदेह राष्ट्र) पड़ गया। इसी प्रकार उत्तरकुरु और अपरगोयान से आने वाले लोग जिन स्थानों पर बसे, उनके नाम क्रमशः कुरु रट्ठ (कुरु राष्ट्र) और अपरन्त रट्ठं (अपरान्त राष्ट्र) पड़ गये।[२]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि पूर्व-विदेह के लोगो ने भारत के विदेह राष्ट्र को बसाया। पूर्व-विदेह महाद्वीप कहाँ था, इसके सम्बन्ध में इसके अतिरिक्त पालि विवरणों में और कोई सूचना नही मिलती कि वह सुमेरु पर्वत के पूर्व में स्थित था। उत्तरकालीन पुराणों में इसे पूर्व द्वीप के नाम से पुकारा गया है, जिसे आधार मानकर डा० हेमचन्द्र रायचौधरी ने इसे वर्तमान पूर्वी तुर्किस्तान या उत्तरी चीन बताने का प्रयत्न किया है।[३] पालि विवरणों में इसके विपरीत जाने वाली कोई बात दिखाई नहीं पड़ती।

---

१. महाबोधिवंस, पृष्ठ ७३-७४, बुद्धवंस-अट्ठकथा, पृष्ठ ११३।

२. सुमंगल विलासिनी, जिल्द दूसरी पृष्ठ ४८२; पपञ्चसूदनी जिल्द पहली, पृष्ठ ४८४; मिलाइये दिव्यावदान, पृष्ठ २१५-२१६ (मान्धातावदानम्)। मन्धातु जातक में चक्रवर्ती राजा मान्धाता की विजयों और उसकी अतृप्त अभिलाषाओं का वर्णन है। ऋग्वेद और शतपथ-ब्राह्मण में भी मान्धाता का उल्लेख है, जिसके लिए देखिये वैदिक इंडेक्स, जिल्द दूसरी पृष्ठ १३२-१३३। मान्धाता सम्बन्धी पौराणिक विवरणों के लिए देखिये पार्जिटर : एन्शियन्ट इण्डियन हिस्टोरिकल ट्रेडीशन, पृष्ठ २६।

३. स्टडीज इन इण्डियन एंटिक्विटीज, पृष्ठ ७५-७६।

उत्तरकुरु महाद्वीप के सम्बन्ध में जो सूचना हमें पालि विवरणों में मिलती है, वह इतने पौराणिक ढंग की है कि उसकी आधुनिक पहचान करने में हमारी अधिक सहायता नहीं करती। दीघ-निकाय के आटानाटिय-सुत्त में उत्तर-कुरु का विस्तृत विवरण हमें पौराणिक भाषा में मिलता है। उत्तरकुरु के लोगों के बारे मे कहा गया है कि वे व्यक्तिगत सम्पत्ति नही रखते और न उनके अपनी अलग-अलग पत्नियाँ होती है। उन्हें अपने जीवन-निर्वाह के लिए परिश्रम नहीं करना पड़ता और अनाज अपने आप उग आता है। वहाँ के आदमियों का जीवन निश्चिन्त और सुखमय है। उनके राजा का नाम कुबेर है, जिसका दूसरा नाम वेस्सवण भी है, क्योंकि उसकी राजधानी का नाम विसाण है। उत्तरकुरु के प्रसिद्ध नगरों के नाम है, आटानाटा, कुसिनाटा, नाटापुरिया, परकुसिनाटा, कपीवन्ता, जनोघ, नवनतिया, अम्बर, अम्बखतिय और आलकमन्दा। उत्तरकुरु के निवासी यक्ष (यक्ख) कहे गये है। उनके देश मे एक झील भी है, जिसका नाम धरणी है। इन लोगों का मगलवती नामक एक विशाल भवन है, जहाँ वे अपनी सभाएँ करते हैं। अगुत्तर-निकाय और मज्झिम-निकाय की अट्ठकथाओं[1] में कहा गया है कि उत्तर-कुरु मे एक कप्परुक्ख (कल्प वृक्ष) है, जो एक कल्प पर्यन्त रहता है। एक अन्य विवरण के अनुसार इस देश के निवासियों के घर नही होते और वे भूमि पर सोते हैं। इसलिये वे "भूमिसया" अर्थात् भूमि पर शयन करने वाले कहलाते हैं।[2] कहा गया है कि वे निर्लोभ (अममा) होते हैं, उनमें सम्पत्ति का परिग्रह नहीं होता (अप्परिग्गहा), उनकी आयु नियत होती है (नियतायुका) और वे विशेष सोजन्य से युक्त होते है (विसेसभुनो)। बौद्ध सस्कृत ग्रन्थ 'दिव्यावदान' (पृष्ठ २१५) में भी प्राय: इन बातों को दुहराया गया है। उपर्युक्त बातों में उत्तरकुरु के लोग संस्कृत और पालि दोनों ही परम्पराओं में जम्बुद्वीप तथा अन्य महाद्वीपों के लोगो से श्रेष्ठ बताये गये है। आचार्य बुद्धघोष ने कहा है—"उत्तर-कुरु के मनुष्य प्राकृतिक शील के कारण सदाचार-नियमों को भंग नहीं करते"।

---

१. मनोरथपूरणी (अंगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा), जिल्द पहली, पृष्ठ २६४; पपञ्चसूदनी (मज्झिम-निकाय की अट्ठकथा), जिल्द दूसरी, पृष्ठ ९४८।

२. थेरगाथा-अट्ठकथा, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १८७-१८८।

"उत्तरकुरुकानं मनुस्सानं अवीतिक्कमो पकतिसीलं।"[1] दूसरे देशों के लोगों के लिए सदाचार के नियम उनके परम्परागत रीति-रिवाजों और स्थानीय विश्वासों पर आधारित होते हैं, परन्तु उत्तरकुरु के मनुष्य स्वाभाविक रूप से ही शीलवान् होते हैं, यही आचार्य बुद्धघोष को यहाँ कहना है। इस प्रकार पालि विवरण के अनुसार उत्तरकुरु के मनुष्य प्रारम्भिक युग के सरल और नैसर्गिक रूप से शीलवान् मनुष्य थे, जो व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं रखते थे, सादा और सुखी जीवन बिताते थे और जो स्वस्थ और चिरंजीवी होते थे।

पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं में उत्तरकुरु द्वीप के सम्बन्ध में अनेक निश्चित विवरण भी मिलते हैं, जिनसे विदित होता है कि वह एक दूरस्थ किन्तु निश्चित देश के रूप में बुद्ध और उनके शिष्यों को विदित था। सोणनन्द जातक में उसे स्पष्टतः हिमालय के उत्तर में स्थित बताया गया है। भगवान् बुद्ध अनेक बार उत्तरकुरु में भिक्षाचर्या करने के लिए गये, ऐसा उल्लेख है। विनय-पिटक में कहा गया है कि तीन जटिल साधुओं को बुद्ध-धर्म में विनीत करने के लिए जब भगवान् उरुवेला में गये तो उस समय उरुवेल काश्यप एक महान् यज्ञ कर रहा था और उसकी आन्तरिक इच्छा यह थी कि महाश्रमण बुद्ध वहाँ उस समय न रहें, क्योंकि इससे उसे अपनी प्रतिष्ठा जाने का भय था। उसकी यह इच्छा देखकर भगवान् उत्तरकुरु चले गये, जहाँ उन्होंने भिक्षा की और अनोतत्त दह (मानसरोवर) पर भोजन कर वहीं दिन का विहार किया।[2] भगवान् बुद्ध ही नहीं, अन्य अनेक भिक्षु भी उत्तरकुरु गये, ऐसे अनेक वर्णन मिलते हैं।[3] एक बार जब वेरंजा में अकाल पड़ा तो स्थविर महामोग्गल्लान ने भगवान् से प्रार्थना की कि वे

---

१. विसुद्धिमग्ग १।४१।

२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ९१; मिलाइये धम्मपदट्ठकथा, जिल्द तीसरी, पृष्ठ २२२; अट्ठसालिनी, पृष्ठ १४ (देवनागरी संस्करण); महावंस १।१८ (हिन्दी अनुवाद)।

३. देखिये जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ३१६; जिल्द छठी, पृष्ठ १००; पपञ्चसूदनी, जिल्द पहली, पृष्ठ ३४०; परमत्थजोतिका (सुत्त-निपात की अट्ठकथा) जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४२०।

उत्तरकुरु म-चल। "साधु भन्ते, सब्बो भिक्खुसंघो उत्तरकुरुं पिण्डाय गच्छेय्याति।"[१] दीर्घायु उपासक के पिता राजगृहवासी जोतिक (ज्योतिष्क) की पत्नी उत्तरकुरु की बताई गई है।[२] अनोतत्त दह पर अशोक के काल तक स्थविरों के आने के उदाहरण मिलते हैं।[३]

ज़िमर ने उत्तरकुरु को कश्मीर बताया है[४]। परन्तु यह बात पालि साहित्य में निर्दिष्ट उत्तरकुरु के सम्बन्ध में ठीक नहीं जान पड़ती। जैसा हम पहले देख चुके हैं, पालि विवरणों में उत्तरकुरु को सुमेरु पर्वत के उत्तर में बताया गया है और कहा गया है कि वह समुद्र से घिरा है। यह बात कश्मीर के सम्बन्ध में ठीक नहीं बैठती। ऐतरेय-ब्राह्मण (८।१४।४) में कहा गया है कि उत्तरकुरु हिमालय के परे है। "परेण हिमवन्तं" और वाल्मीकि-रामायण (४।४३, ५६) में कहा गया है कि उसके उत्तर में समुद्र है "उत्तरः पयसां निधिः"। ये दोनों बातें पालि विवरण से मेल खाती हैं। जिस समुद्र से उत्तरकुरु घिरा है उसे हम आर्कटिक महासागर ही मान सकते हैं। इस प्रकार डा० काशीप्रसाद जायसवाल ने जो उत्तरकुरु को वर्तमान साइबेरिया से मिलाया है[५], उसे हम ठीक मान सकते हैं। इसी प्रकार का मत डा० हेमचन्द्र रायचौधरी का भी है।[६] डा० मललसेकर का कहना है कि पालि का उत्तरकुरु प्रायः ऋग्वेद के उत्तरकुरु के समान ही है।[७] अतः हम उपर्युक्त पहचान को आसानी से प्रामाणिक मान सकते

---

१. विनयपिटक, पाराजिक पालि, पृष्ठ १० (भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित)।

२. धम्मपदट्ठकथा, जिल्द चौथी, पृष्ठ २०९।

३. समन्तपासादिका, जिल्द पहली, पृष्ठ ४२; महावंस ५।२४ (हिन्दी-अनुवाद); मिलाइये दिव्यावदान, पृष्ठ ३९९; वाटर्स: औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रैविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३५।

४. देखिये वैदिक इण्डेक्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ८४।

५. इण्डियन एंटिक्वेरी, जिल्द बासठ, पृष्ठ १७०।

६. स्टडीज़ इन इण्डियन एंटिक्विटीज़, पृष्ठ ७१।

७. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ३५६।

हैं। बल्कि कुछ बातें तो इस पहचान की आश्चर्यजनक रूप से विचारोत्तेजक ही हैं। पालि विवरणों में उत्तरकुरु के लोगों को लोभ और व्यक्तिगत सम्पत्ति से मुक्त बताया गया है। उन्हें स्वस्थ, निश्चिन्त और चिरायु बताया गया है और उनके नैसर्गिक शील की प्रशंसा की गई है। इससे तो यही प्रकट होता है कि उत्तर-कुरु के लोगों में एक प्रकार का प्रारम्भिक साम्यवादी समाज प्रचलित था। क्या वे सचमुच आधुनिक साइबेरिया के लोगों के पूर्वज थे?

अपरगोयान, जैसा हम पहले कह चुके हैं, सुमेरु पर्वत के पश्चिम में स्थित था। इसके निवासियों के सम्बन्ध में भी यह कहा गया है कि उनके घर नहीं होते और वे भूमि पर शयन करते हैं।[1] "अपरगोयान" का चीनी रूपान्तर यूआन् चुआङ ने "निउ-हुओ" किया है, जिसका एक सस्कृत प्रतिरूप "अपरगोधन" "अपरगोदान" या "अपरगोधान" भी होता है, जिससे यह निष्कर्ष निकाला गया है कि इस देश में सम्भवतः गाय ही विनिमय का साधन मानी जाती थी।[2] डा० रायचौधरी ने अपरगोयान को वर्तमान पश्चिमी तुर्किस्तान से मिलाया है[3], जिससे हम सहमत हो सकते है।

अब हम जम्बुद्वीप के प्रादेशिक विभाग पर आते हैं। पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं में हमें जम्बुद्वीप के प्रायः तीन प्रकार के प्रादेशिक विभाजन मिलते हैं। पहला विभाजन सोलह महाजनपदों के रूप में है, जिसका विवेचन हम तीसरे परिच्छेद में करेंगे। दूसरा विभाजन तीन मंडलों के रूप में है, जिनके नाम हैं, महामंडल, मज्झिम मंडल, और अन्तिम मंडल या अन्तो मंडल। यह विभाजन भिक्षुओं की चारिकाओं की सुविधा के लिए किया गया था, जिसका अनुगमन स्वयं भगवान् बुद्ध भी करते थे। किस समय प्रारम्भ करके कितने दिनों में उक्त तीनों प्रदेशों की यात्रा समाप्त करनी चाहिए, इसका पूरा विवरण दिया गया है। समन्तपासादिका में कहा गया है कि भगवान् महापवारणा (आश्विन पूर्णिमा)

---

१. थेरगाथा-अट्ठकथा, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १८७-१८८।

२. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३३।

३. स्टडीज इन इण्डियन एंटिक्विटीज, पृष्ठ ७५।

के दिन निकल कर महामंडल के ग्राम, निगमों आदि में चारिका करते हुए नौ मास में अपनी यात्रा को समाप्त करते थे। महामंडल का विस्तार यहाँ ९०० योजन दिया गया है। मज्झिम मंडल, जिसे ही मध्य देश कहा जाता है, विस्तार में ६०० योजन था और इसकी यात्रा में भी भगवान् को नौ मास ही लगते थे। अन्तिम मंडल या अन्तो मंडल का विस्तार ३०० योजन था और इस मंडल की यात्रा करने में भगवान् को केवल सात मास लगते थे।[१] बाद के साहित्य में पाचीन, अवन्ती और दक्खिणापथ, इन तीन मण्डलों का भी उल्लेख मिलता है। तीसरा विभाजन, जो हमें पालि साहित्य में मिलता है, जम्बुद्वीप के पाँच प्रदेशों के रूप में है, यथा, (१) मज्झिम देस, (२) पुब्ब, पुब्बन्त, पाचीन या पुरत्थिम देस, (३) उत्तरापथ, (४) अपरन्त (सं० अपरान्त), और (५) दक्खिणापथ। यद्यपि पालि तिपिटक या उसकी अट्ठकथाओं में इस विभाजन का स्पष्टतः उल्लेख नहीं है, परन्तु बौद्ध परम्परा को यह विभाजन आदि से ही ज्ञात था और उसने इसका आश्रय लिया है, यह इस बात से ज्ञात होता है कि बीच के प्रदेश को उसने मज्झिम देस (मध्यदेश) कहकर पुकारा है और बाकी चार दिशाओं के अनुसार शेष प्रान्तों को क्रमशः पुब्ब या पाचीन (पूर्व), उत्तरापथ (उत्तर), अपरन्त (पश्चिम) और दक्खिणापथ (दक्षिण) कहकर पुकारा है। यह कहना यहाँ अप्रासंगिक न होगा कि चीनी यात्रियों की परम्परा में जो भारत के पाँच प्रदेशों अर्थात् उत्तरी, पश्चिमी, मध्य, पूर्वी और दक्षिणी भारत का उल्लेख किया गया है,[२] और जिसका अनुगमन यूआन् चुआङ् ने भी अपने यात्रा-विवरण में किया है,[३] वह सम्भवतः इसी बौद्ध परम्परा पर आधारित है। भारतीय साहित्य के अन्य अंगों में भी उपर्युक्त पाँच प्रकार के वर्गीकरण का उल्लेख पाया जाता है।[४] चूंकि बुद्ध-

---

१. समन्तपासादिका, जिल्द पहली, पृष्ठ १९७।

२. देखिये कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ११-१४।

३. देखिये बील : बुद्धिस्ट रिकार्डस् ऑव दि वैस्टर्न वर्ल्ड, जिल्द पहली, पृष्ठ ७०; वाटर्स : औन् यआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ १४०।

४. अथर्ववेद (३।२७, ४।४०, १२।३ और १९।१७) में इस विभाजन की स्वीकृति है और शतपथ-ब्राह्मण (१।७।३।८) में 'प्राच्य' तथा वहीं ११।४।१।

कालीन भूगोल के विवेचन में यह विभाजन ही सर्वाधिक वैज्ञानिक है, अतः हम यहाँ इसका ही आश्रय लेंगे।

पालि तिपिटक में मज्झिम देस को जम्बुद्वीप का सर्वश्रेष्ठ प्रदेश बताया गया है। जम्बुद्वीप में जन्म लेने का संकल्प करने के पश्चात् बोधिसत्व उसके प्रदेशों के विषय में सोचते हुए मध्यम देश को ही अपनी जन्मभूमि के रूप में चुनते हैं। "किस प्रदेश में बुद्ध जन्म लेते हैं, इस पर विचार करते हुए उन्होंने मध्यम देश

में 'उदीच्य' का उल्लेख है। परन्तु इसका स्पष्टतम निर्देश तो ऐतरेय-ब्राह्मण (८।१४) में ही है, जहाँ स्पष्टतः प्राच्या (पूर्वी), दक्षिणा (दक्षिणी), प्रतीची (पश्चिमी), उदीची (उत्तरी) और ध्रुवा मध्यमा दिक्, ("अस्यां ध्रुवायां मध्यमायां प्रतिष्ठायां दिशि") इन पाँच दिकों या दिशाओं के रूप में भारत के प्रदेशों का विभाजन किया गया है। देखिए वैदिक इण्डेक्स जिल्द दूसरी, पृष्ठ १२५-१२७। पुराणों के भुवन-कोश में सामान्यतः ये पाँच प्रदेश गिनाये गये हैं, मध्यदेश, उदीच्य, प्राच्य, दक्षिणापथ और अपरान्त। मार्कण्डेय पुराण में इनके अलावा दो और का उल्लेख किया गया है, यथा विन्ध्य और पर्वताश्रयी। महाभारत के भीष्म-पर्व में इन पाँच प्रदेशों का उल्लेख है, जैसे कि, प्राच्य, उदीच्य, दक्षिण, अपरान्त और पार्वतीय। राजशेखर-कृत "काव्यमीमांसा" (दसवीं शताब्दी ईसवी) में भारत के इन पाँच प्रदेशों का उल्लेख है, जैसे कि पूर्व-देश, दक्षिणापथ, पश्चाद्देश, उत्तरापथ और अन्तर्वेदी। (पृष्ठ ९३)। इनकी सीमाओं का उल्लेख भी यहाँ किया गया है, जिनके तुलनात्मक महत्व का उपयोग हम आगे अपने अध्ययन में करेंगे। यूआन् चुआङ ने अपने यात्रा-विवरण में मध्यवर्ती देश के लिये आर्यावर्त या अन्तर्वेदी शब्द का प्रयोग न कर मध्यदेश (पालि के मज्झिम देश) का ही प्रयोग किया है। देखिये वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ १३२, १५६, ३४२। इससे यह स्पष्ट होता है कि चीनी परम्परा ने अपने भारत के पाँच विभागों के वर्गीकरण को बौद्ध परम्परा से ही लिया है। यूआन् चुआङ के मध्यदेश की सीमा पालि के मज्झिम देस की सीमाओं से अधिक मेल खाती है, अपेक्षाकृत मनु० २।२१ के मध्यदेश से, जिसके विवेचन के लिये देखिये आगे मज्झिम देस की सीमाओं का विवेचन।

को देखा।"[1] विनय-पिटक के महावग्ग में मध्यम देश की सीमाओं का स्पष्ट उल्लेख है,[2] जिसका अक्षरशः उद्धरण देते हुए जातकट्ठकथा में कहा गया है, "मध्यम देश की पूर्व दिशा में कजंगल नामक कस्बा है। उसके बाद बड़े शाल के वन हैं और फिर आगे सीमान्त प्रदेश। पूर्व-दक्षिण में सललवती नामक नदी है, उसके आगे सीमान्त देश। दक्षिण दिशा में सेतकण्णिक नामक कस्बा है, उसके बाद सीमान्त देश। पश्चिम दिशा में थूण नामक ब्राह्मण-ग्राम है, उसके बाद सीमान्त देश। उत्तर दिशा में उशीरध्वज नामक पर्वत है, उसके बाद सीमान्त देश।"[3] इस विवरण

---

१. कतरस्मि नु खो पदेसे बुद्धा निब्बत्तन्तीति ओकासम्पि विलोकेन्तो मज्झिमं देसं पस्सि। जातकट्ठकथा, पठमो भागो, पृष्ठ ३८ (भारतीय ज्ञानपीठ, काशी)। मिलाइये "बोधिसत्वा मध्यमेष्वेव जनपदेषूपपद्यन्ते।" ललितविस्तर, पृष्ठ १९;- देखिये अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता, पृष्ठ ३३६ भी (बिबलियोथेका इण्डिका)।

२. देखिये विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २१३।

३. जातक, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ६४ (हिन्दी अनुवाद)। मूल पालि इस प्रकार है "मज्झिमदेसो नाम पुरत्थिमदिसाय कजंगलं नाम निगमो, तस्स अपरेन महासाला, ततो परं पच्चन्तिमा जनपदा ओरतो मज्झे, पुब्बदक्खिणाय दिसाय सललवती नाम नदी, ततो परं पच्चन्तिमा जनपदा ओरतो मज्झे, दक्खिणाय दिसाय सेतकण्णिकं नाम निगमो, ततो परं पच्चन्तिमा जनपदा ओरतो मज्झे, पच्छिमाय दिसाय थूनं नाम ब्राह्मणगामो, ततो परं पच्चन्तिमा जनपदा ओरतो मज्झे, उत्तराय दिसाय उसीरद्धजो नाम पब्बतो, ततो परं पच्चन्तिमा जनपदा ओरतो मज्झे ति।" जातकट्ठकथा, पठमो भागो, पृष्ठ ३८-३९ (भारतीय ज्ञानपीठ, काशी)। पालि तिपिटक के मज्झिम देस की सीमाओं का तुलनात्मक अध्ययन विशेषतः मनुस्मृति के "मध्य देश" और उत्तरकालीन काव्यमीमांसा के "अन्तर्वेदी" से किया जा सकता है। मनु०। २।२१ में मध्यदेश की सीमाओं का उल्लेख इस प्रकार किया गया है "हिमवद् विन्ध्ययोर्मध्यं यत् प्राग् विनशनादपि। प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः।" काव्यमीमांसा (पृष्ठ ९३) में अन्तर्वेदी प्रदेश की सीमाओं का उल्लेख इस प्रकार किया गया है "तत्र वाराणस्याः परतः पूर्वदेशः, माहिष्मत्याः परतः दक्षिणापथः, देवसभायाः परतः पश्चाद्देशः, पृथूदकात् परतः उत्तरापथः।

से स्पष्ट है कि बुद्ध के जीवन-काल में मध्य देश की पूर्वी सीमा कजंगल नामक कस्बे तक मानी जाती थी। दीघ-निकाय की अट्ठकथा (सुमंगलविलासिनी)[1] में भी इस बात का समर्थन है और कुछ जातकों[2] मे भी। भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में कजगल एक धन-धान्य-सुलभ (दब्बसम्भारसुलभा) समृद्ध कस्बा था और सुन्दर कुश के लिए प्रसिद्ध था।[3] कजगल में एक वेणुवन या सुवेणुवन नामक सुरम्य स्थान था और एक दूसरा वन भी जिसका नाम मुखेलुवन था। कजंगल के वेणुवन मे जब भगवान् निवास कर रहे थे, तभी कजंगल के निवासी कुछ उपासको ने भिक्षुणी कजगला से कुछ प्रश्न पूछे थे जिनके उत्तरो की भगवान् ने स्वय अपने मुख से अगुत्तर-निकाय के कजगला-सुत्त मे प्रशसा की है।[4] मज्झिम-निकाय के इन्द्रिय-भावना-सुत्त का उपदेश भगवान् ने कजगल के मुखेलुवन मे दिया था, जिसका एक पाठान्तर सुवेणुवन भी है।[5] मिलिन्दपञ्हो में कजगल को एक ब्राह्मण-ग्राम कहा गया है।[6] बौद्ध सस्कृत ग्रन्थ "अवदानशतक"[7] में कजगल का नाम "कचगला" दिया गया है।

विनशनप्रयागयोश्च गंगायमुनयोश्च अन्तरम् अन्तर्वेदी।" इस प्रकार ज्ञात होगा कि मनुस्मृति और काव्यमीमांसा मे मध्यदेश या अन्तर्वेदी प्रदेश की पूर्वी सीमा क्रमशः प्रयाग और वाराणसी बताई गई हैं, जब कि पालि परम्परा में उसे मगध के कजंगल नामक निगम तक बताया गया है, जिसके सांस्कृतिक अभिप्राय के लिये देखिये आगे का विवेचन।

१. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४२९।

२. जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ २२६, २२७; जिल्द चौथी, पृष्ठ ३१०।

३. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ ३१०।

४. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ५४; महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने इस सुत्त का अनुवाद बुद्धचर्या, पृष्ठ २७१-२७२ में किया है।

५. मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ६०७।

६. कजंगलं नाम ब्राह्मणगामो। मिलिन्दपञ्हो, पृष्ठ ९ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)

७. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४१।

कजंगल की यात्रा करने के लिए चीनी यात्री यूआन् चुआङ सातवीं शताब्दी ईसवी में गया था। उसने उसे चम्पा के पूर्व में ४०० 'ली' अर्थात् करीब ६७ मील की दूरी पर अवस्थित देखा था और उसके नाम का चीनी रूपान्तर उसने "क-चु-वेन्-कि-लो"[1] अथवा "कि-चु-खि-लो"[2] किया है। उन्नीसवीं शताब्दी में पालि ग्रन्थों का प्रकाशन और अनुवाद प्रायः नहीं के बराबर हुआ था, अतः उसके ज्ञान के अभाव में फ्रैञ्च विद्वान् एम० स्टेनिसलेस जुलियन ने यूआन् चुआङ के "क-चु-वेन्-कि-लो" या कि-चु-खि-लो" का संस्कृत रूपान्तर "किजुघिर" किया था, जिसका अनुगमन कनिंघम ने भी किया।[3] परन्तु यह गलत है। आज हम कह सकते हैं कि यूआन् चुआङ ने जिस "क-चु-वेन्-कि-लो" या "कि-चु खि-लो" को देखा था, वह बुद्धकालीन "कजगल" ही था।[4] कनिंघम ने यूआन् चुआङ के "क-चु-वेन्-कि-लो" या "कि-चु-खि-लो" की पहचान वर्तमान कंकजोल नामक स्थान से की है,[5] जो राजमहल से अठारह मील दक्षिण में बिहार राज्य के जिला संथाल परगना में है। बुद्धकालीन कजंगल भी यही स्थान है। महापंडित राहुल सांकृत्यायन[6] ने कनिंघम की इस पहचान को स्वीकार किया है।

---

१. थॉमस वाटर्स के अनुसार, औन् युआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १८२।

२. एम० जुलियन और कनिंघम के अनुसार, देखिए एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इन्डिया, पृष्ठ ५४८।

३. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ दस (भूमिका-सुरेन्द्रनाथ मजूमदार-लिखित); पृष्ठ ७२३ "नोट्स" (सुरेन्द्रनाथ मजूमदार-लिखित); देखिये वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १८३।

४. देखिये वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी पृष्ठ १८३

५. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५४८-५४९।

६. बुद्धचर्या, पृष्ठ २७१; विनय-पिटक (हिन्दी-अनुवाद), पृष्ठ २१३, पद-संकेत १।

मध्य देश के दक्षिण-पूर्व में सललवती नामक नदी बहती थी। इस नदी का वर्तमान नाम सिलई है, जो हजारीबाग और मेदिनीपुर जिलों में होकर बहती है।[१]

मज्झिम देस की पूर्वी सीमा जो कजंगल नामक कस्बे तक पालि तिपिटक के प्राचीनतम अंश विनय-पिटक के महावग्ग में बतायी गयी है, उसमें आर्य संस्कृति के प्रसार की एक कथा निहित है। वह एक ऐसी छिपी हुई कहानी को कहती है जिसका पूरा सांस्कृतिक मर्म अभी नहीं समझा गया है। जैसा हम अभी देख चुके है, कजगल मध्य-देश की पूर्वी सीमा पर स्थित था। यद्यपि मललसेकर और लाहा ने इस बात का उल्लेख नही किया है कि कजंगल निगम किस जनपद में था, परन्तु महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने मज्झिम-निकाय के हिन्दी-अनुवाद के आरम्भ में जो मानचित्र दिया है, उसमें उन्होंने कजंगल को सुह्म जनपद में दिखाया है, जो बिलकुल ठीक जान पड़ता है। कजंगल अंग-मगध के पूर्व में, सुह्म जनपद में, स्थित था। इसका अर्थ यह है कि पालि तिपिटक में मध्यदेश की जो पूर्वी सीमा निश्चित की गई है, उसमें मगध (पटना और गया जिलों) को भी सम्मिलित कर लिया गया है। भारतीय इतिहास के लिए यह एक सर्वथा नई और युगान्तकारी घटना उस समय थी। ऋग्वेद की एक ऋचा (३।५३।१४)

---

१. मिलाइये राहुल सांकृत्यायन : विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २१३, पद-संकेत २; बुद्धचर्या, पृष्ठ १, पद-संकेत ३; पृष्ठ ३७२, पद-संकेत ४; पृष्ठ ५६७। डा० लाहा के अनुसार भी इस नदी की यही आधुनिक पहचान है, परन्तु एक दूसरा विकल्प उपस्थित करते हुए उन्होंने सललवती को वर्तमान सुवर्ण-रेखा या स्वर्णरेखा नदी से मिलाने का भी सुझाव दिया है, जो मानभूम और मेदिनीपुर जिलों में होकर बहती है। देखिये उनका "इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्स्ट्स ऑव बुद्धिज्म एण्ड जैनिज्म", पृष्ठ ५९। सुरेन्द्रनाथ मजूमदार (देखिये उनके द्वारा सम्पादित कनिंघम की एंशियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया में उनके द्वारा लिखित भूमिका का पृष्ठ तैंतालीस) और लाहा (ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज्म, पृष्ठ २; इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्स्ट्स् ऑव बुद्धिज्म एण्ड जैनिज्म, पृष्ठ ५९) ने सललवती का संस्कृत प्रतिरूप सरावती दिया है।

में कीकट प्रदेश का उल्लेख है। इस प्रदेश को मगध देश से मिलाया गया है। यास्क ने अपने "निरुक्त" (६।३२) में कीकट प्रदेश को अनार्यों का निवासस्थान बताया है। "कीकटो नाम देशोऽनार्यनिवासः"। अथर्ववेद के व्रात्य-कांड में मगध के साथ अंग देश के लोगों को व्रात्य अर्थात् वैदिक संस्कृति के बहिर्भूत बताया गया है और उनकी भर्त्सना की गई है। मगध देश के निवासियों के प्रति आर्यों के मन में कितने अवमानना के भाव थे, इसे वैदिक साहित्य और उसकी परम्परा के ग्रन्थों के अनेक उद्धरणों से समझा जा सकता है।[1] वस्तुतः बात यह थी कि उस समय तक मगध में आर्य संस्कृति का पूर्णरूपेण प्रसार नहीं हुआ था और वह मुख्यतः आर्य सभ्यता के क्षेत्र से बहिर्भूत माना जाता था। यही कारण है कि मगध देशीय ब्राह्मण भी श्रौत परम्परा के लिए "ब्रह्मबन्धु" ही था। सम्पूर्ण प्राचीन साहित्य में इस हद तक मगध-निवासियों को आर्य संस्कृति के बहिर्भूत बताने का प्रयत्न किया गया है कि पार्जिटर जैसे विद्वान् ने उन्हीं के आधार पर विचार करते हुए उन्हें वास्तविक रूप से अनार्य जाति ही मान लिया है और उनके समुद्री मार्ग द्वारा पूर्वी भारत में आकर बस जाने या विदेशियों से मिल जाने तक की भी अनैतिहासिक कल्पना कर डाली है,[2] जिसका समर्थन पालि परम्परा के आधार पर, जैसा हम अभी देखेंगे, नहीं किया जा सकता।

मगध के प्रति उपर्युक्त अवमानना के कारण ही धर्मसूत्रकारों ने उसे पवित्र आर्यावर्त से कभी नहीं मिलने दिया। बौधायन के धर्मसूत्र में आर्यावर्त की जो पूर्वी सीमा निर्धारित की गई है, वह कालक वन तक ही है,[3] जिसे प्रयाग

---

१. जिनके कुछ संकलन और विवेचन के लिए देखिये महामहोपाध्याय हर-प्रसाद शास्त्री : मगधन लिटरेचर, पृष्ठ १-२१; हेमचन्द्र रायचौधरी : पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ १११-११३; मेकडोनल और कीथ : वैदिक इण्डेक्स, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ११६।

२. जर्नल ऑव रॉयल एशियाटिक सोसायटी, १९०८, पृष्ठ ८५१-८५३; मिलाइये वैदिक इण्डेक्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ११।

३. बौधायन धर्मसूत्र १।१।२।९।

या उसके किसी समीपवर्ती स्थान से मिलाने का प्रयत्न किया गया है।[1] इसी प्रकार मनुस्मृति में भी, जिसने आर्यावर्त देश के लिए "मध्य देश" नाम का प्रयोग किया है, "प्रत्यगेव प्रयागाच्च" कह कर प्रयाग को ही मध्य-देश की पूर्वी सीमा ठहराया गया है।[2] बहुत पीछे आकर कही दसवीं शताब्दी में राजशेखर-कृत काव्यमीमांसा में "वाराणस्याः परतः पूर्वदेशः," कहकर "अन्तर्वेदी" देश, जिस नाम का प्रयोग वहाँ मध्य-देश के लिये किया गया है, की पूर्वी सीमा वाराणसी तक लाई गई है।[3] बुद्ध के काल में जब हम पालि तिपिटक के साक्ष्य पर स्पष्टत देखते हैं कि मगध में उरुवेला जैसे स्थान में तीन जटिल साधु उरुवेल काश्यप, नदी काश्यप, और गया काश्यप, प्रति वर्ष एक महान् यज्ञ करते थे और उरुवेला के चतुर्दिक् फैले हुए अंग और मगध राष्ट्रों के सहस्रों लोग प्रभूत मात्रा में खाद्य और भोज्य लेकर उनकी सेवा में, यज्ञ के पुण्य का लाभ प्राप्त करने के लिये, उपस्थित होते थे,[4] इतना ही नही, जब हम देखते है कि अंग और मगध के लोग महाब्रह्मा की पूजा के उत्सव में ६० गाड़ियाँ ईंधन की जला डालते थे[5], जब कूटदन्त, सोणदण्ड और भारद्वाज जैसे ब्राह्मण-महाशाल मगध देश में बुद्ध-काल में विद्यमान थे और एकनाला, पञ्चशाल, अम्बसण्ड, सालिन्दिय और खाणुमत जैसे स्वतन्त्र ब्राह्मण-ग्राम भी उस समय मगध में विद्यमान थे, तो हमें इस बात पर आश्चर्य और खेद हुए बिना नहीं रहता[6] कि सूत्र और ब्राह्मण युग के वैदिक परम्परा

---

१. देखिये कनिंघम कृतः "एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इंडिया" मे सुरेन्द्रनाथ मजूमदार-लिखित भूमिका, पृष्ठ इकतालीस, पद-संकेत १; लाहा : इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन अर्ली ऑव टैक्स्ट्स् ऑव बुद्धिज्म एंड जैनिज्म, पृष्ठ २०, पद-संकेत १; ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज्म, पृष्ठ १, पद-संकेत १।

२. मनु०। २।२१। पूरा उद्धरण पहले दिया जा चुका है।

३. पूरा उद्धरण पहले इसी परिच्छेद में दिया जा चुका है।

४. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ९१।

५. सारत्थप्पकासिनी (संयुत्त-निकाय की अट्ठकथा), जिल्द पहली, पृष्ठ २६९।

६. जैसा कि सिंहली विद्वान् डा० जी० पी० मललसेकर को भी हुआ है। देखिए उनकी डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४०४।

के लोग फिर भी क्यों मगध जनपद के प्रति ऋग्वेदकालीन अवमानना की भावनाओं को ही प्रश्रय देते रहे और उसे आर्य संस्कृति के क्षेत्र से बहिर्भूत मानते रहे जब कि उसमें आर्य संस्कृति का एक विकसित रूप बुद्ध-काल और उसके कुछ पूर्व से ही दृष्टि-गोचर हो रहा था। क्यों यह परम्परा समय के साथ चलकर अपने ज्ञान का विकास नहीं कर सकी? क्यों मगध के प्रति उसी घृणा-भाव को अपनाती रही जो ऋग्वेद के काल में प्रचलित था? यहीं हमें तथागत के गौरव का इस क्षेत्र में भी अनुभव होने लगता है, जिन्होंने इसका सम्यक् प्रतिकार किया। जिस प्रकार बौद्ध धर्म के आविर्भाव ने पूर्व काल से चली आई हुई अनेक निर्जीव और अर्थहीन रूढ़ियों और अन्धविश्वासों को तोड़ा, उसी का एक प्रभावशाली उदाहरण हम इस भौगोलिक क्षेत्र में भी मध्य-देश की पूर्वी सीमा के विस्तार के रूप में देखते है। आर्य संस्कृति के लिए तथागत के धर्म की यह एक महान् देन थी। जिस प्रकार भगवान् बुद्ध ने प्राचीन आर्य आदर्शों को अपने व्यक्तित्व से पूर्णता प्रदान की, वही बात बौद्ध परम्परा ने मध्य देश की सीमा का सार्थक विस्तार करके की। डा० लाहा ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि चूंकि मगध बौद्धों का पवित्र देश था, अतः उनका यह स्वाभाविक और परिस्थितिओं के तर्क के अनुकूल ही प्रयत्न था कि वे मध्य देश की सीमा को इतना बढ़ायें कि उसमें मगध भी सम्मिलित हो जाय।[१] बौद्ध धर्म, जिसने परम्परागत धर्म की कतिपय अज्ञानजनित मान्यताओं पर निर्मम प्रहार किये और सत्य की खोज में किसी की अपेक्षा नहीं रक्खी, इस प्रकार मध्य देश की सीमा बढ़ाकर अपने गौरव की रक्षा और वृद्धि करता, यह बात बौद्ध धर्म

---

१. "The ancient Magadhan country including Banaras and Buddha-Gaya was the land par excellence of Buddha and Buddhism. It was, therefore, quite in the logic of circumstances that the Buddhist writers would extend the boundary of the Madhyadesa (Majjhimadesa) further towards the east so as to include the Buddhist holy land." Geography of Early Buddhism, Page 1; Compare, India as described in Early Texts of Buddhism and Jainism. Pages 20-21.

को ठीक प्रकार से समझने का साक्ष्य नहीं देती। बौद्ध परम्परा ने जो मध्यदेश की सीमा को बढ़ाया है, वह आर्य संस्कृति को उसका प्रकृत गौरव देने के लिये ही किया है। जो सत्य आँखों के सामने उपस्थित था, उसे स्वीकार करने के लिये और पूर्व परम्परागत द्वेषबुद्धि को हटाने के लिये ही किया है। हाँ, बौद्ध धर्म के कारण मगध को विशेष गौरव मिला और प्रसन्नता की बात है कि प्रकारान्तर से बौद्ध धर्म के अज्ञात प्रभाव के परिणामस्वरूप ही बाद मे पौराणिक परम्परा ने उस मगध की भूमि को, जिसे प्राचीन वैदिक परम्परा ने "पाप-भूमि" माना था, पवित्र और पुण्यमयी बताया और उसका माहात्म्य गाते हुए कहा, "कीकटेषु गया पुण्या पुण्यं राजगृह वनम्"। यह बौद्ध धर्म द्वारा किये गये महत् कार्य की पौराणिक ढंग से स्वीकृति ही तो है, जिस ढग को पौराणिक परम्परा ने बौद्ध धर्म की देन को स्वीकार करते हुए अक्सर अपनाया है। मगध को तो विशेष गौरव बौद्ध धर्म ने दिया ही, मध्य मडल की सीमा मे उसे सम्मिलित कर प्रथम बार उसने सम्पूर्ण आर्य सस्कृति की विकासगामी परम्परा को भी अग्रसर किया। यहाँ यह कह देना अनावश्यक न होगा कि बौद्ध सस्कृत ग्रन्थ "दिव्यावदान"[1] मे बाद में मध्य देश की सीमा पुण्ड्रवर्द्धन तक बढ़ा दी गई है, जो सम्भवत: उत्तरी बगाल (वरेन्द्र) में कोई स्थान था।[2] इस प्रकार आर्य सस्कृति के प्रसार की कहानी हमें मध्य देश की पूर्वी

---

१. पृष्ठ २१-२२ "पूर्वेण पुण्ड्रवर्द्धनं नाम नगरम्।"

२. पुण्ड्रवर्द्धन की यात्रा यूआन् चुआङ ने भी की थी और उसने उसे "पुन-न-फ-तन-न" कह कर पुकारा है, जिसका संस्कृत रूपान्तर अनेक विद्वानों ने 'पुण्ण-वर्द्धन', 'पुण्यवर्द्धन' या 'पौण्ड्रवर्द्धन' किया है, परन्तु ठीक रूप वस्तुतः 'पुण्ड्रवर्द्धन' ही है। यूआन् चुआङ ने इसे चम्पा से ६०० 'ली' अर्थात् करीब १००मील पूर्व मे गंगा के उस पार बताया है। देखिये वाटर्स :औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १८४; मिलाइये कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५४९। डा० लाहा ने पुण्यवर्द्धन को कजंगल से १०० 'ली' अपने ग्रन्थ "इण्डिया ऐज डिस्काइब्ड इन अर्ली टैक्स्ट्स् ऑव बुद्धिज़्म एंड जैनिज़्म" पृष्ठ ६० में यूआन् चुआङ् के अनुसार बताया है, जो गलत है। एम० विवियन डे सेंट मार्टिन ने पुण्यवर्द्धन को वर्तमान वर्द्धवान से मिलाया था, जिसे कनिंघम ने स्वीकार नहीं

सीमा के निरन्तर विकास के रूप में दिखाई पड़ती है, जिसे बौद्ध परम्परा ने पहले कजंगल नामक निगम तक बढ़ाया और फिर पुण्ड्रवर्द्धन या उत्तरी बंगाल तक। पौराणिक परम्परा अधिक से अधिक वाराणसी तक दसवीं शताब्दी ईसवी में जा सकी!

मज्झिम देस की पूर्वी सीमा के परे पालि विवरण में "महासाला" कहे गये हैं। "महासाला" का अर्थ विनय-पिटक के हिन्दी-अनुवाद में महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने और "जातक" के हिन्दी-अनुवाद में भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने "बड़े शाल के वन" किया है। परन्तु इन ग्रन्थों के अंग्रेजी अनुवादकों ने "महासाला" का अर्थ "महासाला" नामक ग्राम किया है, जिसका ही अनुसरण मललसेकर[1] और लाहा[2] जैसे विद्वानों ने किया है। चूंकि "महासाला" का ग्राम के अर्थ में अन्यत्र कहीं भी पालि तिपिटक में उल्लेख नहीं है, साला नामक ब्राह्मण-ग्राम का है, परन्तु वह कोसल देश में था और इससे नहीं मिलाया जा सकता, इसलिए "महासाला" को ग्राम मानने का कोई स्पष्ट आधार मिलता दिखाई नहीं पड़ता। सातवीं शताब्दी ईसवी के चीनी यात्री यूआन् चुआङ के यात्रा-विवरण में निर्दिष्ट "महाशाल" या "महासार" ब्राह्मण-ग्राम को भी हम पालि का "महासाला" नहीं मान सकते। यूआन् चुआङ वाराणसी से ३०० 'ली' (करीब ५० मील) पूर्व में चलकर

किया है। कनिंघम के मतानुसार पुण्ड्रवर्द्धन वर्तमान पबना है, जो कंकजोल (कजंगल) से ठीक १०० मील पूर्व में गंगा के उस पार है। देखिये उनकी: एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इंडिया, पृष्ठ ५४९-५५०। परन्तु बाद में कनिंघम ने अपने द्वारा लिखी हुई आर्केलोजीकल सर्वे ऑव इण्डिया की रिपोर्ट, जिल्द पन्द्रहवीं, पृष्ठ १०४-१११ में पुण्ड्रवर्द्धन को बंगाल के बोगरा नामक नगर से मिलाने का प्रयत्न किया। पुण्ड्रवर्द्धन की आधुनिक पहचान सम्बन्धी विस्तृत विवेचन के लिये देखिये कनिंघम-कृत "एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया" में सुरेन्द्रनाथ मजूमदार-लिखित "नोट्स" पृष्ठ ७२३-७२५।

१. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५६९।

२. ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज़्म, पृष्ठ २; इंडिया ऐज़ डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्स्ट्स् ऑव बुद्धिज़्म एंड जैनिज़्म, पृष्ठ २०-२१।

"चन्-चु" (गाजीपुर) प्रदेश मे गया था और फिर वहाँ से २०० 'ली' (करीब ३३ मील) पूर्व में चलकर "अ-पि-ते-क-ल-न" (अविद्धकर्ण) सघाराम मे पहुँचा था, जहाँ से १०० 'ली' अर्थात् करीब १६ या १७ मील दक्षिण-पूर्व में "मो-हो-शो-लो" या महाशाल नामक गाँव स्थित था, जिसमे सब ब्राह्मण ही रहते थे। यह "महाशाल" या "महासार" गाँव आधुनिक मसार है, जो आरा के ६ मील पश्चिम मे है।[1] इसकी स्थिति को देखते हुए इसे मज्झिम देस की पूर्वी सीमा पर स्थित कजगल के परे किसी प्रकार नही माना जा सकता। अत यह "महाशाल" या "महासार" ब्राह्मण-ग्राम पालि साहित्य का "महासाला" नही हो सकता, जो अग-कजगल के परे पूर्व मे स्थित था।

अब हम मध्यदेश की दक्षिणी सीमा पर आते है। जैसा हम देख चुके है, वह सेतकण्णिक नामक निगम तक थी। सेतकण्णिक की आधुनिक पहचान करने का प्रयत्न किसी विद्वान् ने नही किया है। महापडित राहुल साकृत्यायन ने भी इसके सम्बन्ध मे केवल यह लिखा है, "हजारीबाग जिले मे कोई स्थान था।"[2] डा० लाहा ने इसे वैसे ही छोड दिया है, विवेचन के योग्य भी नही समझा है।[3] सम्भवत सेतकण्णिक भारत के सुह्म (पालि सुम्भ) नामक जनपद का एक कस्बा था, जो पूर्व देश मे था। सुह्म नामक जनपद मे, महापडित राहुल साकृत्यायन के अनु-

---

१. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रैविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी पृष्ठ ५९-६१; कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इंडिया, पृष्ठ ५०४, देखिये वहीं पृष्ठ ७१६ में सुरेन्द्रनाथ मजूमदार-लिखित "नोट्स्" भी; लाहा इंडिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्स्टस् ऑव बुद्धिज़्म एंड जैनिज़्म. पृष्ठ ५७।

२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद) पृष्ठ २१३, पद-संकेत ३; बुद्धचर्या, पृष्ठ ३७१, पद-संकेत ५।

३. ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज्म, पृष्ठ २,६०, इंडिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्स्ट्स ऑव बुद्धिज़्म एंड जैनिज़्म, पृष्ठ २१; सुरेन्द्रनाथ मजूमदार ने भी सेतकण्णिक के सम्बन्ध में कोई टिप्पणी नहीं दी है और केवल नाम निर्देशन करके छोड़ दिया है। देखिए कनिंघम-कृत 'एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इंडिया' में उनकी भूमिका, पृष्ठ तेतालीस।

सार, वर्तमान् हजारीबाग और संथाल परगना जिलों का कितना ही अंश सम्मिलित था।[1] डा० लाहा के मतानुसार सुह्म जनपद का विस्तार आधुनिक मेदिनीपुर जिले के प्रायः समान था।[2] सुह्मों के कस्बे सेतक, सेदक या देसक में भगवान् ने विहार किया था और यहीं उन्होंने संयुत्त-निकाय के उदायि-सुत्त[3], सेदक-सुत्त[4] और जनपद-सुत्त[5] का उपदेश किया था। तेलपत्त जातक का उपदेश भी यहीं दिया गया था। महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने "बुद्धचर्या" में संयुत्त-निकाय के उदायि-सुत्त का अनुवाद करते हुए "सेतक" के स्थान पर "सेतकण्णिक" पाठ दिया है।[6] इससे यही जान पड़ता है कि उनके मतानुसार सम्भवतः सेतक, सेदक, देसक या सेतकण्णिक एक ही कस्बे का नाम था। यहाँ यह कह देना आवश्यक जान पड़ता है कि मललसेकर और लाहा ने सेतक, सेदक या देसक का सेतकण्णिक से अलग उल्लेख किया है और दोनों को भिन्न स्थान माना है। सिवाय मज्झिम देस की दक्षिणी सीमा पर स्थित होने के अन्य कोई महत्वपूर्ण उल्लेख सेतकण्णिक कस्बे के सम्बन्ध में पालि तिपिटक में नही है। अतः नाम-साम्य के आधार पर हम चाहें तो उसे सुह्म जनपद के सेतक, सेदक या देसक नामक कस्बे से मिला सकते हैं। युआन् चुआङ ने अपने यात्रा-विवरण में श्वेतपुर नामक नगर का उल्लेख किया है, जिसे उन्होंने वैशाली से करीब ९० 'ली' या करीब १५ मील दक्षिण में स्थित बताया है।[7] डा० लाहा ने इस श्वेतपुर नगर को सुह्म जनपद के सेतक, सेदक या देसक

---

१. बुद्धचर्या, पृष्ठ २७४, पद-संकेत १; वहीं पृष्ठ ५७१ भी।

२. इंडिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्स्टस् ऑव बुद्धिज़्म एंड जैनिज़्म, पृष्ठ ५१।

३. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ६६१।

४. वहीं, पृष्ठ ६९५-६९६।

५. वहीं, पृष्ठ ६९६।

६. बुद्धचर्या, पृष्ठ २७५।

७. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रैविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ७९-८१।

नामक कस्बे से मिलाने का प्रस्ताव किया है।[1] इस प्रकार डा० लाहा के इस प्रस्ताव के अनुसार हमें पालि के "सुम्भ" जनपद को महाभारत के सुह्य जनपद से, जिसे हम वंग और उत्कल के बीच मान सकते है, न मिलाकर उसकी स्थिति को वज्जि जनपद के समीप लाना पड़ेगा। चूंकि डा० लाहा का श्वेतपुर नगर को पालि के सेदक कस्बे से मिलाना केवल नाम-साम्य पर आधारित है, अत. उसके कारण हम पालि के सुम्भ जनपद को वग और उत्कल के बीच से लाकर वैशाली के करीब १५ मील दक्षिण में, जो श्वेतपुर की स्थिति है, लाने को प्रस्तुत नही हैं। मज्झिम देश की दक्षिणी सीमा के सम्बन्ध में तुलनात्मक दृष्टि से यहाँ यह कह देना आवश्यक होगा कि बौधायन धर्म-सूत्र मे आर्यावर्त की दक्षिणी सीमा पारिपात्र या पारियात्र (विन्ध्य पर्वत-श्रेणी का कोई भाग, सम्भवतः अरावली पर्वत) निर्धारित की गई थी, जब कि मनुस्मृति में मध्यदेश को "हिमवद्-विन्ध्ययोर्मध्यम्" कहा गया था। काव्यमीमासा के "अन्तर्वेदी" की दक्षिणी सीमा माहिष्मती नगरी थी। माहिष्मती (माहिस्सति) का नाम पालि तिपिटक को भी ज्ञात है और उसे दीघ-निकाय के महागोविन्द-सुत्त में अवन्ति-दक्षिणापथ की राजधानी बताया गया है। माहिष्मती को नर्मदा नदी पर स्थित आधुनिक मान्धाता नामक नगर से मिलाया गया है[2] या उसे महेश्वर (इन्दौर) भी बताया गया है।[3] वस्तुतः माहिष्मती नामक अनेक नगरियाँ प्राचीन भारत में थी, जिनके विवेचन में यहाँ जाना उचित न होगा।

---

१. इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टेक्स्टस् ऑव बुद्धिज़्म एंड जैनिज़्म, पृष्ठ ६०।

२. विशेषतः पार्जिटर और फ्लीट द्वारा। उद्धरणों के लिये देखिये हेमचन्द्र रायचौधरी : पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ १४५, पद-संकेत २, जहाँ डा० रायचौधरी ने इस सम्बन्ध में कुछ आपत्तियाँ उठाई हैं। डा० लाहा ने मान्धाता की पहचान को स्वीकार किया है। देखिये उनकी "ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज़म", पृष्ठ ६१।

३. इण्डियन एंटिक्वेरी, १८७५, पृष्ठ ३४६; महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने इस पहचान को स्वीकार किया है। देखिए दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १७१, पद-संकेत १; पृष्ठ ३२६; बुद्धचर्या, पृष्ठ ५६१।

हमारे इस समय के उद्देश्य के लिये यह जानना पर्याप्त है कि जहाँ तक मध्य देश की दक्षिणी सीमा का सम्बन्ध है, बौद्ध और वैदिक परम्पराओं में विशेष अन्तर नहीं है, क्योंकि दोनों उसे किसी न किसी प्रकार विन्ध्य-पर्वत-श्रेणी तक ही मानने को प्रवण दिखाई पड़ती हैं।

मध्य देश की पश्चिमी सीमा पालि विवरण में थूण नामक ब्राह्मण-ग्राम बतायी गयी है। दिव्यावदान[1] में इसे "स्थूण" कहकर पुकारा गया है। यह "थूण" या "स्थूण" नामक ब्राह्मण-ग्राम क्या स्थान हो सकता है, इसका कोई विद्वान् अभी समाधानपूर्वक निर्णय नहीं कर सका है। सुरेन्द्रनाथ मजूमदार ने इसे स्थाण्वीश्वर या वर्तमान थानेश्वर (जिला करनाल) से मिलाया है।[2] डा० विमलाचरण लाहा[3] और महापण्डित राहुल सांकृत्यायन[4] का भी इसी प्रकार का मत है। यूआङ चुआङ ने मथुरा से उत्तर-पूर्व ५०० 'ली' की यात्रा के पश्चात् "स-त-नि-स्सु-फ-लो" या "स्थाणेश्वर" प्रदेश में प्रवेश किया था। कनिंघम ने इसे वर्तमान थानेश्वर से मिलाया था,[5] परन्तु थॉमस वाटर्स ने सहेतुक ढंग से इसे स्वीकार नहीं किया है। उनकी आपत्ति है कि स्वयं यूआन् चुआङ के वर्णनानुसार, जैसा हम अभी कह चुके हैं, स्थाणेश्वर मथुरा से ५०० 'ली' (करीब ८३ या ८४ मील) उत्तर-पूर्व में था, जब कि वर्तमान थानेश्वर मथुरा से १८० मील उत्तर-पश्चिम में है।[6] कुछ भी हो, पालि के थूण नामक ब्राह्मण-ग्राम को नाम-साम्य के कारण तो हम वर्तमान थानेश्वर से मिला ही सकते हैं, मध्य देश की पश्चिमी सीमा

---

१. पृष्ठ २२ "पश्चिमेन स्थूणोपस्थूणकौ ग्रामकौ।"

२. देखिये कनिंघम-कृत एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इंडिया में श्री सुरेन्द्रनाथ मजूमदार-लिखित भूमिका, पृष्ठ तेतालीस, पद-संकेत २।

३. ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज्म, पृष्ठ २, पद-संकेत २; इंडिया ऐज डिस्काइब्ड इन अर्ली टैक्स्ट्स् ऑव बुद्धिज्म एंड जैनिज्म, पृष्ठ २१, पद-संकेत १।

४. बुद्धचर्या, पृष्ठ १, पद-संकेत ५; पृष्ठ ३७१, पद-संकेत ६; विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २१३, पद-संकेत ४; पृष्ठ ५६३।

५. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इंडिया, पृष्ठ ३७६।

६. औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इंडिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३१६।

की दृष्टि से भी यह स्थान पालि विवरण के अत्यन्त अनुकूल दिखाई पड़ता है और यह आवश्यक नहीं है कि पालि का थूण नामक ब्राह्मण-ग्राम यूआन् चुआङ् के द्वारा यात्रा किया हुआ "स-त-नि-स्सु-फ-लो-" या "स्थाणेश्वर" ही हो। थूण की स्थिति के सम्बन्ध में एक भ्रम में डालने वाली बात हमें जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ ६२ (पालि टैक्स्ट सोसायटी संस्करण) में मिलती है। यहाँ भी थूण नामक एक ब्राह्मण-ग्राम का निर्देश किया गया है, परन्तु इसकी स्थिति को मिथिला और हिमवन्त (हिमालय) प्रदेश के बीच में बताया गया है। इस प्रकार यह थूण ब्राह्मण-ग्राम कहीं मिथिला के उत्तर और हिमालय के दक्षिण में होना चाहिए। सम्भवतः यह थूण नामक ब्राह्मण-ग्राम वही था जिसका उल्लेख 'उदान'[1] में भी किया गया है और जिसे वहाँ मल्ल जनपद में स्थित बताया गया है। बुद्ध-काल में एक ही नाम के कई नगर और ग्रामों के उदाहरण हमें मिलते हैं। उदाहरणतः कुण्डी या कुण्डिया नामक एक ग्राम कोलिय जनपद में था और कुण्डी, कुण्डिय या कुण्डिकोल नामक एक अन्य ग्राम कुरु जनपद में भी। इसी प्रकार वेलुव गाम नामक एक गाँव वज्जि जनपद में था और इसी से मिलते-जुलते नाम का वेलुगाम नामक एक दूसरा ग्राम अवन्ती राज्य में भी था। (उत्तर) मधुरा और (दक्षिण) मधुरा तो प्रसिद्ध ही हैं। इस प्रकार जातक और उदान के थूण नामक ब्राह्मण-ग्राम को हमें मल्ल राष्ट्र में मानना पड़ेगा, जिसका मज्झिम देस की पश्चिमी सीमा पर स्थित थूण नामक ब्राह्मण-ग्राम से कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता। मध्य देश की पश्चिमी सीमा के रूप में बौधायन धर्म-सूत्र और मनुस्मृति में सरस्वती नदी के लुप्त होने के स्थान (क्रमशः अदर्शन तथा विनशन) का उल्लेख किया गया है, जिसकी ठीक पहचान करना मुश्किल है। परन्तु इसे सम्भवतः सिरसा नामक स्थान से मिलाया जा सकता है, जो राजपूताना मरुस्थल के उत्तर में स्थित है। इसी प्रकार काव्यमीमांसा में देवसभा के पश्चिम में पश्चिमी देश बताया गया है। "देवसभायाः परतः पश्चाद्देशः"। अर्थात् अन्तर्वेदी देश की पश्चिमी सीमा 'देवसभा' बताई गई है। देवसभा को अक्सर आधुनिक देवास से मिलाया जाता है।[2]

---

१. पृष्ठ १०६ (हिन्दी अनुवाद)।

२. देखिये हिस्ट्री एंड कल्चर ऑव दि इंडियन पीपल, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १०१

मध्य देश की उत्तरी सीमा पर पालि विवरण के अनुसार उसीरद्धज (उशीर-ध्वज) पर्वत अवस्थित था। हल्श ने इसे हरिद्वार के समीप कनखल के उत्तर में उशीरगिरि नामक पर्वत से मिलाया था,[१] जिसे ठीक माना जा सकता है। यूआन् चुआङ ने मथुरा के समीप उरुमुण्ड पर्वत के पास "शीर" या "उशीर" पर्वत का उल्लेख किया है,[२] परन्तु नाम-साम्य होने पर भी इसका हमारे "उशीरध्वज" से कोई सम्बन्ध नहीं है। बौधायन धर्म-सूत्र और मनुस्मृति में हिमालय को मध्य देश की उत्तरी सीमा बताया गया है, जिससे पालि विवरण का कोई विभेद नहीं जान पड़ता। काव्यमीमांसा में अवश्य उत्तरापथ और अन्तर्वेदी के बीच में पृथूदक नामक स्थान को सीमा के रूप में बताया गया है। "पृथूदकात् परतः उत्तरापथः"। कनिंघम ने पृथूदक को वर्तमान थानेश्वर के १४ मील पश्चिम में स्थित पहोआ नामक स्थान से मिलाया है।[३] इस प्रकार काव्यमीमांसा के अनुसार यही अन्तर्वेदी प्रदेश की उत्तरी या ठीक कहें तो उत्तरी-पश्चिमी सीमा होगी। इस प्रकार मोटे तौर पर हम देखते हैं कि पालि तिपिटक में निर्दिष्ट मज्झिम देस उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में विन्ध्याचल तक फैला था और पूर्व में अंग जनपद से लेकर पश्चिम में कुरु राष्ट्र तक। जातकट्ठकथा में मध्य देश के विस्तार के सम्बन्ध में कहा गया है, "यह मध्य देश लम्बाई में तीन सौ योजन, चौड़ाई में ढाई सौ योजन और घेरे में नौ सौ योजन है।"[४]

---

१. इंडियन एंटिक्वेरी, १९०५, पृष्ठ १७९; मिलाइये कनिंघम-कृत "एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया" में सुरेन्द्रनाथ मजूमदार-लिखित भूमिका, पृष्ठ तेतालीस, पद-संकेत ३; लाहा: ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज़्म, पृष्ठ २, पद-संकेत ३; इंडिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्स्टस् ऑव बुद्धिज़्म एंड जैनिज़्म, पृष्ठ २१, पद-संकेत २; राहुल सांकृत्यायन: बुद्धचर्या, पृष्ठ ५४६।

२. वाटर्स: औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रैविल्स इन इंडिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३०८

३. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इंडिया, पृष्ठ ३८५।

४. जातक प्रथम खंड, पृष्ठ ६४ (हिन्दी अनुवाद)। मूल पालि इस प्रकार है, "सो आयामतो तीणि योजनसतानि वित्थारतो अड्ढतियोजनानि परिक्खेपतो नव योजन सतानीति", जातकट्ठकथा, पठमो भागो, पृष्ठ ३९ (भारतीय ज्ञानपीठ, काशी)।

मध्य देश को भगवान् ने अपने आविर्भाव से तो गौरवान्वित किया ही, सबसे बड़ा गौरव जो मध्य देश को भगवान् तथागत से मिला, भौगोलिक दृष्टि से यह था कि उन्होंने अपनी चारिकाएँ प्रायः इसी देश के अन्तर्गत कीं। यद्यपि संयुत्त-निकाय की अट्ठकथा (सारत्थप्पकासिनी)[1] में हम यक्ष आलवक को कैलाश (केलास) पर्वत की चोटी से भगवान् बुद्ध के अपने निवासस्थान पर आने की प्रसन्नता में आत्म-परिचय देते हुए चिल्लाते देखते हैं और स्वयं विनय-पिटक के महावग्ग[2] में हम पढ़ते हैं कि भगवान् बुद्ध उत्तरकुरु में भिक्षार्थ गये थे और अनोतत्त दह (मानसरोवर झील) में स्नान कर उन्होंने उसके तट पर विश्राम किया था, जिससे लगेगा कि भगवान् साइबेरिया (उत्तरकुरु) और तिब्बत के समीप मानस-सरोवर झील तक गये थे। पुनः यदि मनोरथपूरणी[3] में दी गई महाकप्पिन की कथा को हम प्रामाणिक मानें तो हमें मानना पड़ेगा कि उत्तर-पश्चिम में भगवान् चन्दभागा (चन्द्रभागा—चिनाब) नदी के तट तक गये थे और इसी प्रकार यदि सारत्थप्पकासिनी[4] के अनुसार सूनापरान्त जनपद में स्थित मंकुलकाराम नामक विहार में भगवान् के जाने और वहाँ से लौटते हुए नर्मदा को पार करने की बात को हम मानें तो हमें अनिवार्य रूप से यह मानना ही पड़ेगा कि भगवान् बम्बई और सूरत के प्रदेश तक भी गये थे। इतना ही नहीं, दीपवंस[5] में और महावंस के "तथा-गतागमन" शीर्षक प्रथम परिच्छेद में, भगवान् के तीन बार लंकागमन की बात कही गई है। इस विवरण के अनुसार प्रथम बार भगवान् बुद्ध पौष (फुस्स) मास की पूर्णिमा के दिन, बुद्धत्व-प्राप्ति के नवें महीने में लंका गये। दूसरी बार वे

---

१. जिल्द पहली, पृष्ठ २४८।

२. महावग्गो (विनय पिटकं) पठमो भागो, पृष्ठ ४१ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

३. जिल्द पहली, पृष्ठ १७५। मिलाइये धम्मपदट्ठकथा, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ११६; सारत्थप्पकासिनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १७७; जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ १८०।

४. जिल्द तीसरी, पृष्ठ १५।

५. १।४५; २।१।

बुद्धत्व-प्राप्ति के पन्द्रहवें वर्ष में चैत्र (चित्त) मास की पूर्णिमा के दिन वहाँ गये। इसके तीन वर्ष बाद भगवान् बुद्ध ५०० भिक्षुओं के सहित वैशाख मास की द्वितीया के दिन फिर तीसरी बार लंका गये। इस बार वे कल्याणी भी गये और उसके बाद सुमन-कूट-पर्वत (आदम की चोटी) पर उन्होंने अपना चरण-चिह्न अंकित किया, जो आज "श्रीपाद" के नाम से प्रसिद्ध है। नर्मदा (नम्मदा) नदी के तट पर भी भगवान् ने अपने चरण-चिन्ह छोड़े। लंका की इस तीसरी बार की यात्रा के बाद भगवान् लौटकर जेतवन आये। बरमी लोगों का विश्वास है कि भगवान् उनके देश में भी गये और वहाँ उन्होंने "लोहित-चंदन-विहार" में निवास किया।[1]

इस प्रकार यद्यपि पूर्ववर्ती और उत्तरवर्ती पालि विवरणों में भगवान् बुद्ध के उत्तरकुरु द्वीप, कैलाश, मानसरोवर, चन्द्रभागा (चिनाब) नदी के तट, नर्मदा नदी को पार कर सूनापरान्त जनपद, लंका और बरमा तक जाने की बात मिलती है, परन्तु इस सम्बन्ध में न तो उनकी यात्रा का कहीं वर्णन किया गया है और न उसमें लगे समय का या रास्ते में पड़ने वाले पड़ावों का कहीं निश्चित उल्लेख ही है। अक्सर वायु-मार्ग से या ऋद्धि-बल-से ही उन्हें वहाँ पहुँचा दिया गया है, जिसे पौराणिक विवरण ही कहा जा सकता है। जो बात निश्चित रूप से ऐतिहासिक तथ्य के रूप में कही जा सकती है, वह यह है कि भगवान् बुद्ध ने अपनी चारिकाएँ प्रायः मध्य-देश या मध्य-मंडल की सीमाओं के भीतर अर्थात् "कोसी-कुरुक्षेत्र और हिमालय-विन्ध्याचल के बीच"[2] के प्रदेश में कीं। उत्तर में वे हिमालय के पार्श्व में स्थित कोलिय जनपद के निगम सापुग और हरिद्वार के समीप उशीरध्वज पर्वत तक गये और दक्षिण में सुंसुमारगिरि (चुनार) और विन्ध्याटवी (विञ्झाटवी) तक, जिसे सम्भवतः उन्होंने पार नहीं किया। पूर्व में भगवान् मध्य देश की पूर्वी सीमा पर स्थित कजंगल नामक निगम तक गये, जहाँ के वेणुवन या सुवेणुवन और मुखेलुवन में वे ठहरे। अंगुत्तराप के आपण नामक कस्बे तक भगवान् गये,

---

१. बरमी परम्परा सम्बन्धी उद्धरणों के लिये देखिये मललसेकर : डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ८०४, पद-संकेत ६४।

२. बुद्धचर्या, पृष्ठ ५ (भूमिका); मिलाइये मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ छह (प्राक्कथन)।

परन्तु उन्होंने कोसी नदी को पार किया हो, ऐसा उल्लेख नहीं मिलता। पश्चिम में भगवान् मथुरा तक तो गये ही[1], कुरु देश के थुल्लकोट्ठित[2] और कम्मासदम्म[3] नामक निगमों तक भी हम उन्हें जाते देखते है।

शाक्य कुमार गौतम ने २९ वर्ष की अवस्था मे गृह-वास छोड़ा। उसके बाद छह वर्ष तक उन्होंने कड़ी तपस्या की और बोध प्राप्त किया। फिर ग्राम से ग्राम, निगम से निगम और नगर से नगर घूमते हुए भगवान् ने सद्धर्म का उपदेश दिया। वे निरन्तर धर्मोपदेश करते हुए चारिका करते रहते थे। केवल वर्षा के तीन मास (श्रावण, भाद्रपद और आश्विन, या भाद्रपद, आश्विन और कार्तिक)[4] एक स्थान पर निवास करते थे। इस प्रकार भगवान् ने ४६ वर्षावास अपने जीवन-काल में बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद किए, जिनका विवरण अगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा (मनोरथपूरणी) और बुद्धवस-अट्ठकथा (मधुरत्थविलासिनी) के अनुसार इस प्रकार ग्रथित किया जा सकता है :—

वर्षावास	स्थान जहाँ बिताया गया
१	ऋषिपतन मृगदाव
२—४	राजगृह
५	वैशाली
६	मंकुल पर्वत
७	त्रायस्त्रिंश
८	सुसुमारगिरि
९	वैशाली

१. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५७।

२. रट्ठपाल-सुत्त (मज्झिम, २।४।२)।

३. महासतिपट्ठान-सुत्त (दीघ० २।९); महानिदान-सुत्त (दीघ० २।२); निदान-सुत्त (संयुत्त-निकाय); सम्मसन सुत्त (संयुत्त-निकाय); सतिपट्ठान-सुत्त (मज्झिम, १।१।१०); मागन्दिय-सुत्त (मज्झिम २।३।५); आनञ्जसप्पाय-सुत्त (मज्झिम० ३।१।६)।

४. विनय-पिटक (हिन्दी-अनुवाद), पृष्ठ १७१-१७२।

वर्षावास	स्थान जहाँ बिताया गया
१०	पारिलेय्यक वन
११	नाला ब्राह्मण-ग्राम
१२	वेरंजा
१३	चालिय पर्वत
१४	श्रावस्ती
१५	कपिलवस्तु
१६	आलवी
१७	राजगृह
१८—१९	चालिय पर्वत
२०	राजगृह
२१—४५	श्रावस्ती (अनाथपिण्डिक द्वारा निर्मित जेतवनाराम और मृगारमाता के पूर्वाराम प्रासाद में)
४६	वैशाली के समीप वेलुव गाम में।[1]

चूंकि पालि तिपिटक के विभिन्न सुत्तो का सकलन काल-क्रम की दृष्टि से नहीं हुआ है और अट्ठकथाओं मे भी सभी आवश्यक सूचना नही दी गई है, अतः भगवान् बुद्ध की चारिकाओं का परिपूर्ण कालक्रमानुपरक भौगोलिक विवरण देना हमारे वर्तमान ज्ञान की अवस्था में सम्भव नही है। हम कालक्रम के अनुसार एक स्थान से दूसरे स्थान तक भगवान् के चरणों का अनुगमन नही कर सकते। संगीतिकारों ने काल-परम्परा को पूर्णतः ग्रथित न कर हमें इसके लिये अवकाश नही दिया है। यह एक दुःखद अभाव है, परन्तु फिर भी पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओ से बहुत कुछ सामग्री सकलित कर हम टूटे हुए सूत्रों को मिला सकते हैं और खाली जगहों को भर सकते है। इस प्रकार के प्रयत्न के द्वारा हम भगवान्

---

१. तिब्बती परम्परा के अनुसार भगवान् बुद्ध ने १७ वर्षावास जेतवनाराम में किये, आठ राजगृह में और शेष अन्य स्थानों में। देखिए ई० जे० थॉमस : दि लाइफ ऑव बुद्ध, पृष्ठ ९७, पद-संकेत १।

बुद्ध की चारिकाओं के भूगोल को यहाँ प्रस्तुत करेंगे, बुद्धत्व-प्राप्ति से पूर्व उनकी यात्रा को भूमिका के रूप में रखते हुए।

आषाढ़ मास की पूर्णिमा के दिन, मध्य रात्रि के समय, राहुल के जन्म के सात दिन बाद,[१] कन्थक की पीठ पर सवार होकर, जिस पर उनके पीछे पूंछ से लगा हुआ छन्दक (छन्न) भी बैठा था, शाक्य कुमार ने कपिलवस्तु के दरवाजों को छोड़ा। कपिलवस्तु से निकल कर जिस जगह उन्होंने घोड़े को, कपिलवस्तु के अन्तिम दर्शन करने के लिये, मोड़ा, वहाँ "कन्थक-निवत्तन-चेतिय" (कन्थक निवर्तन चैत्य) बाद में बनवाया गया। इस चैत्य को पाँचवीं शताब्दी ईसवी में फा-ह्यान ने देखा था और जनरल कनिंघम ने इस चैत्य के स्थान को वर्तमान चंदावली नामक गाँव से मिलाया है, जो औमी नदी के पूर्वी किनारे पर, गोरखपुर से दस मील दक्षिण में, स्थित है।[२] उस रात शाक्य कुमार ने ३० योजन यात्रा की और उन्होंने तीन राज्यों, शाक्य, कोलिय और मल्लव को पार किया। प्रातःकाल होते-होते वे अनोमा नदी के किनारे पर आये और सारथी से पूछा, "यह कौन सी नदी है?" "देव, अनोमा है।" "हमारी प्रव्रज्या भी अनोमा होगी", ऐसा कहकर शाक्य कुमार ने घोड़े को एड़ लगाई और वह छलाँग मारकर नदी के दूसरे किनारे पर जा खड़ा हुआ। कनिंघम ने अनोमा नदी को वर्तमान औमी नदी से मिलाया है,[३] जो ठीक जान पड़ता है। कारलाइल ने अनोमा नदी को वर्तमान कुडवा नदी से मिलाया था। परन्तु इस समस्या में हम यहाँ नहीं पड़ेंगे। अनोमा नदी को पार कर शाक्य कुमार ने जिस स्थान पर अपने जूड़े (चूड़ा) को अपनी तलवार से काटा, वहाँ बाद में "चूडामणि चैत्य" की स्थापना की गई। "चूडामणि चैत्य" को कनिंघम ने वर्तमान चुरेय नामक गाँव से मिलाया है, जो चन्दावली से तीन मील उत्तर में है। आगे चलकर शाक्य कुमार ने राजसी वस्त्रों को फेंककर काषाय वस्त्र

---

१. "तदा सत्ताहजातो राहुलकुमारो होती ति"। जातकट्ठकथा, पठमो भागो, (भारतीय ज्ञानपीठ, काशी); देखिये जातक, प्रथम खंड, पृष्ठ ८१ (हिन्दी अनुवाद)।

२. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इंडिया, पृष्ठ ४९०।

३. वहीं, पृष्ठ ४८५-४९०।

ग्रहण किये। जिस स्थान पर उन्होंने ये वस्त्र पहने, वहाँ पर "काषाय ग्रहण" नामक चैत्य स्थापित किया गया, जिसे जनरल कनिंघम ने वर्तमान कसेयर नामक गाँव से मिलाया है, जो चन्दावली से साढ़े तीन मील दक्षिण-पूर्व में है।[1] अनोमा नदी के पूर्वी प्रदेश में यात्रा करते हुए गौतम अनूपिया के आम्रवन (अनूपियम्बवन) में पहुँचे और वहाँ सात दिन तक उन्होंने ध्यान किया। यह अनूपिया मल्लों का एक कस्बा था और राजगृह से तीस योजन दूर था। यहाँ से चलकर शाक्य कुमार ने एक दिन में तीस योजन की यात्रा की और राजगृह आ गये। इस प्रकार पालि विवरण के अनुसार कपिलवस्तु से राजगृह तक की दूरी साठ योजन थी।[2] अनूपिया निगम दोनों के बीच में स्थित था। कपिलवस्तु से राजगृह की इस यात्रा की दिशा सामान्यतः दक्षिण-पूर्व-दक्षिण की ओर रही होगी और कनिघम का अनुमान है कि अनूपिया से वैशाली होते हुए शाक्य कुमार राजगृह पहुँचे थे।[3] हम आगे चलकर देखेंगे कि बुद्ध-काल में एक प्रसिद्ध स्थल-मार्ग कपिलवस्तु से भी और ऊपर उत्तर में श्रावस्ती से चलकर सेतव्या, कपिलवस्तु, कुसिनारा, पावा, हत्थिगाम, भण्डगाम, वैशाली, पाटलिपुत्र और नालन्दा होता हुआ दक्षिण-पूर्व में राजगृह तक आता था, जिसका कुछ अनुगमन तथागत ने अपनी अन्तिम यात्रा में, जो उन्होंने राजगृह से कुसिनारा तक की, किया था। इस मार्ग के पड़ाव, जिन पर तथागत रुके, राजगृह से प्रारम्भ कर इस प्रकार थे, राजगृह, अम्बलट्ठिका, नालन्दा, पाटलिगाम, कोटिगाम, नादिका, वैशाली, भण्डगाम, हत्थिगाम, अम्ब-गाम, जम्बुगाम, भोगनगर, पावा और कुसिनारा। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि इस अन्तिम यात्रा के पड़ावों में वज्जि जनपद के हत्थिगाम, अम्बगाम और जम्बुगाम तथा मल्ल राष्ट्र के भोगनगर का तो उल्लेख है, परन्तु मल्ल राष्ट्र के ही अनूपिया निगम का उल्लेख नही है। इसका अर्थ यह है कि इस अन्तिम यात्रा में वैशाली से कुसिनारा के लिये जिस मार्ग को भगवान् ने लिया था, वह अनूपिया के पूर्व में

---

१. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इंडिया, पृष्ठ ४८८-४९१।

२. जातक, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ११३, (हिन्दी अनुवाद)।

३. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इंडिया, पृष्ठ ४८६

होकर जाता था।[१] शाक्य कुमार ने इस प्रथम यात्रा में अनूपिया के बाद राजगृह के लिये किस मार्ग को ग्रहण किया, इसका कोई स्पष्ट उल्लेख पालि तिपिटक या उसकी अट्ठकथाओं में नहीं है। परन्तु महावस्तु[२] में शाक्य कुमार का वैशाली होकर राजगृह जाना दिखाया गया है। अतः कनिंघम के पूर्वोक्त अनुमान को कि शाक्य कुमार वैशाली होकर राजगृह गये, महावस्तु से समर्थन प्राप्त होता है, जिसका पता सम्भवतः उन्हे नही था। मगध की राजधानी गिरिव्रज अर्थात् प्राचीन राजगृह मे पाण्डव पर्वत (पण्डव पब्बत) पर, जिसे वर्तमान रत्नकूट या रत्नगिरि से मिलाया गया है, बिम्बिसार इस आश्चर्यमय तरुण सन्यासी से मिलने गया और उसके समझाने-बुझाने पर भी जब शाक्य कुमार सासारिक जीवन बिताने के लिये तैयार न हुए, तो उसने उनसे यह प्रार्थना की कि वे ज्ञान प्राप्त करने के बाद राजगृह अवश्य पधारें।[३] राजगृह से शाक्यकुमार उरुवेला की ओर चल दिये और मार्ग में उन्होंने पहले आलार कालाम (अराड या आराड कालाम) और फिर उद्दक रामपुत्त (उद्रक या रुद्रक रामपुत्र) के पास साधना की, जिन दोनो के आश्रम राजगृह और उरुवेला के बीच इस मार्ग में ही अवस्थित थे।[४]

---

१. ई० जे० थॉमस: दि लाइफ ऑव बुद्ध, पृष्ठ १४८, पद-संकेत १।

२. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ११७-१२०।

३. पब्बज्जा-सुत्त (सुत्त निपात); जातकट्ठकथा, पठमोभागो, पृष्ठ ५०। (भारतीय ज्ञानपीठ, काशी); जातक, प्रथम खंड, पृष्ठ ८७। (हिन्दी अनुवाद); मिलाइये ललितविस्तर, पृष्ठ २४३; बुद्धचरित ११।७२; महावस्तु, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १९८-२००

४. यह विवरण जातक, प्रथम खंड, पृष्ठ ८७ (हिन्दी अनुवाद) तथा पासरासि (अरिय-परियेसन) सुत्त (मज्झिम १।३।६) पर आधारित है। बौद्ध संस्कृत ग्रन्थ महावस्तु (जिल्द दूसरी, पृष्ठ ११७-१२०) के अनुसार शाक्यकुमार पहले कपिलवस्तु से सीधे वैशाली गये जहाँ आलार कालाम से उनकी भेंट हुई और फिर राजगृह में वे उद्दक रामपुत्त से मिले। इस प्रकार इस विवरण के अनुसार आलार कालाम का आश्रम वैशाली में और उद्रक रामपुत्र का राजगृह में मानना पड़ेगा। 'बुद्धचरित' महाकाव्य (७।५४) में विन्ध्यकोष्ठ नामक स्थान में अराड का

आलार कालाम और उद्दक रामपुत्त के पास क्रमशः शिक्षा प्राप्त कर गौतम उरुवेला में सेनानी-ग्राम नामक स्थान पर पहुँचते हैं। इस स्थान को उन्होंने ध्यान के योग्य समझा और बैठ गये। यहीं कौण्डिन्य आदि पाँच परिव्राजक, जो पंचवर्गीय भिक्षु कहलाते हैं, गौतम को मिले और तब तक उनके पास रहे जब तक गौतम ने कठिन तपश्चर्या की। जब गौतम ने स्थूल आहार ग्रहण करना शुरू किया, तो उन्हें पतित समझ ये पञ्चवर्गीय भिक्षु उन्हें छोड़कर अपने पात्र-

---

आश्रम बताया गया है, जहाँ राजगृह में बिम्बिसार से मिलने (दसवाँ सर्ग) के बाद गौतम बोधिसत्व जाते हैं (बारहवाँ सर्ग)। इसके बाद गौतम का उद्रक रामपुत्र के आश्रम में जाना (१२।८४) तथा तदनन्तर नैरंजना के तट पर जाना (१२।९०) दिखाया गया है। अतः इस वर्णन से भी अराड के विन्ध्यकोष्ठ आश्रम का तथा उसके बाद उद्रक रामपुत्र के आश्रम का राजगृह और उरुवेला के बीच ही कहीं होना सिद्ध होता है। ललितविस्तर, पृष्ठ २४३-२४८ के अनुसार गौतम पहले वैशाली आये और आलार कालाम से मिले (तेन खलु पुनः समयेनाराडः कालामो वैशालीमुपनिसृत्य प्रतिवसतिस्म) और फिर राजगृह में बिम्बिसार से मिलने के बाद उद्रक रामपुत्र (रुद्रको रामपुत्रो) से मिले जो राजगृह में ही रहता था। इस प्रकार इस वर्णन के अनुसार 'महावस्तु' के समान ही आलार कालाम का आश्रम वैशाली में और उद्रक रामपुत्र का राजगृह में मानना पड़ेगा, जो पालि परम्परा से नहीं मिलता। परन्तु बौद्ध संस्कृत ग्रन्थ 'दिव्यावदान' (पृष्ठ ३९२) में पालि विवरण के अनुसार ही बिम्बिसार से मिलने के बाद गौतम का क्रमशः आराड और उद्रक रामपुत्र के पास जाना दिखाया गया है। अतः पालि परम्परा को ही हम प्रामाणिक मान सकते हैं। गौतम बोधिसत्व ने बाल्यावस्था में ही अपने पिता के खेत के पास जामुन के वृक्ष के नीचे प्रथम ध्यान प्राप्त किया था। इस तथ्य की अपने मन के अनुसार व्याख्या करते हुए आचार्य धर्मानन्द कोसम्बी ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि बोधिसत्व ने सम्भवतः यह ध्यान कोसल-निवासी आलार कालाम से ही सीखा होगा, जिसका आश्रम उनके मतानुसार कपिलवस्तु के कहीं आसपास या कोसल देश में होगा। उद्रक रामपुत्र के आश्रम को भी आचार्य कोसम्बी जी ने आलार कालाम के आश्रम के आसपास

चीवर ले इसिपतन चले गये। उरुवेला के सेनानी-गाम से इसिपतन की दूरी जातकट्ठकथा मे १८ योजन बताई गई है।[1]

छह वर्ष की कड़ी तपस्या के बाद एक दिन, वैशाख-पूर्णिमा के दिन, जिस दिन उन्हें बुद्धत्व-प्राप्ति होने वाली थी, प्रातःकाल गौतम ने समीप बहती हुई नेरंजरा (नीलाजन) नदी के सुप्पतिट्ठित तित्थं (सुप्रतिष्ठित तीर्थ) में स्नान किया और सुजाता-प्रदत्त खीर का भोजन किया। इसके बाद ४९ दिन तक उन्होंने कुछ नही खाया।

वैशाख (विसाख) पूर्णिमा के दिन, रात्रि के अन्तिम याम में, गौतम ने ज्ञान प्राप्त किया और वे बुद्ध बने। ज्ञान-प्राप्ति के बाद भगवान् ने सात सप्ताह बोधिवृक्ष और कुछ अन्य वृक्षों के नीचे समाधि-सुख में बिताये। बोधिवृक्ष के नीचे और उसके पास चार सप्ताह ध्यान करने के पश्चात् भगवान् अजपाल नामक बरगद के वृक्ष के नीचे गये। वहाँ एक सप्ताह तक उन्होंने ध्यान किया। इसके बाद भगवान् मुचलिन्द नामक वृक्ष के नीचे गये, जहाँ भी उन्होंने एक सप्ताह तक ध्यान किया।

तदनन्तर भगवान् ने राजायतन नामक वृक्ष के नीचे एक सप्ताह तक ध्यान किया। इस प्रकार बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद सात सप्ताह तक भगवान् ने बोधि-वृक्ष

कहीं माना है। इन दोनों ध्यान-गुरुओं से भेंट करने के बाद बोधिसत्व राजगृह गये, ऐसी नई कल्पना आचार्य कोसम्बी ने की है। देखिये उनकी पुस्तक 'भगवान् बुद्ध' (हिन्दी अनुवाद) पृष्ठ १०६-११७; 'भारतीय संस्कृति और अहिंसा', पृष्ठ ५२-५३। आदि से अन्त तक ऊलजलूल कल्पनाओं और निराधार तर्कों पर आश्रित होने के कारण आचार्य कोसम्बी जी का मत ग्राह्य नहीं हो सकता। पालि और अधिकांश बौद्ध संस्कृत साहित्य की परम्परा के स्वीकृत इस तथ्य को मानने में हमें कोई असंगति दिखाई नहीं पड़ती कि आलार कालाम और उद्दक रामपुत्त के आश्रम राजगृह और उरुवेला के बीच कहीं स्थित थे और वहीं, राजगृह में बिम्बिसार राजा से भेंट करने के पश्चात्, गौतम बोधिसत्व गये और उन गुरुओं से योग सीखा।

१. जातक, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ८९ (हिन्दी अनुवाद)।

और उसके पास विभिन्न वृक्षों के नीचे ध्यान किया। सातवें सप्ताह की समाप्ति पर उन्होंने मुंह धोया और दाँतौन की। इसी समय उत्कल जनपद से (उक्कला जनपदा) मध्यम देश की ओर जाते हुए (मज्झिमदेसं गच्छन्ता) तपस्सु और भल्लिक नामक दो व्यापारियों (वाणिजा) ने, जो पाँच सौ गाड़ियों के साथ (पञ्चहि सकटसतेहि) चले जा रहे थे, भगवान् को राजायतन वृक्ष के नीचे बैठे देखा और मट्ठे (मन्थं) और लड्डू (मधुपिण्डिकं) से भगवान् का सत्कार किया, जिसे उन्होंने कृपापूर्वक स्वीकार किया। तदनन्तर हम भगवान् को फिर अजपाल नामक बर्गद के पेड़ के नीचे जाते देखते हैं। यही पर उन्होंने धर्म-प्रचार का संकल्प किया और सम्भवतः इसी समय कहा, "रट्ठा रट्ठं विचरिस्सं सावके विनयं पुथु"[1] अर्थात् "अब मैं बहुत से शिष्यों को विनीत करते हुए एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र में विचरूँगा।" इस संकल्प के पश्चात् ही भगवान् वाराणसी के इसिपतन मिगदाय (ऋषिपतन मृगदाव) की ओर चल पड़ते हैं, जहाँ पंचवर्गीय भिक्षु उस समय निवास कर रहे थे। उरुवेला से काशियों के नगर वाराणसी को जाते हुए बोधगया

इसी प्रकार अंगुत्तर-निकाय के भरण्डु-कालाम-सुत्त से भी आचार्य धर्मानन्द कोसुम्बी ने यही निष्कर्ष निकालने का प्रयत्न किया है कि आलार कालाम का आश्रम कपिलवस्तु के समीप था। इस सुत्त में एक बार भगवान् बुद्ध के कपिलवस्तु में आने का उल्लेख है, जहाँ उन्हे कहीं उपयुक्त वास न मिलने के कारण एक रात के लिये अपने पूर्व के सब्रह्मचारी भरण्डु कालाम के आश्रम में टिकना पड़ा। इस भरण्डु कालाम के साथ उन्होंने आलार कालाम के आश्रम में योग सीखा था और अब यह भरण्डु कालाम आश्रम बनाकर यहाँ कपिलवस्तु के समीप निवास कर रहा था। चाहे भरण्डु कालाम उसी गोत्र का रहा हो जिसका आलार कालाम था और यह निश्चयतः ऐसा था भी। पर इससे यह तो निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि आलार कालाम का भी आश्रम कपिलवस्तु में रहा होगा। एक गुरु के कई शिष्य भिन्न-भिन्न स्थानों में आश्रम बनाकर रह सकते हैं और ऐसा ही एक भरण्डु कालाम था, जो कपिलवस्तु में रह रहा था। इससे आलार कालाम के आश्रम के कपिलवस्तु में होने की बात कहाँ से आती है ?

१. पधान-सुत्त (सुत्त-निपात)।

और गया के बीच रास्ते में भगवान् को उपक नामक आजीवक मिला और उससे उन्होंने कहा, "मैं जिन हूँ।"

क्रमशः 'चारिका करते हुए भगवान् वाराणसी के समीप ऋषिपतन मृगदाव में पहुँचे।[१] यहाँ उन्होंने आषाढ़ पूर्णिमा को धम्मचक्कपवत्तन-सुत्त का उपदेश दिया और पञ्चवर्गीय भिक्षुओं को त्रिरत्न-शरणागति प्राप्त हुई। इसके पाँच दिन बाद अनत्तलक्खण-सुत्तन्त का उपदेश दिया गया। इसके दूसरे दिन वाराणसी के प्रसिद्ध श्रेष्ठि-पुत्र यश की प्रव्रज्या हुई। इसके बाद यश के कई गृहस्थ मित्र भिक्षु बने और क्रमशः अर्हतों की संख्या, भगवान् बुद्ध को छोड़कर, ६० हो गई।

ऋषिपतन मृगदाव में भगवान् ने अपना प्रथम वर्षावास किया, जिसके बाद वे आश्विन पूर्णिमा (महापवारणा) के दिन ६० भिक्षुओं को भिन्न-भिन्न दिशाओं में धर्म-प्रचारार्थ जाने का आदेश देकर, स्वयं उरुवेला के सेनानीगाम की ओर चल पड़े। वाराणसी होते हुए वे पहले कप्पासिय-वनखण्ड में पहुँचे जहाँ भद्रवर्गीय नामक तीस व्यक्तियों को प्रव्रजित किया और फिर उरुवेला पहुँच कर भगवान् वहाँ तीन मास ठहरे। उरुवेला के तीन प्रसिद्ध जटाधारी साधु-बन्धुओं (तेभातिक जटिले), उरुवेल काश्यप, नदी काश्यप और गया काश्यप, को, उनके विशाल साधु-संघ के सहित भगवान् ने उपसंपादित किया। अपने इन अनुगामियों को साथ लेकर भगवान् उरुवेला से गया के गयासीस पर्वत पर गये जहाँ उन्होंने आदित्त-परियाय-सुत्त का उपदेश दिया। तदनन्तर भिक्षु-संघ-सहित भगवान् चारिका करते हुए पौष (फुस्स) मास की पूर्णिमा को राजगृह पहुँचे। यहाँ भगवान् लट्ठि-वनुय्यान (यष्टिवन उद्यान—वर्तमान जेठियन) के सुप्रतिष्ठ चैत्य में ठहरे। यहीं मगधराज श्रेणिक बिम्बिसार उनसे मिलने आया। दूसरे दिन भोजनोपरान्त

---

१. बीच की यात्रा का विवरण पालि तिपिटक में नहीं है। परन्तु ललित-विस्तर, पृष्ठ ४०६-४०७, में बीच के पड़ावों का भी उल्लेख है। उदाहरणतः वहाँ कहा गया है कि बीच में गंगा नदी को पार करने में भगवान् को कठिनाई हुई, क्योंकि उनके पास नाव वाले को देने के लिये पैसे नहीं थे। बाद में बिम्बि-सार को जब यह बात मालूम पड़ी तो उसने सब साधुओं को निःशुल्क पार उतारने की आज्ञा दी।

बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को उसने वेणुवन उद्यान अर्पित किया। इसके बाद भगवान् दो मास तक और राजगृह में ठहरे और फिर इसी वर्ष, वर्षावास से पूर्व, लिच्छवियों की प्रार्थना पर, जो उन्होंने महालि के द्वारा भेजी थी, भगवान् वैशाली गये। इस समय वैशाली नगरी भयंकर महामारी से पीड़ित थी। भगवान् ने वहाँ जाकर रतन-सुत्त का उपदेश दिया और वैशालीवासियों के सब रोग-दुःख दूर हुए।[1] वैशाली से लौटकर भगवान् फिर राजगृह आ गये जहाँ वे वेणुवन में ठहरे। परन्तु शीघ्र ही फाल्गुण (फग्गुण) की पूर्णिमा को उन्होंने अपने पिता और परिजनों के अनुकम्पार्थ, अपने बाल्यावस्था के मित्र काल उदायी की प्रार्थना पर, जिसे शुद्धोदन ने उन्हें कपिलवस्तु लाने के लिये भेजा था, कपिलवस्तु के लिये प्रस्थान कर दिया। जातकट्ठकथा की निदान-कथा में राजगृह से कपिलवस्तु की दूरी ६० योजन बतायी गई है।[2] भगवान् दो मास में कपिलवस्तु पहुँचना चाहते थे। इसलिये धीमी चाल से चले। भगवान् के साथ अंग-मगध जनपदों के अनेक निवासी भी थे। निश्चित समय पर भगवान् कपिलवस्तु पहुँचे, जहाँ उन्हें न्यग्रोधाराम में निवास प्रदान किया गया। मज्झिम-निकाय की अट्ठकथा के अनुसार भगवान् बुद्ध की कपिलवस्तु की इस प्रथम यात्रा के अवसर पर ही उनकी मौसी महापजावती गोतमी ने अपने हाथ से काते, बुने, नये दुस्स (धुस्से) के जोड़े को भगवान् को भेंट करने की इच्छा प्रकट की, जिसका वर्णन मज्झिम-निकाय के दक्खिणा-विभंग-सुत्त में है। नन्द और राहुल की प्रव्रज्या इसी समय हुई और उसके थोड़े समय बाद ही भगवान् कपिलवस्तु से चल दिये और मल्लों के देश में चारिका करते हुए अनूपिया के आम्रवन में पहुँचे, जहाँ भद्दिय, अनुरुद्ध, आनन्द, भृगु, किम्बिल, देवदत्त और उपालि की प्रव्रज्या हुई। आगे चलते हुए भगवान् राजगृह लौट आये, जहाँ के सीतवन में (जो एक श्मशान-वन था) उन्होंने अपना दूसरा वर्षावास किया।

इसी स्थान पर श्रावस्ती का श्रेष्ठी सुदत्त (अनाथपिण्डिक), जो राजगृह मे अपने किसी काम से आया था, भगवान् से मिला और उनसे प्रार्थना की

---

१. धम्मपदट्ठकथा, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४३६-४४०।

२. जातक, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ११३ (हिन्दी अनुवाद)।

कि भगवान् अपना अगला वर्षावास कृपा कर श्रावस्ती में करें। भगवान् ने उसकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और राजगृह से चलकर पहले वैशाली पहुँचे, जहाँ की महावन कूटागारशाला में उन्होंने विहार किया और फिर आगे चारिका करते हुए श्रावस्ती पहुँचे। यहाँ अनाथपिण्डिक ने ५४ कोटि धन से जेतवनाराम बनवा कर आगत-अनागत चातुर्दिश भिक्षु-संघ को अर्पित किया। डा० ई० जे० थॉमस[1] और मललसेकर[2] ने दिखाया है कि इसी समय विशाखा मृगारमाता ने पूर्वाराम नामक विहार बनवाकर बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को दान किया। परन्तु महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने इस घटना को भगवान् बुद्ध के बाईसवें वर्षावास के समय घटित बताया है।[3] चूंकि घटनाओं का कालानुक्रम-परक वर्णन पालि तिपिटक में नही है और अट्ठकथाओं का भी इस विशिष्ट घटना के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट साक्ष्य नहीं है, अतः निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। विनय-पिटक के चुल्लवग्ग में जेतवन-स्वीकार के बाद विहार की चीजों के उपयोग सम्बन्धी कुछ नियमों का विधान है और उसके बाद ही विशाखा मृगार-माता द्वारा हस्तिनख प्रासाद बनवाने की इच्छा का उल्लेख है।[4] परन्तु, जैसा हम अभी कह चुके हैं, यह कालानुक्रम का सूचक नहीं माना जा सकता।

इसी प्रकार सन्देहास्पद बात यह है कि भगवान् ने अपनी तृतीय वर्षा (वस्सा) श्रावस्ती में ही बिताई या वे लौटकर राजगृह आये। जैसा हम पहले देख चुके है, अनाथपिण्डिक ने प्रथम बार राजगृह में भगवान् से यह प्रार्थना की थी कि वे अपना अगला वर्षावास श्रावस्ती में करने की कृपा करें। विनय-पिटक के चुल्लवग्ग के वर्णनानुसार उसने भगवान् से कहा था, "भन्ते ! भिक्षु-सघ के साथ भगवान् श्रावस्ती में वर्षावास स्वीकार करें।" भगवान् ने इसके उत्तर में कहा था, "शून्य आगार में गृहपति ! तथागत अभिरमण (विहार) करते हैं।"[5] तथागत के इस अभिप्राय को

---

१. दि लाइफ ऑव बुद्ध ऐज लीजेण्ड एण्ड हिस्ट्री, पृष्ठ १०५-१०७।
२. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ७९६।
३. बुद्धचर्या, पृष्ठ ३१४–३१९।
४. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ४६५-४७०।
५. वहीं, पृष्ठ ४६१।

समझकर ही अनाथपिण्डिक ने जेतवनाराम को शान्त, एकान्त स्थान में, न गाँव से बहुत दूर, न बहुत समीप, बनवाया था। अतः विनय-पिटक के इस प्रसंग से तो यही जान पड़ता है कि भगवान् जब श्रावस्ती गये और जेतवन उन्हें दान किया गया तो वे उस वर्षा, जो उनकी बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद की तृतीय वर्षा थी, श्रावस्ती में ही रहे।[1] परन्तु विनय-पिटक के चुल्लवग्ग के इसके ठीक आगे के विवरण में हम भगवान् को श्रावस्ती से क्रमशः कीटागिरि (काशी जनपद) और आलवी (पञ्चाल राज्य) होते हुए राजगृह पहुँचते देखते है,[2] जिससे यह प्रकट होता है कि उन्होंने वर्षावास राजगृह में ही किया। यह भी सम्भव है कि विनय-पिटक के ये दोनों विवरण विभिन्न समयों से सम्बन्धित हों और एक साथ लगातार क्रम से रख दिये गये हों। विनय-पिटक के समान अट्ठकथाओं का साक्ष्य भी इस विषय में हमारी सहायता नही करता। इस घटना को लेकर उनमें भी वैमत्य दिखाई पड़ता है। अंगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा और बुद्धवंस की अट्ठकथा के अनुसार, जिनके साक्ष्य को हम पहले देख चुके है, भगवान् ने तृतीय वर्षावास राजगृह में ही किया। परन्तु यदि हम विशाखा मृगारमाता के पूर्वाराम प्रासाद के दान को भगवान् की इस यात्रा से सम्बन्धित मानें, जैसा महामति राहुल सांकृत्यायन ने नहीं माना है, तो धम्मपदट्ठकथा के अनुसार हमें मानना पड़ेगा कि जब पूर्वाराम प्रासाद बन चुका था तो विशाखा ने भगवान् से प्रार्थना की थी, "भन्ते, भगवान् इस चातुर्मास में भिक्षु-संघ को लेकर यहीं वास करें। मैं प्रासाद का उत्सव करूँगी।"[3] जिसे भगवान् ने स्वीकार कर लिया था। इस प्रकार तथागत का तृतीय वर्षावास श्रावस्ती के पूर्वाराम प्रासाद में मानना पड़ेगा और अंगुत्तर-निकाय और बुद्धवंस की अट्ठकथाओं से स्पष्ट विरोध होगा। अतः ऐसा लगता है कि

---

१. तिब्बती दुल्व (विनय-पिटक) भी भगवान् बुद्ध का तृतीय वर्षावास श्रावस्ती में बिताना ही मानती है। देखिए रॉकहिल : दि लाइफ ऑव बुद्ध, पृष्ठ ६२, पद-संकेत १।

२. विनय-पिटक, पृष्ठ ४७१-४७४।

३. बुद्धचर्या, पृष्ठ ३२७ में उद्धृत।

पूर्वाराम प्रासाद का दान जेतवन-दान से काफी बाद की घटना है और भगवान् ने अपना तृतीय वर्षावास राजगृह में ही किया।

भगवान् ने अपना चतुर्थ वर्षावास राजगृह के वेणुवन कलन्दक निवाप में किया। यहीं उन्होंने राजगृह के एक श्रेष्ठि-पुत्र को, जिसका नाम उग्गसेन (उग्र-सेन) था और जो रस्सी पर नाच दिखाने वाली एक नटिनी के प्रेम में पड़कर स्वयं इस काम को करने लगा था, बुद्ध-धर्म में दीक्षित किया।[1]

बुद्धत्व-प्राप्ति के पाँचवें वर्ष में भगवान् के पिता शुद्धोदन की मृत्यु हो गई। इसी समय शाक्यों और कोलियों में रोहिणी नदी के पानी को लेकर झगड़ा हुआ।[2] भगवान् इस समय वैशाली की महावन कूटागारशाला में विहर रहे थे। वे वहाँ से कपिलवस्तु गये और वहाँ के न्यग्रोधाराम में ठहरे। यह भगवान् के द्वारा की गई कपिलवस्तु की दूसरी यात्रा थी। इसी समय महापजावती गोतमी ने भगवान् से प्रार्थना की कि वे उन्हें भिक्षुणी बनने की अनुमति दे दें। भगवान् ने उसकी प्रार्थना स्वीकार नही की और वैशाली लौट आये, जहाँ उन्होंने अपना पाँचवाँ वर्षावास किया। यहीं पर फिर महापजावती गोतमी ने आकर आनन्द की सहायता से भगवान् से भिक्षुणी बनने की अनुमति प्राप्त कर ली और भिक्षुणी-संघ का प्रारम्भ हुआ।

---

१. धम्मपदट्ठकथा, जिल्द चौथी, पृष्ठ ५९।

२. डा० ई० जे० थॉमस (दि लाइफ ऑव बुद्ध, पृष्ठ १०७) और मललसेकर (डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ७९६) ने इस घटना को बुद्धत्व-प्राप्ति के पाँचवें वर्ष में ही दिखाया है, जब कि उसके शमनार्थ भगवान् वहाँ वैशाली से कुछ समय के लिये गये। महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने उक्त घटना को भगवान् बुद्ध के पन्द्रहवें वर्षावास के समय घटित दिखाया है जिसे उन्होंने कपिलवस्तु में किया। देखिये बुद्धचर्या, पृष्ठ २३३-२३५। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि थेरीगाथा-अट्ठकथा, सुत्त-निपात-अट्ठकथा और अंगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा में शाक्य और कोलियों के विवाद का वर्णन है, परन्तु वहाँ इसके निश्चित समय का उल्लेख नहीं है। अतः दोनों ही मत अवकाश प्राप्त कर सकते हैं।

छठी वर्षा भगवान् ने मंकुल पर्वत पर बिताई, जिसकी स्थिति अभी निश्चित नहीं हो सकी है। डा० मललसेकर ने मंकुल पर्वत को सूनापरान्त जनपद के मंकुलकाराम नामक विहार से मिलाया है, जहाँ स्थविर पूर्ण (पुण्ण) धर्म प्रचार करते हुए निवास करते थे।[१] इस प्रकार उनके मतानुसार इसे सूनापरान्त जनपद में होना चाहिए। परन्तु यह पहचान सर्वथा असन्दिग्ध नहीं है।[२] मंकुलकाराम में

---

१. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४०७।

२. सबसे बड़ी बात तो यह है कि बुद्धत्व-प्राप्ति की छठी वर्ष में ही बुद्ध-धर्म का सूनापरान्त जनपद अर्थात् ठाणा और सूरत के जिलों तथा उनके आसपास के प्रदेश तक इस हद तक प्रचार, जो हमें मंकुलकाराम को मंकुल पर्वत मानने पर मानना पड़ेगा, पालि विवरणों के आधार पर संगत नहीं जान पड़ता। पूर्ण का एक व्यापारी के रूप में सूनापरान्त जनपद से श्रावस्ती आना और भगवान् बुद्ध के दर्शन कर स्थविर हो जाना और फिर अपनी जन्म-भूमि सूनापरान्त में जाकर विहार स्थापित करवाना और बुद्धत्व-प्राप्ति की छठी वर्ष में ही भगवान् बुद्ध को वहाँ आने के लिये निमन्त्रित कर देना, यह सब कुछ अल्प समय में अधिक काम कर लिया गया जान पड़ता है, यद्यपि नितान्त असम्भव तो नहीं कहा जा सकता। फिर भी, जब तक मंकुल पर्वत की अन्य ठीक स्थिति निर्धारित न हो जाय, निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने 'महामानव बुद्ध', पृष्ठ १०, में मंकुल पर्वत को बिहार का कोई पहाड़ माना है, परन्तु अपनी मान्यता का उन्होंने कोई कारण नहीं दिया है। डा० नलिनाक्ष दत्त और श्रीकृष्ण दत्त बाजपेयी ने (उत्तर प्रदेश में बौद्ध धर्म का विकास, पृष्ठ ७५, टिप्पणी) में मंकुल पर्वत के सम्बन्ध में इतना तो (सम्भवतः मललसेकर के उपर्युक्त मत को ध्यान में रखते हुए) कह दिया है कि "यह सूनापरान्त का मंकुलकाराम नहीं है", परन्तु निश्चित रूप से वे इसकी अन्य कोई स्थिति नहीं बता पाये हैं, सिवाय इसके कि "यह श्रावस्ती के निकट का कोई एकान्त स्थान हो सकता है", जिसके लिये भी उन्होंने कोई कारण नहीं दिया है। जब तक किसी ठीक स्थिति का पता नहीं लगता, हम मललसेकर के मत को मानना ही अधिक समीचीन समझते हैं।

स्थविर पूर्ण की प्रार्थना पर भगवान् बुद्ध गये थे, परन्तु वहाँ वर्षावास के केवल सात दिन ठहरे थे।[1] स्थविर पूर्ण के उपासकों ने यहाँ भगवान् के लिए एक "गन्धकुटी" और "चन्दनशाला" (चन्दनसाला) बनवाई थीं। भगवान् श्रावस्ती से मंकुल-काराम को जाते हुए मार्ग में सच्चबन्ध (सच्चबद्ध भी पाठान्तर) नामक पर्वत पर ठहरे थे और वहाँ से वापस आते हुए उन्होंने पहले नम्मदा (नर्मदा) नदी के तट पर विहार किया था और फिर सच्चबन्ध पर्वत पर होते हुए श्रावस्ती लौटे थे। बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद छठे वर्ष में ही श्रावस्ती में ऋद्धि-प्रातिहार्य का प्रदर्शन किया गया।

सातवाँ वर्षावास भगवान् ने त्रायस्त्रिंश लोक के पाण्डु-कम्बल-शिला नामक स्थान में किया और पवारणा (आश्विन पूर्णिमा) के दिन सकस्स (संकाश्य—वर्तमान सकिसा बसन्तपुर, जिला फर्रुखाबाद, काली नदी के पास, उत्तरी रेलवे के मोटा स्टेशन के समीप) नामक स्थान पर उतरे, जिसकी दूरी धम्मपदट्ठकथा[2] तथा जातक[3] में श्रावस्ती से ३० योजन बताई गई है। कण्ह जातक के अनुसार भगवान् संकाश्य से श्रावस्ती चले गये, जहाँ वे अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में ठहरे। डॉ० ई० जे० थॉमस का अनुमान है कि श्रावस्ती की चिंचा माणविका ने इसी समय अपना निन्दित काण्ड रचा[4]। परन्तु महापडित राहुल सांकृत्यायन ने इसे बुद्धत्व-प्राप्ति के इक्कीसवें वर्ष में रक्खा है।[5] धम्मपदट्ठकथा में इस काण्ड के काल के सम्बन्ध में केवल इतनी ही सांकेतिक सूचना दी गई है कि जब "प्रथम बोधि में (बोधि के बाद के बीस वर्षों में) दशबल (बुद्ध) को महालाभ-सत्कार उत्पन्न हुआ",[6] तो उस समय चिंचा ने तैथिकों की अभिसन्धि से उक्त काण्ड रचा। अतः यह

---

१. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द तीसरी, पृष्ठ १५।

२. जिल्द तीसरी, पृष्ठ १९९।

३. जिल्द चौथी, पृष्ठ २६५।

४. दि लाइफ ऑव बुद्ध, पृष्ठ ११४।

५. बुद्धचर्या, पृष्ठ ३१६।

६. बुद्धचर्या, पृष्ठ ३१६ में उद्धृत; मिलाइये जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ १८७ भी।

काण्ड बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद छठे वर्ष से लेकर (जब भगवान् ने ऋद्धि-प्रातिहार्य किया) इक्कीसवें वर्ष तक कभी भी रक्खा जा सकता है।

आठवीं वर्षा भगवान् बुद्ध ने भग्गों के देश में सुंसुमार गिरि के समीप भेसकलावन मृगदाव में बिताई, जहाँ वे वैशाली से गये थे।[१] आदर्श वृद्ध दम्पती नकुल-पिता और नकुल-माता, जो भग्ग देश के सुंसुमार-गिरि-नगर के निवासी थे, यहीं भगवान् से मिले। एक अत्यन्त आश्चर्यजनक व्यवहार, अंगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा के अनुसार, इन वृद्ध व्यक्तियों ने इस समय दिखाया। जैसे ही उन्होंने भगवान् को देखा वे उनसे लिपट गये और कहने लगे, "यह हमारा पुत्र है।" और फिर वात्सल्य स्नेह से अभिभूत होकर भगवान् के चरणों में गिर गये और रोकर कहने लगे, "पुत्र, तुम इतने दिनों से हमें छोड़कर कहां चले गये थे ? तुम इतने दिन तक कहाँ रहे ?" बुद्ध ने उनके इस व्यवहार की ओर ध्यान नहीं दिया और उन्हें धर्मोपदेश किया। वस्तुतः बात यह थी कि नकुल-पिता और नकुल-माता भगवान् बुद्ध के पूर्व जन्मों में अनेक बार पिता-माता, दादा-दादी आदि रहे थे। भगवान् के सुंसुमार-गिरि में निवास करने के समय नकुल-पिता और नकुल-माता ने अनेक बार उन्हें भोजन के लिये निमन्त्रित किया और उन्हें बताया कि उन्होंने अपने जीवन में कभी एक दूसरे पर क्रोध नही किया है और उनकी इच्छा है कि वे इसी प्रकार परस्पर प्रेमपूर्वक दूसरे जन्म में भी रहें। भगवान् ने इन दोनों उपासकों को विश्वासकों में श्रेष्ठ बताया था।

नवीं वर्षा भगवान् बुद्ध ने कौशाम्बी में बिताई। इसी वर्ष वे कुरु देश में चारिका के लिये भी गये और उसके कम्मासदम्म नामक प्रसिद्ध निगम में मागन्दिय ब्राह्मण द्वारा अपनी सुवर्णवर्णा कन्या मागन्दिया को उन्हें प्रदान करने का प्रस्ताव किया गया, जिसके उत्तर में भगवान् ने ब्राह्मण से कुछ न कहकर किसी दूसरे से बोलने की भाँति कहा, "तृष्णा, रति और राग को देखकर मैथुन-भाव में मेरा विचार नहीं हुआ। यह मल-मूत्र-पूर्ण क्या है, जिसे कोई पैर से भी न छूना चाहे।"[२]

बुद्धत्व-प्राप्ति के दसवें वर्ष में कौशाम्बी के भिक्षु-संघ में एक कलह उत्पन्न

---

१. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ४३६।

२. मागन्दिय-सुत्त (सुत्त-निपात)।

हो गया। किसी भिक्षु को उत्क्षेपण का दण्ड दिया गया था। उसी की वैधता या अवैधता को लेकर यह झगड़ा हुआ, जिसके शमन का प्रयत्न भगवान् ने किया, परन्तु सफल न हुए। खिन्न होकर भगवान् एकान्तवास की इच्छा करते हुए कौशाम्बी के घोषिताराम से, जहाँ यह विवाद चल रहा था, चल दिये और क्रमशः बालकलोणकार गाम और पाचीनवंस (मिग) दाय में चारिका करते हुए पारिलेय्यक वन में पहुँचे,[1] जहाँ के रक्षित वनखण्ड में उन्होंने अपना दसवाँ वर्षावास किया। बालकलोणकार गाम कौशाम्बी के पास एक गाँव था जिसे हम वंस या चेदि जनपद में मान सकते हैं। पाचीनवंस (मिग) दाय के सम्बन्ध में, जैसा हम चेदि राष्ट्र के विवेचन में देखेंगे, हमें यह निश्चित रूप से मालूम है कि वह चेदि राष्ट्र में था। पारिलेय्यक वन और उसके रक्षित वनखण्ड को सम्भवतः चेदि राष्ट्र में ही होना चाहिए। पारिलेय्यक वन के रक्षित वनखण्ड में वर्षावास करने के बाद भगवान् श्रावस्ती चले गये और वहाँ अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार करने लगे।[2] इस समय तक कौशाम्बी के भिक्षुओं को सुबुद्धि आ चुकी थी। वे श्रावस्ती गये और शास्ता से क्षमा-याचना की। संघ में फिर एकता आ गई।

ग्यारहवाँ वर्षावास भगवान् ने मगध देश के नाला नामक ब्राह्मण-ग्राम में किया, जो बोधिवृक्ष के समीप एक गाँव था। अंगुत्तर-निकाय और बुद्धवंस की अट्ठकथाओं के अनुसार भगवान् बुद्ध ने अपना ग्यारहवाँ वर्षावास नाला नामक ग्राम में ही किया, परन्तु डॉ० ई० जे० थॉमस ने भगवान् बुद्ध को अपना ग्यारहवाँ वर्षावास एकनाला नामक ग्राम में करते दिखाया है,[3] जिसका अनुगमन मललसेकर ने भी किया है।[4] एकनाला ग्राम मगध के दक्षिणागिरि जनपद में था, जो राजगृह के दक्षिण में स्थित था। नाला और एकनाला गाम को एक ही गाँव माना जाय या वे भिन्न-भिन्न गाँव थे, इस समस्या के समाधान का प्रयत्न हम तृतीय परिच्छेद में मगध राज्य का विवेचन करते समय करेंगे। नाला और एक-

---

१. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३३१-३३३।
२. वहीं, पृष्ठ ३३३–३३४।
३. दि लाइफ ऑव बुद्ध, पृष्ठ ११७।
४. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ७८८।

नाला को भिन्न-भिन्न गाँव मानते हुए भी यह कहा जा सकता है कि नाला में ग्यारहवाँ वर्षावास करने के समय के आसपास ही भगवान् ने दक्षिणागिरि जनपद के एक-नाला ब्राह्मण-ग्राम में विहार किया और इसी समय सुत्त-निपात के कसिभारद्वाज-सुत्त में वर्णित कसि भारद्वाज से उनका संलाप हुआ।

बारहवीं वर्षा भगवान् ने वेरंजा[1] में बिताई। यह स्थान मथुरा और सोरेय्य (सोरों, जिला एटा) के बीच में था। अतः इसे सम्भवतः सूरसेन या पंचाल जनपद में होना चाहिए। भगवान् बुद्ध वेरंजा में श्रावस्ती से आये थे और वेरंजा में वर्षावास करने के उपरान्त, वे क्रमशः सोरेय्य, सकस्स और कण्णकुज्ज नामक स्थानों में होते हुए पयागपतिट्ठान (प्रयाग प्रतिष्ठान) पहुँचे, जहाँ उन्होंने गंगा को पार किया। आगे बढ़ते हुए भगवान् वाराणसी पहुँचे, जहाँ कुछ दिन विहार करने के पश्चात् वे वैशाली की महावन कूटागारशाला में चले गये।[2] वहाँ से भगवान् श्रावस्ती गये, जहाँ पहुँचकर उन्होंने चुल्लसुक जातक और बालोदक

---

१. सर्वास्तिवादी परम्परा में इस स्थान का नाम वैरम्भ बताया गया है। महाकवि अश्वघोष ने वैरंजा या वेरंजा ही नाम दिया है और यहाँ भगवान् के द्वारा विरिंच नामक एक महासत्व को दीक्षित किये जाने का उल्लेख किया है। बुद्ध-चरित २१।२७।

२. समन्तपासादिका, जिल्द पहली, पृष्ठ २०१; सर्वास्तिवादी परम्परा के अनुसार भगवान् बुद्ध वेरंजा में आये तो श्रावस्ती से ही थे और पालि परम्परा के समान इस परम्परा के अनुसार भी वे लौटकर वैशाली गये। परन्तु सर्वास्तिवादी परम्परा के अनुसार वैरम्भ (वेरंजा) से लेकर वैशाली तक की यात्रा में भगवान् बुद्ध ने एक भिन्न मार्ग का अनुसरण किया। इस परम्परा के अनुसार वे वैरम्भ से अयोध्या गये, अयोध्या से साकेत, साकेत से श्रावस्ती, श्रावस्ती से कोसल देश के नगरबिन्द नामक ब्राह्मण-ग्राम में और वहाँ से वैशाली। इस प्रकार ज्ञात होगा कि सर्वास्तिवादी परम्परा के अनुसार भगवान् श्रावस्ती होते हुए वैशाली पहुँचे जबकि पालि परम्परा में, जैसा हम पहले दिखा चुके हैं, वैशाली जाने के बाद उनका श्रावस्ती पहुँचना सिद्ध होता है। वेरंजा की स्थिति के सम्बन्ध में विस्तृत विवेचन के लिये देखिये आगे पंचाल जनपद का विवेचन।

जातक का उपदेश दिया। चुल्लसुक जातक में कहा गया है कि भगवान् वेरंजा में वर्षावास कर क्रमशः चारिका करते हुए श्रावस्ती पहुँचे, अतः उपर्युक्त मार्ग से वैशाली आने के पश्चात् ही भगवान् श्रावस्ती गये, ऐसा मानना यहाँ ठीक होगा। धम्मपदट्ठकथा के वर्णनानुसार भगवान् जब वेरंजा में वर्षावास कर रहे थे तो वहाँ भयंकर दुर्भिक्ष पड़ रहा था। उत्तरापथ के ५०० घोड़ों के सौदागर, जो वहाँ पड़ाव डाले हुए थे, प्रस्थ-प्रस्थ (पसौ-पसौं) भर जौ भिक्षुओं को दे देते थे, जिन्हें ओखल में कूट कर भिक्षु खाते थे और उसी में से एक पसौ सिल पर पीस कर भगवान् को दे देते थे।[१] वेरंजा में दुर्भिक्ष के कारण इस प्रकार भगवान् को तीन मास जौ खानी पड़ी थी। सूरसेन-पञ्चाल में आज भी जौ की खेती काफी की जाती है। जिस वेरंज या वेरजक नामक ब्राह्मण[२] ने भगवान् को वेरंजा में वर्षावास करने के लिये निमंत्रित किया था, उसने सम्पन्न होते हुए भी लापरवाही की, परन्तु तथागत ने फिर भी उस पर अनुकम्पा करते हुए वर्षावास की समाप्ति पर उसे अपने अन्यत्र चारिका के लिए जाने की इच्छा की सूचना दी और अन्तिम दिन उसके यहाँ भोजन भी किया।[३] अंगुत्तर-निकाय[४] के वर्णनानुसार भगवान् बुद्ध मथुरा गये थे और वहाँ उन्होंने उपदेश भी दिया था। इसी निकाय के वेरंजक-ब्राह्मण-सुत्त में हम

---

१. विनय-पिटक, पाराजिक पालि, पृष्ठ ९ (भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित)।

२. वस्तुतः इस ब्राह्मण का नाम उदय था। वेरंजा वासी होने के कारण इसे वेरंजक कहकर पुकारा गया है। समन्तपासादिका, जिल्द पहली, पृष्ठ १११; सर्वास्तिवादी परम्परा में इस ब्राह्मण का नाम अग्निदत्त बताया गया है और उसे वैरम्भ (वेरंजा) का शासक कहा गया है। धम्मपदट्ठकथा के अनुसार अग्गिदत्त (अग्निदत्त) कोसल देश के राजा महाकोसल का पुरोहित था, जो गृह-त्याग करने के बाद अपने दस हजार शिष्यों सहित अंग-मगध और कुरु राष्ट्र की सीमा पर निवास करता था। ऐसा लगता है कि सर्वास्तिवादी परम्परा ने इसी ब्राह्मण के साथ वेरंजक ब्राह्मण को मिला दिया है।

३. जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४९४।

४. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५७; जिल्द तीसरी, पृष्ठ २५७।

भगवान् को मथुरा और वेरंजा के बीच रास्ते में जाते देखते हैं। अतः पालि विवरण से यह निश्चित जान पड़ता है कि बुद्धत्व-प्राप्ति के बारहवें वर्ष में ही भगवान् बुद्ध ने मथुरा की यात्रा की[1] और उसके बाद लौटकर वे वेरंजा ही आ गये, जहाँ से उन्होंने अपनी श्रावस्ती तक की पूर्वोक्त यात्रा की।

बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद तेरहवाँ वर्षावास भगवान् ने चेति या चेतिय राष्ट्र के चालिय या चालिक पर्वत पर किया, जो उसी राष्ट्र के पाचीन वंसदाय में था और जिसके पास ही जन्तुगाम और किमिकाला नदी थे।[2] इस समय आयुष्मान् मेघिय भगवान् बुद्ध की सेवा में थे।

चौदहवीं वर्षा भगवान् ने श्रावस्ती में बिताई। इस समय राहुल की अवस्था बीस वर्ष की थी। विनय-पिटक के नियम के अनुसार उनका उपसम्पदा संस्कार इसी समय हुआ।

भगवान् का पन्द्रहवाँ वर्षावास कपिलवस्तु में हुआ। इस समय उनके श्वसुर सुप्रबुद्ध ने भगवान् का घोर तिरस्कार किया। सुप्रबुद्ध समझता था कि गृहस्थ जीवन को त्याग कर गौतम ने उसकी पुत्री भद्रा कात्यायनी (राहुल-माता) के साथ अन्याय किया है। इसलिये वह भगवान् बुद्ध से क्रुद्ध था। शराब पीकर वह कपिल-

---

१. परन्तु दिव्यावदान (पृष्ठ ३४८) में कहा गया है कि भगवान् बुद्ध ने अपने परिनिर्वाण-काल से कुछ पहले ही मथुरा की यात्रा की। "भगवान् . . . परि-निर्वाणकालसमये . . . मथुरामनुप्राप्तः।" पालि परम्परा से इसका मेल बैठाना कठिन है।

२. डा० नलिनाक्ष दत्त तथा श्रीकृष्णदत्त बाजपेयी ने चालिय गिरि को, जहाँ भगवान् बुद्ध ने तेरहवाँ वर्षावास किया, कपिलवस्तु के निकट बताया है। देखिये उनका 'उत्तर प्रदेश में बौद्ध धर्म का विकास', पृष्ठ ७९। इसे पालि परम्परा के अनुसार ठीक नहीं माना जा सकता। इसी प्रकार महापण्डित राहुल सांकृत्यायन का उसे बिहार में मानना (बौद्ध संस्कृति, पृष्ठ १०), जिसका अनुगमन भदन्त शान्ति भिक्षु (महायान, पृष्ठ ६२) ने भी किया है, अप्रामाणिक है। चालिय पर्वत को तो चेति राष्ट्र से अन्यत्र कहीं मानने की आवश्यकता ही नहीं।

वस्तु के मार्ग में जा बैठा और भगवान् बुद्ध को आगे नहीं बढ़ने दिया। भगवान् को विवश होकर लौटना पड़ा।[१] इसी वर्ष सुप्रबुद्ध की मृत्यु हो गई।

सोलहवाँ वर्षावास भगवान् ने पचाल देश के आलवी नामक नगर (वर्तमान अर्वल, जिला कानपुर या नवल या नेबल, जिला उन्नाव) में किया, जहाँ वे एक रात आलवक यक्ष के निवास-स्थान पर और बाद में मुख्यतः अग्गालव चैत्य में ठहरे। हस्तक आलवक के साथ भगवान् का सवाद, जो सुत्त-निपात के आलवक-सुत्त में निहित है, इसी समय आलवी में हुआ। विनय-पिटक से हमें सूचना मिलती है कि भगवान् श्रावस्ती से काशियों के निगम कीटागिरि मे आये थे और फिर वहाँ से क्रमशः चारिका करते हुए आलवी नगर पहुँचे थे।[२] आलवी में वर्षावास करने के पश्चात् भगवान् राजगृह चले गये।[३]

बुद्धत्व-प्राप्ति के सत्रहवें वर्ष में हम भगवान् बुद्ध को फिर श्रावस्ती लौटते देखते है। यहीं से वे एक गरीब और परेशान किसान पर अनुकम्पा करने के लिए दुबारा आलवी गये। भगवान् ने आलवी पहुँच कर निश्चित समय पर भोजन किया, परन्तु भोजनोपरान्त उपदेश उन्होंने तब तक नही दिया, जब तक वह किसान वहाँ न आ जाय। बात यह थी कि उस किसान का बैल उस दिन खो गया था जिसे ढूँढते-ढूँढ़ते वह परेशान रहा और शाम तक खाना भी नहीं मिला। भूखा ही वह किसान भगवान् के दर्शनार्थ सन्ध्या समय आया। भगवान् ने सर्व प्रथम उसे भोजन दिलवाया और जब उसका मन शान्त हो गया तो भगवान् ने चार आर्य सत्यों का उपदेश दिया जिसे सुनते ही किसान को स्रोत आपत्ति फल की प्राप्ति हो गई। इसके बाद भगवान् राजगृह लौट आये, जहाँ उन्होंने अपना सत्रहवाँ वर्षावास किया।

अठारहवाँ वर्षावास भगवान् ने अपने तेरहवें वर्षावास के समान चालिय पर्वत पर ही किया। यहाँ से एक बार भगवान् फिर आलवी गये। इस बार वे एक गरीब जुलाहे की लड़की पर अनुकम्पार्थ वहाँ गये। बाद में करघे के गिर जाने से इस गुणवती लड़की की मृत्यु हो गई और भगवान् ने उसके पिता को, जिसकी

---

१. धम्मपदट्ठकथा, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४४।

२. विनय-पिटक (हिन्दी-अनुवाद), पृष्ठ ४७१-४७२।

३. वहीं, पृष्ठ ४७४।

जीविका चलाने में यह लड़की सहायता करती थी, सान्त्वना दी। अंगुत्तर-निकाय के आलवक-सुत्त में हम भगवान् को अन्तराष्टक (माघ के अन्त के चार दिन और फाल्गुण के आदि के चारदिन) में आलवी के समीप सिंसपा-वन में विहार करते देखते हैं। सम्भवतः यह इसी वर्ष की या इससे एक वर्ष पूर्व की घटना हो सकती है।

उन्नीसवी वर्षा भी भगवान् ने चालिय पर्वत पर ही बिताई।

बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद का बीसवाँ वर्षावास भगवान् ने राजगृह में किया। इसी वर्ष जब भगवान् राजगृह से श्रावस्ती की ओर जा रहे थे तो मार्ग में उन्हें भयंकर डाकू अगुलिमाल मिला, जिसे उन्होंने दमित किया। बुद्धत्व-प्राप्ति के बीसवें वर्ष में ही आनन्द को भगवान् का स्थायी उपस्थाक (शरीर-सेवक) बनाया गया। इस समय तक अनेक भिक्षु समय-समय पर भगवान् की परिचर्या करते रहते थे। मेघिय भिक्षु का उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। स्वागत (सागत), राध और नागसमाल भिक्षुओं ने भी कुछ-कुछ समय तक भगवान् की सेवा की थी। इनमें से कभी कोई भिक्षु शास्ता के सम्बन्ध में लापरवाही भी कर देते थे। इसीलिये इस समय भगवान् के परम अनुरक्त शिष्य आनन्द को उनका स्थायी उपस्थाक बनाया गया। इस समय से लेकर ठीक भगवान् के महापरिनिर्वाण अर्थात् करीब २५ वर्ष से अधिक समय तक आनन्द ने छाया की भांति भगवान् को कभी नहीं छोड़ा और अत्यन्त तन्मयता और आत्मीयता के साथ उनकी सेवा की।

इक्कीसवें वर्षावास से लेकर पैंतालीसवें वर्षावास तक अर्थात् पूरे पच्चीस वर्षावास भगवान् ने श्रावस्ती मे किये। इन पूरे पच्चीस वर्ष भगवान् ने अपना प्रधान निवास-स्थान श्रावस्ती को बनाया, परन्तु बीच-बीच में वे दूर तक चारिकाओं के लिये जाते थे और केवल वर्षा में श्रावस्ती लौट कर आ जाते थे। संयुत्त-निकाय के थपति-सुत्त में स्पष्टतः कहा गया है कि वर्षावास के बाद भगवान् अक्सर श्रावस्ती से मल्लों, वज्जियों, काशियों और मगधों के देशों में जाते हैं और फिर वहाँ से लौटकर श्रावस्ती आ जाते हैं। सुत्त-निपात की अट्ठकथा (परमत्थजोतिका) का कहना है कि श्रावस्ती में निवास करते समय यदि भगवान् दिन को मृगारमाता के प्रासाद (मिगारमातु पासाद) पूर्वाराम (पुब्बाराम) में रहते थे तो रात को अनाथ-पिण्डिक के जेतवनाराम में और यदि रात को मृगारमाता के प्रसाद पूर्वाराम में

रहते थे तो दिन में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में। वैसे यदि औपचारिक ढंग से भगवान् के श्रावस्ती में किए गए इन पच्चीस वर्षावासों का ब्योरा, जेतवन और पूर्वाराम विहारों को अलग-अलग कर तैयार किया जाय, तो वह अंगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा के अनुसार इस प्रकार होगा :

२१. पूर्वाराम	२२. पूर्वाराम.
२३. जेतवन.	२४. पूर्वाराम.
२५. जेतवन.	२६. जेतवन.
२७. जेतवन.	२८. पूर्वाराम.
२९. जेतवन.	३०. जेतवन.
३१. जेतवन.	३२. पूर्वाराम.
३३. जेतवन.	३४. पूर्वाराम.
३५. जेतवन.	३६. पूर्वाराम.
३७. जेतवन.	३८. पूर्वाराम.
३९. जेतवन.	४०. पूर्वाराम.
४१. जेतवन.	४२. पूर्वाराम.
४३. जेतवन.	४४. पूर्वाराम.
४५. जेतवन.	

इस प्रकार करीब-करीब बराबर ही वर्षावास भगवान् ने जेतवनाराम और पूर्वाराम मे प्राय: वैकल्पिक रूप से किये, परन्तु यह आश्चर्यकर और ध्यान देने योग्य बात है कि उपदेश उन्होंने अधिकतर जेतवनाराम में ही दिये, पूर्वाराम में उतने नही। प्रथम चार निकायो के ८७१ सुत्तों का उपदेश भगवान् ने श्रावस्ती में दिया, जिनम से ८४४ का उपदेश अकेले जेतवनाराम में दिया गया और केवल २३ का पूर्वाराम में। चार सुत्तों का उपदेश श्रावस्ती के आसपास के अन्य स्थानों में दिया गया। श्रावस्ती में २५ वर्ष तक वर्षावास करते हुए भगवान् ने जिन चारों ओर फैले हुए अनेक स्थानों की यात्राएँ विभिन्न समयों पर कीं, उनकी एक सूची डॉ० मल्लसेकर[1] ने तैयार की है जो इस प्रकार है:

---

१. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ७९९।

१. अग्गालव चेतिय.
२. अनोतत्त दह.
३. अन्धकविन्द.
४. अम्बपालि वन,
५. अम्बलट्ठिका.
६. अम्बसण्ड.
७. अस्सपुर.
८. आपण.
९. इच्छानंगल.
१०. उक्कट्ठा (सुभग-वन)
११. उक्काचेल.
१२. उग्ग नगर.
१३. उजुञ्ञा (कण्णकत्थल मिगदाय)
१४. उत्तर.
१५. उत्तरका
१६. उत्तरकुरु.
१७. उरुवेलकप्प.
१८. उलुम्प.
१९. एकनाला.
२०. ओपसाद.
२१. कक्करपत्त.
२२. कजंगल (मुखेलु वन)
२३. कम्मासदम्म (या कम्मासधम्म)
२४. कलन्दक निवाप.
२५. किम्बिला.
२६. कीटागिरि.
२७. कुण्डधानवन.
२८. केसपुत्त.
२९. कोटिगाम.
३०. कोसम्बी (घोषिताराम तथा बदरिकाराम)
३१. खाणुमत.
३२. खोमदुस्स.
३३. गोसिंग सालवन.
३४. चण्डलकप्प.
३५. चम्पा (गग्गरा पोक्खरणी)
३६. चातुम.
३७. चेतिय गिरि (वैशाली में)
३८. जीवकम्बवन (राजगृह में)
३९. तपोदाराम (राजगृह में)
४०. तिन्दुकखाणु (परिब्बाजकाराम)
४१. तोदेय्य.
४२. थुल्लकोट्ठित.
४३. दक्खिणागिरि.
४४. दण्डकप्प.
४५. देवदह.
४६. देसक (सुह्म जनपद में)
४७. नगरक.
४८. नगरविन्द.
४९. नादिका (गिंजकावसथ)
५०. नालन्दा (पावारिकम्बवन)
५१. नलकपान (पलासवन)
५२. पंकधा.
५३. पंचशाल.
५४. पाटिकाराम.

५५. बेलुव (-गाम)
५६. भद्दवती.
५७. भद्दिय (जातियावन)
५८. भोगनगर (आनन्द चेतिय).
५९. मणिमालक चेतिय.
६०. मनसाकट.
६१. मातुला.
६२. मिथिला (मखादेव आम्रवन)
६३. मेदलुम्प या मेदतलुम्प.
६४. मोरनिवाप.
६५. रम्मकाराम.
६६. लट्ठिवन.
६७. विदेह.
६८. वेधञ्ञा (अम्बवन)
६९. वेनागपुर
७०. वेरंजा.
७१. वेलुद्वार.
७२. वैशाली (उदेन चेतिय, गोतम चेतिय, चापाल चेतिय, बहुपुत्तक चेतिय, सत्तम्ब चेतिय और सारन्दद चेतिय)
७३. सक्कर
७४. सज्जनेल.
७५. सललागारक (श्रावस्ती में)
७६. साकेत (अंजनवन)
७७. सामगाम.
७८. सालवतिका.
७९. साला.
८०. सिंसपावन.
८१. सिलावती
८२. सीतवन.
८३. सूकरखता (सूकरखतलेन)
८४. सेतव्या.
८५. हत्थिगाम.
८६. हलिद्दवसन.
८७. हिमवन्त प्रदेश.

उपर्युक्त सूची, जो डा० मललसेकर ने प्रस्तुत की है, परिपूर्ण नहीं कही जा सकती। इन स्थानों के अलावा भगवान् ने अन्य कई स्थानों की यात्रा अपने पच्चीस वर्षों की चारिकाओं में की होगी, जिनका उल्लेख इसी सूची में नहीं है। उदाहरणतः भगवान् वैशाली के समीप अवरपुर वनखण्ड में गये थे और कोसल देश में साधुक नामक गाँव के समीप होकर भी वे गुजरे थे। अङ्गुत्तर-निकाय के तिक-निपात में हम उन्हें सप्पिनिका नदी के तीर पर परिब्राजकाराम में जाते देखते हैं। धम्मपदट्ठकथा (जिल्द दूसरी, पृष्ठ २३५) के अनुसार बुद्ध मगध के दीवलम्बिक नामक गाँव में गये थे और इसी ग्रन्थ (जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३१, १२९) के अनुसार उन्होंने हिमालय की एक अरण्यकुटिका

में भी निवास किया था, जिसका उल्लेख स्वयं संयुत्त-निकाय के रज्ज-सुत्त में भी है। इसी प्रकार अन्य कई स्थान भी छूटे दिखाये जा सकते हैं। फिर जिन स्थानों का उपर्युक्त सूची में उल्लेख है, उनकी प्रथम बार ही यात्रा भगवान् ने इन पच्चीस वर्षो मे की हो, ऐसी भी बात नही है। उदाहरणत राजगृह तथा उसके विभिन्न स्थानो मे भगवान् ने अपने दूसरे, तीसरे, चौथे, सत्रहवे और बीसवें वर्षावास। में यात्राएँ की और न जाने कितनी बार भगवान् वहाँ गये। अतः राजगृह के अनेक स्थानो का फिर इस सूची मे आना कोई विरोध नही समझना चाहिए। इसी प्रकार अन्य अनेक स्थानो के सम्बन्ध मे भी बात है। उपर्युक्त सूची, जो डा० मललसेकर ने प्रस्तुत की है, वर्णमाला के क्रम से कोशरूप मे दी गई है। अत उससे उन स्थानो की भौगोलिक स्थिति स्पष्ट नही होती। उदाहरणत, तीसरी सख्या का स्थान अन्धकविन्द है, अड़तीसवाँ जीवकम्बन, उन्तालीसवाँ तपोदाराम, तेतालीसवा दक्खिणागिरि, पचासवाँ नालन्दा (पावारिकम्बवन) और छियासठवाँ लट्ठिवन, जब कि ये सब स्थान राजगृह के आसपास मगध देश के ही है। अत कुछ पुनरुक्ति स्वीकार करके भी हमे जनपदो के क्रम से इन स्थानो का वर्गीकरण कर देना चाहिये, ताकि उनकी भौगोलिक स्थिति को हम अधिक स्पष्टतापूर्वक समझ सके। इस प्रकार भगवान् ने श्रावस्ती मे अन्तिम पच्चीस वर्षावास करते समय जिन अनेक स्थानो की यात्रा की, उनका राज्य, जनपद आदि के विचार से इस प्रकार वर्गीकरण किया जा सकता है।

मगध-राज्य में

(१) अन्धकविन्द (ग्राम), (२) अम्बलट्ठिका, (३) अम्बसण्ड, (४) एकनाला, (५) कलन्दकनिवाप, (६) खाणुमत ब्राह्मण-ग्राम, (७) जीवकम्बवन, (८) तपोदाराम, (९) दक्खिणागिरि, (१०) नालन्दा, (११) पचशाल, (१२) मणिमालक चेतिय (१३) मातुला, (१४) मोरनिवाप परिब्राजकाराम, (१५) लट्ठिवन (१६) सीतवन (१७) सूकरखता (सूकरखतलेन)

कोसल-राज्य में

(१) इच्छानंगल ब्राह्मण-ग्राम (२) उक्कट्ठा (३) उग्गनगर, (४) उजुञ्ञा, (५) ओपसाद, (६) चण्डलकप्प, (७) दण्डकप्प, (८) नगरक,

(९) नगरविन्द, (१०) नलकपान, (११) पंकधा, (१२) मनसाकट, (१३) रम्मकाराम (श्रावस्ती), (१४) वेनागपुर, (१५) सललागारक, (१६) साकेत, (१७) सालवतिका, (१८) साला, (१९) सेतव्या, (२०) वेलुद्वार

वज्जि जनपद में

(१) वैशाली, (२) अम्बपालिवन (वैशाली के समीप), (३) उक्काचेल (गंगा नदी के किनारे), (४) कोटिगाम, (५) गोसिंग सालवन, (६) चेतियगिरि (७) नादिका, (८) पाटिकाराम (वैशाली), (९) बेलुव गाम, (१०) हत्थिगाम, (११) तिन्दुकखाणु (परिब्राजकाराम)।

वंस (वत्स) राज्य में

(१) कौशाम्बी।

पंचाल देश में।

(१) अग्गालव चेतिय (आलवी नगर में) (२) सिसपावन (आलवी मे),[1] (३) किम्बिला।

चेदि-राष्ट्र में

(१) भद्दवती।

अंग-जनपद में

(१) अस्सपुर, (२) चम्पा, (३) भद्दिय

अंगुत्तराप में

(१) आपण।

सुह्य (सुम्भ) जनपद में

(१) सेदक, सेतक या देसक (२) कजंगल।

---

१. कौशाम्बी और सेतव्या में भी सिसपा-वन थे, जिनके विवरण के लिए देखिये आगे तृतीय परिच्छेद।

कुरु-राष्ट्र में

(१) कम्मासदम्म, (२) थुल्लकोट्ठित।

सूरसेन या पंचाल जनपद में

(१) वेरंजा।

विदेह राष्ट्र में

(१) मिथिला, (२) विदेह (किसी विशेष स्थान का उल्लेख नहीं किया गया है)।

काशी जनपद में

(१) कीटागिरि।

शाक्य जनपद में

(१) उलुम्प, (२) खोमदुस्स, (३) चातुम, (४) देवदह, (५) मेदलुम्प या मेदतलुम्प (६) वेधञ्ञा, (७) सक्कर, (८) सामगाम, (९) सिलावती।

कोलिय जनपद में

(१) उत्तर (कस्बा), (२) कक्करपत्त, (३) कुण्डधान-वन, (४) सज्जनेल, (५) हलिद्दवसन।

मल्ल राष्ट्र में

(१) उरुवेलकप्प, (२) भोगनगर।

कालामों के प्रदेश में

(१) केसपुत्त निगम।

उपर्युक्त सूची ८२ स्थानों की है। अत. मललसेकर द्वारा प्रस्तुत सूची में से (जिसमें ८७ स्थानों का उल्लेख है), पाँच स्थान यहाँ छोड़ दिये गये है। इसका कारण यह है कि उनमें से तीन स्थान तो ऐसे हैं जिनका राज्य या जनपदों के रूप में वर्गीकरण नहीं किया जा सकता और दो ऐसे है जिनके विषय में हम पूर्णतः निश्चय

नहीं कर सकते कि वे किस प्रदेश में थे। जिन स्थानों को राज्यों और जनपदों के अन्तर्गत नहीं रख सकते, उनमें अनोतत्त दह, हिमवन्त पदेस और उत्तरकुरु हैं। अनोतत्त दह को अक्सर मानसरोवर झील से मिलाया जाता है और हिमवन्त प्रदेश तो हिमालय है ही। उत्तरकुरु से तात्पर्य कुरु राष्ट्र के उत्तरी भाग से न होकर उत्तरकुरु द्वीप से है, जो जम्बुद्वीप के उत्तर में हिमालय से परे स्थित था। जिन दो स्थानों को हम निश्चित रूप से किसी विशेष जनपद या राज्य में स्थित नहीं दिखा सकते, वे हैं, उत्तरका और तोदेय्य। उत्तरका कस्बा थुलू लोगों के (जिन्हें पाठ-भेद से बुमू और खुलू भी कहा गया है), प्रदेश में था। परन्तु ये थुलू, बुमू या खुलू लोग कौन थे, इसका अभी सम्यक् निर्णय नही हो सका है। सम्भवतः मज्झिम देश मे हम थुलू जनपद को रख सकते है, क्योकि यह एक सुविदित जनपद था, जहाँ भगवान् बुद्ध सुनक्षत्र लिच्छवि-पुत्र के साथ एक बार गये थे। तोदेय्य एक गाँव था, जिसके सम्बन्ध में हम केवल इतना कह सकते है कि वह श्रावस्ती और वाराणसी के बीच में स्थित था[1]। भगवान् बुद्ध यहां आनन्द को साथ लेकर एक बार गये थे।[2] भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में चूँकि काशी एक स्वतन्त्र राष्ट्र न होकर कोसल का ही एक अंग था, इसलिये हम तोदेय्य गाम को आसानी से कोसल राज्य में मान सकते है।

श्रावस्ती में बिताये गये पच्चीस वर्षावासों के बीच-बीच में भगवान् ने इस प्रकार अंग, मगध, काशी, कोसल, वज्जि, वंस, चेदि, पंचाल, कुरु, विदेह, शाक्य, कोलिय और मल्ल आदि जनपदों और राष्ट्रों के जिन-जिन स्थानों की चारिकाएँ कीं, उनका कुछ भौगोलिक विवरण हम दे चुके है। इन पच्चीस वर्षों में भगवान् बुद्ध के जीवन और भिक्षु-सघ सम्बन्धी अनेक घटनाएँ घटित हुई जिनमें से केवल एक घटना का हम यहाँ उल्लेख करेंगे। वह थी अजातशत्रु के साथ षड्यन्त्र करके देवदत्त का बुद्ध को मारने का प्रयत्न। भगवान् बुद्ध एक बार गृध्रकूट पर्वत के नीचे टहल रहे थे। देवदत्त ने ऊपर से उन पर एक सिला गिराई, जो दो चट्टानों

---

१. मललसेकर: डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ १०३९।

२. धम्मपदट्ठकथा, जिल्द तीसरी, पृष्ठ २५०।

से टकरा कर रुक गई, परन्तु एक पत्थर का टुकड़ा भगवान् के पैर में लगा और उससे रुधिर बहने लगा। भगवान् की रक्षा के लिये भिक्षुओं के द्वारा प्रयत्न किये जाने पर भगवान् ने उन्हें ऐसा करने की अनुमति नहीं दी। उन्होंने कहा कि तथागत की अकाल मृत्यु नहीं हो सकती। "भिक्षुओ ! यह सम्भव नही कि किसी दूसरे के प्रयत्न से तथागत का जीवन छूटे। भिक्षुओ, तथागतों की रक्षा करने की आवश्यकता नहीं होती। तुम अपने-अपने स्थानों को जाओ"...देवदत्त ने बुद्ध पर नालागिरि नामक हाथी भी छुड़वाया और उनके वध के अनेक प्रयत्न किये, परन्तु सब निष्फल हुए। अजातशत्रु को अपनी गलती अनुभव हुई। इन पच्चीस वर्षो में हुई अन्य घटनाओ का विवरण यहाँ भौगोलिक दृष्टि से हमारे लिए देना आवश्यक न होगा।

श्रावस्ती में पैंतालीसवाँ वर्षावास करने के बाद भगवान् राजगृह चले गये। बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद उनके पार्थिव जीवन का यह छयालीसवाँ और अन्तिम वर्ष था, जिसकी प्रमुख घटनाओं का उल्लेख हमें दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त, महासुदस्सन-सुत्त और जनवसभ-सुत्त में मिलता है। राजगृह के गृध्रकूट पर्वत से भगवान् ने वैशाली के लिये प्रस्थान किया, जहाँ होते हुए वे कुसिनारा गये। यह उनकी अन्तिम यात्रा थी। प्रस्थान से पूर्व मगधराज अजातशत्रु का ब्राह्मण मन्त्री वर्षकार उनसे मिला और उसने भगवान् को बताया कि राजा अजातशत्रु वज्जियों पर अभियान करना चाहता है, जिसके उत्तर में भगवान् ने सीधे वर्षकार से कुछ न कहकर पास में उन पर पंखा झलते हुए आनन्द से कहा कि जब तक वज्जी लोग सात अपरिहानिय धर्मो का, जिनका उपदेश उन्होंने पहले एक बार वज्जियों को वैशाली के सारन्दद चैत्य मे दिया था, पालन करते रहेंगे, तब तक उनकी कोई क्षति नहीं हो सकती। तदनन्तर भिक्षुओं के अनुरूप सात अपरिहानिय धर्मो का उपदेश भगवान् ने राजगृह की उपस्थान-शाला में दिया और फिर भिक्षु-संघ के सहित अम्बलट्ठिका के लिये प्रस्थान किया, जहाँ उन्होंने राजागारक (राजकीय भवन) नामक स्थान में निवास किया। यहाँ से आगे चलकर भगवान् नालन्दा आए और पावारिकम्बवन में ठहरे। महापरिनिब्बाण-सुत्त के अनुसार नालन्दा के प्रावारिक आम्रवन में ही धर्मसेनापति सारिपुत्र ने भगवान् के सम्बन्ध में यह सिंहनाद किया कि उनके समान बोधि में अतीत, वर्तमान या भविष्य का कोई

ज्ञानी पुरुष न था, न है और न होगा। परन्तु धर्मसेनापति सारिपुत्र पहले ही निर्वाण प्राप्त कर चुके थे, इसलिये यह अंश यहाँ भाणकों के प्रमाद से आ गया है, ऐसा मानना ठीक होगा[१]। नालन्दा से चलकर भगवान् पाटलिगाम पहुँचे जो गंगा नदी के दक्षिणी किनारे पर स्थित था। पाटलिगाम के आवसथागार (विश्राम-गृह) में

---

१. मिलाइये राहुल सांकृत्यायन. बुद्धचर्या, पृष्ठ ४८९, पद-संकेत ४। परन्तु महास्थविर बुद्धघोषाचार्य ने धर्मसेनापति सारिपुत्र द्वारा इस अवसर पर उच्चरित शब्दों को ऐतिहासिक रूप से सही मान लिया है, इसलिये वे बड़ी कठिनाई में पड़ गये हैं और उसमें से निकलने का उन्होंने इस प्रकार प्रयत्न किया है कि बुद्ध की चारिकाओं के भौगोलिक रूप को समझने की चेष्टा करने वाले विद्यार्थी बिना चक्कर में पड़े नहीं रह सकते। दीघ-निकाय और धम्मपद की अट्ठ-कथाओं में उन्होंने दिखाया है कि वैशाली में अन्तिम वर्षावास, जिसका विवरण अभी आगे आयेगा, करने के उपरान्त भगवान् श्रावस्ती गये, जहाँ सारिपुत्र ने उनसे निर्वाण प्रवेश की आज्ञा माँगी और मगध देश के नालक ग्राम में जाकर, जो उनका जन्मस्थान था, कार्तिक पूर्णिमा को निर्वाण प्राप्त किया। इसके पन्द्रह दिन बाद मार्गशीर्ष मास की अमावस्या को राजगृह के इसिगिलि पर्वत पर डाकुओं के द्वारा मारे जाने के परिणाम-स्वरूप महामोग्गल्लान का परिनिर्वाण हुआ। धर्मसेनापति सारिपुत्र के छोटे भाई चुन्द समणुद्देस सारिपुत्र के फूल लेकर श्रावस्ती गये जहाँ भगवान् ने उन पर एक चैत्य बनवाया और फिर राजगृह की ओर चल दिये। राजगृह पहुँचकर भगवान् ने इसी प्रकार एक चैत्य वेणुवन के द्वार पर आयुष्मान् महामोग्गल्लान की स्मृति में बनवाया और फिर अम्बलट्ठिका, नालन्दा आदि स्थानों में होते हुए वज्जि जनपद के उक्काचेल नामक स्थान पर पहुँचे जो गंगा नदी के किनारे पर स्थित था। इस स्थान पर उन्होंने उपर्युक्त दोनों अग्र श्रावकों की निर्वाण-प्राप्ति पर प्रवचन दिया, जो संयुत्त-निकाय के उक्काचेल-सुत्त में विहित है। आगे क्रमशः चारिका करते हुए भगवान् वैशाली पहुँचे, जहाँ से उन्होंने अपनी कुसिनारा की यात्रा को फिर जारी किया। देखिए ई० जे० थॉमस : दि लाइफ ऑव बुद्ध, पृष्ठ १४०-१४२। भगवान् की अस्वस्थ अवस्था को देखते हुए यह सम्भव नहीं माना जा सकता कि वैशाली से इतनी लम्बी यात्रा उन्होंने

उन्होंने वहाँ के उपासकों को शील-सम्पदा के पाँच सुपरिणामों और दुःशीलता के पाँच दुष्परिणामों पर प्रवचन दिया। इसी समय सुनीध और वस्सकार नामक अजातशत्रु के ब्राह्मण मन्त्री वज्जियों को जीतने के लिये नगर को बसा रहे थे। "नगरं मापेन्ति वज्जीनं पटिबाहाय"। नगर की इस बसावट को देखकर भगवान् ने भविष्यवाणी की कि आगे चलकर यह गाँव पाटलिपुत्र नाम से जम्बुद्वीप का एक प्रमुख नगर होगा। दूसरे दिन भगवान् ने उपर्युक्त दो ब्राह्मण मन्त्रियों के यहाँ भोजन किया और उनके तथा अन्य अनेक नागरिकों के द्वारा अनुगमित होते हुए गंगा नदी को पार किया। जिस द्वार से भगवान् पाटलिगाम से बाहर निकले उसका नाम "गौतम द्वार" और जिस घाट से उन्होंने गंगा नदी को पार किया उसका नाम "गौतम तीर्थ" रक्खा गया। गंगा नदी को पारकर भगवान् वज्जियों के कोटिगाम नामक गाँव में पहुँचे जहाँ उन्होंने भिक्षुओं को चार आर्य सत्यों का उपदेश दिया। आगे

फिर की हो। फिर महापरिनिब्बाण-सुत्त में इस यात्रा का क्षीण आभास भी नहीं है। यहाँ तो भगवान् निरन्तर वैशाली से आगे बढ़ने की चेष्टा में हैं। अतः महापरिनिब्बाण-सुत्त का समर्थन आचार्य बुद्धघोष की मान्यता को प्राप्त नहीं हो सकता और चूँकि अट्ठकथा के साक्ष्य के ऊपर हमें सदा पालि तिपिटक को विशेषता देनी पड़ेगी, अतः हम यह नहीं मान सकते कि वैशाली से भगवान् इतनी अधिक दूर की लम्बी यात्रा पर जाकर फिर वहाँ दोबारा लौटकर गये, जैसा आचार्य बुद्धघोष ने दिखाया है। ई० जे० थॉमस ने इसे आचार्य बुद्धघोष का "विचित्र भौगोलिक विनियोजन" "Strange geographical arrangement" कहा है। देखिये उनकी "दि लाइफ ऑव बुद्ध", पृष्ठ १४२। धर्मसेनापति सारिपुत्र और महामौद्गल्यायन की जो निर्वाण-तिथियाँ दी गई हैं वे तो ऐतिहासिक तथ्य पर आधारित जान पड़ती हैं, परन्तु उनका सम्बन्ध भगवान् के श्रावस्ती में किये गये पैंतालीसवें वर्षावास से मानना अधिक ठीक जान पड़ता है। यहीं और इसी समय उन्हें इन दो अग्र श्रावकों के परिनिर्वाण की सूचना मिली, जिसके बाद वे उक्काचेल गये और फिर वहाँ से राजगृह, जहाँ से कुसिनारा के लिये उन्होंने अपनी अन्तिम यात्रा प्रारम्भ की, जिसका विवरण महापरिनिब्बाण-सुत्त में है।

चलकर भगवान् वज्जि जनपद के ही नादिक या नादिका नामक नगर में पहुँचे जहाँ के गिंजकावसथ नामक आवास में, जो ईंटों का बना हुआ था, वे ठहरे। यहाँ से चलकर भगवान् वैशाली पहुँचे जहाँ वे अम्बपालि वन में ठहरे और अम्बपालि के आतिथ्य को स्वीकार किया। इसके बाद भगवान् समीप के बेलुवगामक नामक ग्राम में चले गये और उन्होंने भिक्षुओं से कहा "भिक्षुओ, तुम वैशाली के चारों ओर...... वर्षावास करो। मैं यहीं बेलुवगामक में वर्षावास करूँगा।" "एथ तुम्हे भिक्खवे समन्ता वेसालि...... वस्सं उपेथ। अह पन इधेव बेलुवगामके वस्सं उपगच्छामी ति"। परन्तु इसी समय भगवान् को कड़ी बीमारी उत्पन्न हुई। भगवान् ने संकल्प-बल से उसे दबा दिया क्योकि वे बिना भिक्षु-संघ को अवलोकन किये महापरिनिर्वाण में प्रवेश करना नही चाहते थे। वर्षावास के उपरान्त भगवान् एक दिन वैशाली में भिक्षार्थ गये और ध्यान के लिये आनन्द के साथ चापाल चैत्य में बैठे। यहीं उन्होंने कहा कि वे तीन मास बाद महापरिनिर्वाण में प्रवेश करेंगे। इसका अर्थ यह है कि इस समय माघ की पूर्णिमा थी और प्रवारणा (वर्षावास की समाप्ति—आश्विन पूर्णिमा) को हुए चार मास बीत चुके थे। इसके बाद भगवान् वैशाली की महावन कूटागारशाला में चले गए और वैशाली के आसपास विहरने वाले सब भिक्षुओं को बुलवाकर उन्होंने उनसे कहा कि जिस धर्म का उन्होंने उन्हें उपदेश दिया है, उसका ज्ञानपूर्वक पालन उन्हें करना चाहिए ताकि यह ब्रह्मचर्य (बुद्ध-धर्म) चिरकाल तक बहुत जनों के हित और सुख के लिए स्थित रहे। इसी समय भगवान् ने भिक्षुओं से कहा, "मेरी आयु परिपक्व हो चुकी है। मेरा जीवन थोड़ा है। मैं तुम्हें छोड़ कर जाऊँगा, मैंने अपनी शरण बनाली है।"......"परिपक्को वयो मय्हं परित्तं मम जीवितं। पहाय वो गमिस्सामि कतं मे सरणमत्तनो"। दूसरे दिन वैशाली में भिक्षाचर्या करने के बाद भगवान् ने मुड़ कर वैशाली की ओर देखा और आनन्द से कहा, "आनन्द! यह तथागत का अन्तिम वैशाली दर्शन होगा"। "इदं पच्छिमकं आनन्द तथागतस्य वेसालिदस्सनं भविस्सति"। इसके बाद ही भगवान् भण्डगाम की ओर चल दिये। भण्डगाम पहुँच कर भगवान् ने भिक्षुओं को शील, समाधि, प्रज्ञा और विमुक्ति सम्बन्धी उपदेश दिया और फिर क्रमशः हत्थिगाम, अम्बगाम और जम्बुगाम होते हुए भगवान् भोगनगर पहुँचे जहाँ वे आनन्द चेतिय में ठहरे। तदनन्तर भगवान् आगे बढ़ते हुए पावा पहुँचे जहाँ वे

चुन्द सुनार के आम्रवन में ठहरे और उसके यहाँ "सुक्करमद्दव" का भोजन किया। इसी समय भगवान् को कड़ी बीमारी उत्पन्न हुई और उसी अवस्था में वे कुसिनारा की ओर चल पड़े। रास्ते में थक कर भगवान् एक पेड़ के नीचे बैठ गये और आनन्द ने संघाटी चौपेती कर उनके नीचे बिछा दी। भगवान् को कड़ी प्यास लगी हुई थी। पास में ही एक छोटी नदी (नदिका) बह रही थी जिसमें से पानी लाने को भगवान् ने आनन्द से कहा। आनन्द वहाँ गये, परन्तु देखा कि अभी-अभी पाँच सौ गाड़ियाँ वहाँ होकर गई हैं, अतः पानी गदा है। भगवान् के पुनः आग्रह पर आनन्द वहाँ गये और इस बार पानी को स्वच्छ पाया। तथागत ने जल पिया और इसी समय मल्ल-पुत्र पक्कुस व्यापारी, जो कुसिनारा से पावा की ओर पाँच सौ माल से लदी गाड़ियों के सहित आ रहा था, उनसे मिला और भगवान् को एक इंगुरवर्ण दुशाला भेंट किया जिसके एक भाग को भगवान् के आदेशानुसार उसने उन्हें उढ़ा दिया और दूसरे भाग को आनन्द को। आगे चलकर भगवान् ककुत्था (कुकुत्था तथा ककुधा पाठान्तर) नामक नदी पर आये जिसमें स्नान और पान कर (नहात्वा च पिवित्वा च) भगवान् ने उसे पार किया और एक आम्रवन में विश्राम किया। दीघ-निकाय की अट्ठकथा के अनुसार यह आम्रवन इस ककुत्था नदी के दूसरे किनारे पर ही स्थित था। "तस्सा येव नदिया तीरे अम्बवनं ति"। इस आम्रवन में विश्राम करते समय ही भगवान् ने आनन्द से कहा कि चुन्द सुनार को यह अफसोस नही करना चाहिए कि उसके यहाँ भोजन करके तथागत परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। उसे तो अपना सौभाग्य ही मानना चाहिए कि उसके यहाँ भोजन कर भगवान् ने अनुपाधि-शेष-निर्वाण-धातु में प्रवेश किया, जो उनकी ज्ञान-प्राप्ति के समान ही एक मंगलमय घटना है। इस आम्रवन से चलकर भगवान् ने एक और नदी को पार किया जिसका नाम हिरण्यवती था। इस नदी को पार कर भगवान् कुसिनारा के समीप मल्लों के उपवत्तन नामक शालवन में आये। दीघ-निकाय की अट्ठकथा का कहना है कि अत्यधिक निर्बलता के कारण भगवान् को पावा और कुसिनारा के बीच पच्चीस स्थानों पर बैठना पड़ा। "एतस्मिं अन्तरे पंचवीसतिया ठानेसु निसीदित्वा"। कुसिनारा के समीप स्थित मल्लों के उपवत्तन शालवन में जुड़वाँ शाल-वृक्षों के नीचे आनन्द ने भगवान् के लिये उत्तर की ओर सिरहाना करके चारपाई बिछा दी, जहाँ भिक्षुओं को संस्कारों

की अनित्यता और अप्रमाद पूर्वक जीवनोद्देश्य को पूरा करने का उपदेश देते हुए, असमय में फूले शाल-वृक्षों के फूलों तथा दिव्य मन्दार (मन्दारव) पुष्पों से पूजित होते हुए वैशाख पूर्णिमा की रात के अन्तिम याम में, तथागत ने महापरिनिर्वाण में प्रवेश किया।

मज्झिम देस में भगवान् बुद्ध की चारिकाओं के भूगोल का विवेचन करने के बाद अब हम जम्बुद्वीप के प्राकृतिक भूगोल पर आते हैं। बुद्धकालीन या बुद्ध के काल के कुछ पूर्व के सोलह महाजनपदों में से इन चौदह महाजनपदों को डा० मललसेकर ने[1] मज्झिम देस में सम्मिलित माना है, यथा काशी, कोसल, अंग, मगध, वज्जि, मल्ल, चेति, वंस, कुरु, पंचाल, मच्छ, सूरसेन, अस्सक और अवन्ती। डा० मललसेकर ने अपनी इस मान्यता का कोई आधार-स्वरूप कारण नहीं दिया है। हमारा विचार है कि अस्सक और अवन्ती को तो हमें पालि परम्परा के अनुसार दक्षिणापथ में ही रखना चाहिए और शेष बारह को मज्झिम देस में मानना चाहिये। मज्झिम देस के प्राकृतिक भूगोल के विवरण में हम यहाँ जिन नदियों, पर्वतों, झीलों, और वनों आदि का उल्लेख करेंगे, वे उपर्युक्त बारह जनपदों से ही सम्बन्धित होंगे।

पालि तिपिटक में हमें पाँच महानदियों (पंच महानदियो) का उल्लेख मिलता है। इनके नाम हैं गंगा, यमुना, अचिरवती, सरभू, और मही। ये सब मज्झिम देस की नदियाँ हैं। संयुत्त-निकाय के पठम-सम्बेज्ज-सुत्त में एक उपमा का प्रयोग करते हुए भगवान् कहते हैं, "भिक्षुओ! जैसे गंगा, यमुना, अचिरवती सरभू और मही महानदियाँ हैं[2]...।" इसी प्रकार संयुत्त-निकाय के दुतिय-सम्बेज्ज-सुत्त और समुद्द-सुत्त में भी इन पाँच महानदियों का उल्लेख है। अंगुत्तर-निकाय,[3] विसुद्धिमग्ग[4] और मिलिन्दपञ्हो[5] में भी इनका उल्लेख है। संयुत्त-

---

१. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४९४
२. संयुत्त-निकाय (हिन्दी-अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ८२३।
३. जिल्द चौथी, पृष्ठ १०१।
४. १।२४ (पृष्ठ ६) (धर्मानन्द कोसम्बी का देवनागरी संस्करण)
५. पृष्ठ ७३, ३७४ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण); पृष्ठ ८७, ४६८ (हिन्दी अनुवाद)

निकाय के समुद्द-सुत्त में इन पाँचों नदियों को समुद्र की ओर बहती (समुद्दनिन्ना) दिखाया गया है, और इसी प्रकार उदान[1] में भी। आचार्य बुद्धघोष ने पपंचसूदनी,[2] मनोरथपूरणी[3] और परमत्थजोतिका[4] में इन पाँचों नदियों का उद्गम अनोतत्त दह बताया है। परन्तु मिलिन्दपञ्हो[5] में इनकी गणना उन दस मुख्य नदियों में की गई है, जिनका उद्गम वहाँ हिमालय बताया गया है। यद्यपि अनोतत्त दह हिमालय में ही स्थित है, फिर भी भौगोलिक दृष्टि से 'मिलिन्दपञ्हो' का कहना ही अधिक सही है। हम इन पाँच महानदियों का क्रमशः विवरण पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं के आधार पर देंगे।

गंगा नदी का उल्लेख पालि तिपिटक में अनेक बार किया गया है और कई बार भगवान् ने उसका प्रयोग उपमा के लिये किया है। अनेक महत्वपूर्ण भौगोलिक विवरण भी दिये गये हैं। दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त तथा उदान[6] से हमें पता लगता है कि पाटलिपुत्र गंगा के किनारे बसा हुआ था और सुमंगल-विलासिनी का साक्ष्य है कि गगा नदी ही मगध और वज्जि राष्ट्रों की विभाजक-सीमा थी। राजगृह से कुसिनारा जाते हुए भगवान् ने अपनी अन्तिम यात्रा में पाटलिगाम पर गगा को पार किया था और इस घटना की स्मृति में उसके किनारे 'गौतम-तीर्थ' नामक घाट की स्थापना बुद्ध-काल में की गई थी। हमने यह भी देखा है कि बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद राजगृह की अपनी प्रथम यात्रा के अवसर पर दो मास वहाँ रहकर भगवान् कुछ समय के लिये वैशाली गये थे और बीच में उनके गंगा पार करने का उल्लेख है, जिसके दोनों ओर अपने-अपने राज्य में बिम्बिसार और लिच्छवियों ने भारी सजावट कर रक्खी थी। गंगा के साथ यमुना के मिलने

---

१. पृष्ठ ७३ (हिन्दी अनुवाद)

२. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५८६।

३. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ७५९-७६०।

४. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४३७-४३९।

५. पृष्ठ ११७ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण); पृष्ठ १४४ (हिंन्दी-अनुवाद), देखिए आगे हिमवन्त का वर्णन भी।

६. पृष्ठ १२१ (हिन्दी अनुवाद)

की सुन्दर उपमा का प्रयोग करते हुए दीघ-निकाय के महागोविन्द-सुत्त में कहा गया है, "जैसे गंगा की धारा यमुना में मिलती है और मिल कर एक हो जाती है, उसी प्रकार. . .निर्वाणगामिनी प्रतिपदा निर्वाण के साथ मेल खाती है।" तक्क-जातक, सिगाल-जातक और चक्कवाक जातक में वाराणसी के समीप होकर गंगा के बहने का उल्लेख है। संयुत्त-निकाय के दुतिय-दारुक्खन्ध-सुत्त में गंगा नदी के किनारे किम्बिला नामक नगरी का वर्णन किया गया है। यह नगरी पंचाल जनपद में थी। वज्जि जनपद के उक्काचेल में होकर गंगा नदी के बहने का उल्लेख संयुत्त-निकाय के निब्बाण-सुत्त में है। जातक[1] में गग्गलि नामक गाँव को गंगा के तट पर स्थित बताया गया है, जिसकी आधुनिक स्थिति का पता लगाना कठिन है। वज्जि-संघ के एक सदस्य गणतन्त्र राष्ट्र विदेह से भी, जो वज्जि के समान मगध के उत्तर में ही था, गंगा नदी मगध को विभक्त करती थी, यह इस बात से विदित होता है कि मज्झिम-निकाय के चूलगोपालक-सुत्तन्त में गायें इस पार से गंगा में उतर कर उस पार विदेह में पहुँचती दिखाई गई हैं। हम जानते ही हैं कि अंग देश का गंगा के उत्तर का भाग अंगुत्तराप कहलाता था। अंग देश के चम्पा नगर के समीप भी गंगा का उल्लेख किया गया है। गंगा के बालु-कणों को गिनने की असम्भवता को लेकर एक सुन्दर उपमा संयुत्त-निकाय के गंगा-सुत्त में दी गई है। इसी प्रकार तृण-उल्का से गंगा नदी को उत्तप्त करने की उपमा मज्झिम-निकाय के ककचूपम-सुत्तन्त में है। संयुत्त-निकाय के गंगा-पेय्याल-वग्ग में तथा पाचीन-सुत्त में गंगा का पूर्व की ओर बहना (पाचीननिन्ना) दिखाया गया है और इसी प्रकार मज्झिम-निकाय के महावच्छगोत्त-सुत्त में उसे समुद्र-निम्ना (समुद्दनिन्ना) या समुद्र की ओर बहने वाली बताया गया है। इससे पता चलता है कि जहाँ गंगा नदी पूर्व की ओर बहते हुए दक्षिण की ओर मुड़ती है और अन्त में समुद्र में जाकर मिलती है, वहाँ तक का सुनिश्चित ज्ञान पालि परम्परा को था। महा उम्मग्ग जातक में तो गङ्गा के समुद्र में मिलने का स्पष्ट उल्लेख है। "गङ्गा समुद्दं पटिपज्जमाना"।

---

१. जिल्द छठी, पृष्ठ ४३१।

सारत्थप्पकासिनी[1] मे गगा की लम्बाई ५०० योजन बताई गई है। उत्तर में जहाँ से गगा नदी निकलती है और कितने-कितने योजन वह पहाडो मे किन-किन नामो से बहती है, इसका विस्तृत विवरण आचार्य बुद्धघोष ने अपनी अट्ठकथाओ मे दिया है। उद्गम से मैदानो मे आने से पूर्व उन्होने गगा नदी के कई नामो का प्रयोग किया है, जैसे कि आवट्ट गगा, कण्हगगा, आकाश गगा, बहल गगा और उम्मग्ग गगा। विनय-पिटक के चुल्लवग्ग[2] से तथा महावस[3] से हमे पता चलता है कि वैशाली की सगीति के समय आयुष्मान् सम्भूत साणवासी नामक भिक्षु अहोगग पर्वत पर रहते थे, जिसे हरिद्वार के समीप कोई पर्वत होना चाहिए। अशोककालीन मोग्गलिपुत्त तिस्स को भी हम अहोगग पर्वत पर जाते और वहाँ सात वर्ष तक ध्यान करते देखते है।[4] इस प्रकार गगा के हरिद्वार के समीप वाले भाग का भी ज्ञान पालि परम्परा को था। परन्तु गगा के तट पर स्थित सबसे अधिक महत्वपूर्ण जिस स्थान का उल्लेख पालि तिपिटक मे है, वह तो प्रयाग तीर्थ (पयाग तित्थ) ही है। हमने देखा है कि वेरजा मे बारहवाँ वर्षावास कर भगवान् बुद्ध क्रमश सोरेय्य, संकाश्य और कान्यकुब्ज होते हुए प्रयाग-प्रतिष्ठान (पयाग पतिट्ठान) आये थे, जहाँ उन्होने गगा को पार किया था और फिर वाराणसी चले गये थे। आचार्य बुद्धघोष ने पयाग (प्रयाग) को गगा का एक घाट (तित्थ) कहा है।[5] जातक मे भी प्रयाग तीर्थ (पयाग तित्थ) का उल्लेख है।[6] कहने की आवश्यकता नही कि प्रयाग तीर्थ से स्पष्टत अभिप्राय गगा-यमुना के सगम से ही है। प्रयाग को गगा-यमुना का सगम मान कर ही भगवान् ने कहा था, "क्या करेगी सुन्दरिका, क्या प्रयाग और क्या बाहुलिका नदी ?"[7]

---

१. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ११९।
२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद) पृष्ठ ५५१।
३. ४।१८-१९ (हिन्दी अनुवाद)
४. महावंस ५।२३३ (हिन्दी अनुवाद)
५. पपंचसूदनी, जिल्द पहली, पृष्ठ १७८।
६. जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ १९८।
७. वत्थ-सुत्तन्त (मज्झिम. १।१।७)।

संयुत्त-निकाय के भौगोलिक महत्व का विवेचन करते समय हम पहले देख चुके हैं कि संयुत्त-निकाय के फेण-सुत्त में गंगा नदी के किनारे अयोज्झा (अयोध्या) नगरी स्थित बताई गई है और इसी प्रकार पठम-दारुक्खन्ध - सुत्त में कौशाम्बी को गंगा नदी के किनारे स्थित बताया गया है, जो दोनों बातें इन दोनों नगरों की आधुनिक स्थितियों मे मेल नहीं खातीं और एक समस्या पैदा करती हैं। साकेत नामक एक नगर का अयोज्झा से पृथक् उल्लेख पालि तिपिटक में मिलता है, इसलिये यह स्पष्ट मालूम पड़ता है कि पालि के साकेत और अयोज्झा बुद्ध-काल में दो अलग-अलग स्थान थे। साकेत एक महानगर था और अयोज्झा एक छोटा सा गाँव मात्र। हमारा मन्तव्य यह है कि पालि की अयोज्झा को हमें वर्तमान अयोध्या से न मिला कर उसे कही गंगा के किनारे पर खोजना चाहिए। जहाँ तक कौशाम्बी का सम्बन्ध है, हमें संयुत्त-निकाय के पठम-दारुक्खन्ध-सुत्त की निश्चयतः उपेक्षा ही करनी पड़ेगी। आधुनिक कोसम गाँव, जिसे बुद्धकालीन कौशाम्बी से मिलाया गया है और जिसके बारे में कोई सन्देह नही रह गया है, यमुना नदी पर स्थित है। अतः उपर्युक्त सुत्त में कौशाम्बी को जो गंगा के तट पर स्थित बताया गया है, उसका एक कारण तो यह हो सकता है कि कौशाम्बी गंगा के समीप थी या दूसरा कारण यह भी माना जा सकता है कि संकलनकारों ने इसे गलती से ऐसा लिख दिया है। अंगुत्तर निकाय की अट्ठकथा (मनोरथपूरणी)[1] में बक्कुल (या वक्कुल) की जीवन-कथा के प्रसंग में स्पष्टतः कहा गया है कि जब कौशाम्बी में बक्कुल के जन्म के बाद दाई नवजात शिशु को **यमुना** नदी में नहला रही थी तो वह उसके हाथ से नदी में गिर गया और उसे एक मछली निगल गई। अट्ठकथा के इस साक्ष्य को प्रामाणिक मान कर हमें संयुत्त-निकाय के पठमदारुक्खन्ध-सुत्त की उपेक्षा ही करनी पड़ेगी, यही इस समस्या का एक मात्र समाधान है।

गंगा नदी के तट को साधना के उपयुक्त स्थल के रूप में भी भगवान् बुद्ध के कई भिक्षुशिष्यों ने चुना था। श्रावस्ती में उत्पन्न एक भिक्षु को प्रव्रजित होने के बाद हम गंगा के तट पर निवास करते देखते हैं। इस भिक्षु का नाम ही इस कारण

---

१. जिल्द पहली, पृष्ठ १७०।

गंगातीरवासी भिक्षु (गंगातीरियो भिक्खु) पड़ गया था। उसने इसी रूप में अपनी स्मृति छोड़ते हुए कहा है, "मैंने गंगा नदी के किनारे तीन ताड़ के पत्तों की एक कुटिया बनाई है।" "तिण्णं मे तालपत्तानं गंगातीरे कुटी कता।"[१] मोग्गलिपुत्त तिस्स और सम्भूत साणवासी के अहोगंग पर निवास का उल्लेख हम पहले कर ही चुके हैं। दूत जातक में उल्लेख है कि बोधिसत्व ने अपने एक पूर्व जन्म में काशी ग्राम के एक ब्राह्मण के रूप में गंगा नदी के तट पर ध्यान किया था। "गंगातीरस्मि झायतो।" इसी प्रकार तक्क जातक में भी बोधिसत्व के एक बार गंगा नदी के किनारे पर तपस्या करने का उल्लेख है।

गंगा नदी के भागीरथी (भागीरसी) नाम से भी पालि परम्परा भली प्रकार परिचित है। "अपदान" (भाग प्रथम, पृष्ठ ५१; भाग द्वितीय, पृष्ठ २४३) में कहा गया है कि यह नदी हिमवन्त से निकल कर उत्तरापथ की हंसवती नामक नगरी में होकर बहती है।[२]

---

१. थेरगाथा, पृष्ठ २६ (महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी संस्करण); देखिये थेरगाथा (भिक्षु धर्मरत्न-कृत हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ५४।

२. महाभारत के सभा-पर्व (अध्याय ४८) में हंसकायन (हंसकायनाः) लोगों का उल्लेख है। यदि हम पालि की हंसवती नगरी का सम्बन्ध इन लोगों से मान सकें तो हमें हंसकायन प्रदेश को कश्मीर के उत्तर-पश्चिम में हुंजा और नगर के प्रदेश से मिलाने के डा० मोतीचन्द्र के प्रयत्न को (ज्योग्रेफीकल एण्ड इकोनोमिक स्टडीज इन दि महाभारत, पृष्ठ ९२-९३) अप्रामाणिक मानना पड़ेगा, क्योंकि वहाँ गंगा या भागीरथी नदी के होने का कोई प्रश्न ही नहीं है। कुछ भी हो, इतना निश्चित जान पड़ता है कि पालि की हंसवती नगरी भारत में गंगा नदी के किनारे ही कहीं थी। थेरीगाथा की अट्ठकथा (परमत्थदीपनी) में कहा गया है कि धम्मदिन्ना, उब्बिरी और सेला (शैला) नामक भिक्षुणियाँ, जो भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में क्रमशः राजगृह, श्रावस्ती और आलवी राष्ट्र में पैदा हुई थीं, अपने पूर्व जन्मों में एक बार हंसवती नगरी में भी जन्म ले चुकी थीं। आज इस हंसवती नगरी का पता लगाना कठिन है। दक्षिणी बरमा में हंसवती या हंसावती नामक एक नगरी थी जिसे आजकल पेगू से अभिन्न माना जाता है। इसे पालि की हंसवती

जातक की अनेक कथाओं में गंगा नदी के लिये भागीरसी (भागीरथी) नाम का प्रयोग किया गया है।[1] उत्तर पंचाल और दक्षिण पंचाल की सीमा भागीरथी नदी ही बनाती थी। पंचाल देश का प्रसिद्ध आलवी नगर सम्भवत: गंगा नदी के आसपास ही कहीं स्थित था, क्योंकि वहाँ के निवासी (आलवक) यक्ष को हम भगवान् बुद्ध से यह कहते देखते हैं, "मैं तुम्हें पैरों से पकड़ कर गंगा के पार फेंक दूंगा।" "पादेसु वा गहित्वा पारगंगाय खिप्पेय्य।[2]" इसी प्रकार की बात गया के सूचिलोम यक्ष ने भी भगवान् के प्रति कही थी।[3] इससे यह भी जान पड़ता है कि 'गंगा-पार' का प्रयोग सम्भवत: एक मुहावरे के रूप में बुद्ध-काल में होता था, क्योंकि गंगा नदी आजकल गया से करीब ५५ या ५६ मील उत्तर में होकर बहती है। यह भी सम्भव है कि उन दिनों वह गया के कुछ अधिक निकट हो।

जातक में अनेक जगह "अधोगंगा"[4] "उद्धगंगा"[5] "उपरिगंगा"[6] और "पारगंगा"[7] जैसे प्रयोग मिलते हैं, जो गंगा के सम्बन्ध में स्पष्ट और प्रत्यक्ष ज्ञान की सूचना देते हैं।

नगरी तो नहीं माना जा सकता, परन्तु यह सम्भव है कि भारत की हंसवती नगरी की अनुस्मृति में ही इस नगरी की स्थापना की गई हो।

१. जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ९३, २५५; जिल्द छठी, पृष्ठ २०४—"भागीरसिं हिमवन्तं च गिद्धं।' महाकवि अश्वघोष ने भी बुद्ध-चरित (१५।१४) में भागीरथी नदी का उल्लेख काशी नगरी के प्रसंग में किया है।

२. आलवक-सुत्त (सुत्त-निपात); देखिये तृतीय परिच्छेद में पञ्चाल जनपद का विवरण।

३. सूचिलोम-सुत्त (संयुत्त-निकाय)।

४. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २८३; जिल्द पांचवीं, पृष्ठ ३।

५. जातक, जिल्द छठी पृष्ठ ४२७।

६. जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ २३०।

७. जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ ४२७।

गङ्गा नदी के द्वारा होने वाले यातायात, माल के परिवहन और उसके व्यापारिक महत्व का उल्लेख हम पाँचवें परिच्छेद में करेंगे।

गंगा नदी के साथ-साथ ही प्रायः यमुना नदी का भी उल्लेख पालि तिपिटक में आया है। जैसा हम पहले कह चुके हैं, पंच महानदियों में उसकी गणना है। बुद्धकालीन मथुरा और कौशाम्बी नगरियाँ इसी के किनारे बसी हुई थी।

अचिरवती नदी आधुनिक रापती है। सालित्तक-जातक और कुरुधम्म-जातक से हमें पता लगता है कि यह नदी श्रावस्ती के पास होकर बहती थी। सीलानिसंस जातक में अचिरवती नदी का उल्लेख है और कहा गया है कि एक उपासक ने जेतवन जाने के लिये इस नदी को पार किया था। श्रावस्ती का पूर्व-द्वार इस नदी के समीप था और राज-प्रासाद भी इससे अधिक दूर नही था। दीघ-निकाय के तेविज्ज-सुत्त में कहा गया है कि इसी नदी के किनारे पर कोसल देश का मनसाकट नामक ब्राह्मण-ग्राम बसा हुआ था। यहाँ भगवान् बुद्ध एक बार गये थे और इसके समीप अचिरवती नदी के किनारे पर एक आम्रवन में ठहरे थे। अंगुत्तर-निकाय[1] में अचिरवती नदी के ग्रीष्म काल में सूख जाने का उल्लेख है और उदानट्ठकथा[2] में इसके किनारे पर मछली पकड़े जाने का भी उल्लेख किया गया है। सुत्त-निपात की अट्ठकथा में इस नदी के किनारे पर गेहूँ के खेतों का भी उल्लेख है। मज्झिम-निकाय के बाहीतिय या बाहीतिक सुत्तन्त में हम आयुष्मान् आनन्द को राजा प्रसेनजित् की प्रार्थना पर उसके साथ अचिरवती नदी के तीर पर एक वृक्ष के नीचे बैठे धार्मिक संलाप करते देखते हैं। अचिरवती नदी में ही विडूडभ सेना-सहित डूब कर मर गया था।[3] चीनी यात्री यूनान् चुआङ को सातवीं शताब्दी ईसवी में यह नदी "अ-चि-लो" के नाम से विदित थी और उसने इसे श्रावस्ती से दक्षिण-पूर्व में बहते देखा था।[4]

---

१. जिल्द चौथी, पृष्ठ १०१।

२. पृष्ठ ३६६।

३. धम्मपदट्ठकथा, जिल्द पहली, पृष्ठ ३६०।

४. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इंडिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३९८-३९९।

पालि की सरभू नदी आधुनिक सरयू ही है। यह हम कह ही चुके हैं कि आधुनिक अयोध्या सरयू नदी के किनारे पर स्थित है, परन्तु पालि की अयोज्झा गंगा नदी पर थी, जिसकी अभी पूरी खोज नही हो सकी है। सरभू (सरयू) नदी के तट पर साकेत के अञ्जन वन में भगवान् के साथ विहार करते हुए स्थविर गवम्पति ने नदी में अचानक बाढ़ आ जाने पर और साथी भिक्षुओं के डूब जाने के भय से इस नदी की धारा को अपने ऋद्धि-बल से रोक दिया था। इसी के सम्बन्ध में कहा गया है "यो इद्धिया सरभु अट्ठपेसि।"[1] स्पष्ट है कि यह नदी साकेत के समीप होकर बहती थी।

मही नदी आधुनिक बड़ी गंडक ही है। डा० विमलाचरण लाहा ने इस नदी को गण्डक की एक सहायक नदी बताया है।[2] यह ठीक नही है। मही को पालि साहित्य में "महामही" भी कहकर पुकारा गया है। इससे उसका बड़ी गण्डक होना ही सिद्ध होता है। संयुत्त-निकाय के पठम सम्बेज्ज सुत्त में मही नदी की गणना पंच महानदियों में की गई है। इसी निकाय के पंचम पाचीन सुत्त में अन्य महानदियों के समान इसका भी पूर्व की ओर बहना दिखाया गया है। अंगुत्तर-निकाय[3] और मिलिन्दपञ्हो[4] में भी इस नदी का उल्लेख है। सुत्त-निपात के धनिय-सुत्त से हमें पता लगता है कि एक बार भगवान् बुद्ध मही नदी के किनारे (अनुतीरे महिया) एक खुली कुटी में एक रात भर के लिये ठहरे थे। कुटी पर छप्पर नही था और वर्षाकालीन बादल आकाश पर छाये हुए थे। भगवान् ने आकाश की ओर देखकर कहा था, "देव, इच्छा हो तो खूब बरसो।" "वस्स देव यथासुखं।"

उपर्युक्त पाँच नदियों के अतिरिक्त, जैसा हम ऊपर संकेत कर चुके हैं, पाँच और नदियाँ हैं जिन्हें पालि परम्परा में अधिक महत्व दिया गया है। वे हैं सिन्धु, सरस्सती (सरस्वती), वेत्तवती (वेत्रवती), वितंसा या वीतंसा (वितस्ता) और·

---

१. थेरगाथा, गाथा ३८ (महापंडित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी संस्करण)।

२. 'इण्डोलोजीकल स्टडीज', भाग तृतीय, पृष्ठ १८८।

३. जिल्द चौथी, पृष्ठ १०१।

चन्दभागा (चन्द्रभागा)। इन कुल दस नदियो को पालि परम्परा में उन पाँच सौ नदियो मे प्रधान माना गया है जो वहाँ हिमालय से निकली दिखाई गई है।[१] बाद की पाँच बड़ी नदियो मे सिन्धु, सरस्सती, वीतसा और चन्दभागा उत्तरापथ की नदियाँ है। अतः इनका वर्णन हम उत्तरापथ के प्राकृतिक भूगोल के प्रसंग मे करेगे। वेत्तवती (वेत्रवती) नदी का उल्लेख एक जातक-कथा मे है, जहाँ कहा गया है कि इसके किनारे पर वेत्तवती (वेत्रवती)नामक नगरी बसी हुई थी।[२] यह आधुनिक बेतवा नदी ही है। अब हम मज्झिम देस मे बहने वाली कुछ अन्य नदियो का परिचय पालि परम्परा के आधार पर देगे।

अनोमा नदी को भगवान् ने महाभिनिष्क्रमण के बाद पार किया था, यह हम पहले देख चुके है। यह नदी कपिलवस्तु और अनूपिया के बीच मे थी। इस नदी की आधुनिक पहचान अभी निश्चित नही हो सकी है। कनिघम ने इसे वर्तमान औमी नदी से मिलाया था।[३] कारलायल ने उसे बस्ती जिले की वर्तमान कुडवा नदी बताया था।[४] भिक्षु धर्मरक्षित त्रिपिटकाचार्य उसे देवरिया जिले की आधुनिक मझन नदी मानते है।[५] हमारा निश्चित मत है कि अनोमा आधुनिक औमी नदी ही थी।

बाहुका, सुन्दरिका, सरस्वती और बाहुमती नदियो का उल्लेख मज्झिम-निकाय के वत्थ-सुत्तन्त मे है। सुन्दरिका नदी का उल्लेख सयुत्त-निकाय के सुन्दरिक-सुत्त मे भी है। यह नदी कोसल जनपद मे होकर बहती थी। सुन्दरिक भारद्वाज ने इसी नदी के किनारे अग्नि-हवन किया था, ऐसा हमे सयुत्त-निकाय के सुन्दरिक-सुत्त से मालूम होता है। इस नदी की पहचान आधुनिक सई नदी से करना ठीक जान पड़ता है, जो प्राचीन काल मे स्यन्दिका भी कहलाती थी। कोसल राज्य की

---

१. देखिये आगे हिमालय पर्वत का वर्णन।

२. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ ३८८।

३. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी आव इण्डिया, पृष्ठ ४८८-४९१।

४. आर्क्लोजीकल सर्वे, जिल्द बाईसवीं पृष्ठ २२४

५. कुशीनगर का इतिहास, पृष्ठ ५८; बुद्धकालीन भारत का भौगोलिक परिचय, पृष्ठ १०।

दक्षिणी सीमा पर होकर यह नदी बहती थी। बाहुका नदी भी कोसल जनपद में होकर बहती थी। इसे आधुनिक धुमेल नदी से मिलाया गया है, जो रापती की एक सहायक नदी है। बाहुमती नदी आधुनिक बागमती है, जो नेपाल से आती हुई बिहार राज्य में बहती है।

चम्पा नदी, जैसा चम्पेय्य जातक में उल्लेख है, अंग और मगध के बीच की सीमा पर थी। अंग इसके पूर्व में था और मगध पश्चिम में। इसका आधुनिक नाम चाँदन नदी है। ककुत्था (या कुकुत्था) नदी का उल्लेख हम पहले कर चुके है। यह नदी पावा और कुसिनारा के बीच में थी। यह आधुनिक बरही नामक छोटी सी नदी है, जो कमया से ८ मील नीचे छोटी गण्डक में मिलती है। यही इस नदी की ठीक पहचान है। कुछ विद्वानो ने इसे वर्तमान घाघी और कुकु नदियों से मिलाया है, जो ठीक नही जान पड़ता।

किमिकाला नदी चेतिय जनपद में होकर बहती थी। इसका यह नाम क्यों पड़ा, यह हम चेतिय जनपद के विवरण में देखेंगे। रोहिणी नदी, कुणाल जातक के अनुसार, शाक्य और कोलिय जनपदों की सीमा पर होकर बहती थी। यह आधुनिक रोहिणी नदी ही है, जो डोमिनगढ और गोरखपुर के बीच रापती नदी में मिलती है। रुक्खधम्म जातक और फन्दन जातक में भी इस नदी का उल्लेख है।

हिरण्यवती (हिरञ्ञवती) नदी कुसिनारा के समीप होकर बहती थी। मल्लों का उपवत्तन नामक शाल-वन इसी नदी के किनारे पर स्थित था। महापंडित राहुल सांकृत्यायन के मतानुसार इसका आधुनिक नाम सोनरा नाला है, जिसे हिरवा की नारी भी कहकर पुकारा जाता है।[१] डा० राजबली पाण्डेय ने इस नदी की पहचान छोटी गण्डक नदी से की है।[२] डा० विमलाचरण लाहा का भी मत है कि हिरण्यवती नदी छोटी गण्डक ही है, जो अजितवती नाम से कुसिनारा के समीप होकर बहती है।[३] हम सोनरा नाला को ही हिरण्यवती नदी मानना

---

१. बुद्धचर्या, पृष्ठ ५७२; मिलाइये भिक्षु धर्मरक्षित त्रिपिटकाचार्य : बुद्धकालीन भारत का भौगोलिक परिचय, पृष्ठ १०।

२. गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियों का इतिहास, पृष्ठ १०।

३. हिस्टोरिकल ज्योग्रेफी ऑव एन्शियन्ट इंडिया, पृष्ठ ३२, ८५।

अधिक ठीक समझते हैं। सप्पिनी नदी राजगृह के पास होकर बहती थी। यह आधुनिक पंचान नदी ही है। संयुत्त-निकाय के सनंकुमार-सुत्त में हम भगवान् को सप्पिनी नदी के तट पर विहार करते देखते है। अन्य कई अवसरों पर भी भगवान् ने इस नदी के किनारे पर विहार किया। जैसा इसके "सप्पिनी" नाम से स्पष्ट है, यह नदी सर्पिणी की तरह टेढ़ी-मेढ़ी बहती थी। इसी कारण इसका यह नाम पड़ा।[1] एक बार भगवान् गिज्झकूट (गृध्रकूट) पर्वत से इस नदी के तट पर आये थे और कुछ परिव्राजकों से मिले थे।[2] एक परिव्राजकाराम भी इस नदी के तट पर स्थित था।

नेरंजरा (सं० नैरंजना) के तट पर, उरुवेला के समीप, भगवान् ने छह वर्ष तक तप किया था।[3] और उसके बाद भी कई बार यहाँ विहार किया था।[4] संयुत्त-निकाय के तपोकम्म-सुत्त, नाग-सुत्त, सत्तवस्सानि-सुत्त, आयाचन-सुत्त, गारव-सुत्त, मग्ग-सुत्त और ब्रह्म-सुत्त का उपदेश इस नदी के तट पर विहार करते हुए भगवान् ने दिया था। नेरंजरा नदी का आधुनिक नाम नीलाजन नदी है, जिसके पश्चिम की ओर करीब २०० गज की दूरी पर बोध-गया (बुद्ध-गया) स्थित है। बुद्ध-गया के समीप होकर यह नदी उस समय के समान आज भी बहती है। नीलाजन नदी बुद्ध-गया से कुछ ऊपर चलकर मोहना नदी में मिलती है और मिलकर दोनो फल्गु नदी कहलाती है। इसीलिये नेरंजरा को कुछ विद्वानों ने आधुनिक फल्गु नदी भी कह दिया है। वस्तुतः हमें दोनों में भेद करना चाहिए।[5]

---

१. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ २१९।

२. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २९, १७६।

३. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ७५; अरियपरियेसन (पासरासि) सुत्तन्त (मज्झिम० १।३।६); महासच्चक-सुत्तन्त (मज्झिम० १।४।६); बोधि-राजकुमार-सुत्तन्त (मज्झिम० २।४।५); पधान-सुत्त (सुत्त-निपात)।

४. देखिये उदान (बोधिवग्ग); महापरिनिब्बाण-सुत्त (दीघ २।३) अंगुत्तर-निकाय, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २०-२३।

५. देखिये बड़ुआ : गया एण्ड बुद्धगया, पृष्ठ १०१।

नेरंजरा नदी के तट पर, उरुवेला के समीप, सुप्रतिष्ठित तीर्थ (सुप्पतिट्ठित तित्थ) नामक घाट था, जहाँ भगवान् ने बुद्धत्व-प्राप्ति से पूर्व स्नान किया था।[१] उरुवेला के समीप नेरंजरा के सुन्दर प्राकृतिक दृश्य का वर्णन स्वयं भगवान् बुद्ध ने किया है जिसका उल्लेख हम तृतीय परिच्छेद में उरुवेला का विवरण देते समय करेंगे। पालि परम्परा के अनुसार निर्मल जल वाली (नेला जला) या नीले जल वाली (नीलाजला) होने के कारण यह नदी नेरंजरा (नैरंजना) कहलती थी। वग्गुमुदा नदी का उल्लेख विनय-पिटक[२] में है। यह नदी वैशाली के समीप होकर बहती थी। इस नदी के तट पर रहने वाले भिक्षुओं को लक्ष्य करके ही चतुर्थ पाराजिका प्रज्ञप्त की गई थी।[३] महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने इस नदी को बाग्मती नदी से मिलाया है।[४] परन्तु हम वस्तुतः बाहुमती नदी को ही बाग्मती नदी से मिलाना अधिक ठीक समझते हैं। संयुत्त-निकाय के साधु-सुत्त में यम की नदी वेतरणी (वैतरणी) का उल्लेख है। "वह यम की वैतरणी को लाँघ, दिव्य स्थानों को प्राप्त होता है।"[५] जातक[६] में भी कई जगह वेतरणी नदी का उल्लेख है। यद्यपि विद्वानों ने उड़ीसा, गढवाल और कुरुक्षेत्र में वेतरणी नदियाँ खोज ही निकाली हैं, परन्तु हम विशेषतः पालि की "यम की नदी वैतरणी" को इस भूलोक में ढूँढना पसन्द नहीं करते।

सुतनु नामक एक नदी श्रावस्ती के समीप होकर बहती थी, ऐसा हमें संयुत्त-निकाय के सुतनु-सुत्त से पता लगता है। सम्भवत. यह नदी अचिरवती नदी में

---

१. जातक, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ९१ (हिन्दी अनुवाद)।
२. पृष्ठ ५४३ (हिन्दी अनुवाद)।
३. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ५४३।
४. साहित्य निबन्धावली, पृष्ठ १८६।
५. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पहला भाग, पृष्ठ २३।
६. जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४७२; जिल्द चौथी, पृष्ठ २७३; जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ २६९।

गिरने वाली उसकी कोई सहायक नदी थी। सुतनु नदी के तीर पर, उपर्युक्त सुत्त के साक्ष्य पर, आयुष्मान् अनुरुद्ध ने विहार किया था।

अचिरवती की ही एक सहायक नदी सम्भवत अजकरणी नदी थी। इसके किनारे पर लोणगिरि या लेण नामक विहार था जहाँ सब्बक (या सप्पक) स्थविर रहते थे। स्थविर भूत ने भी इस नदी के तट पर निवास किया था।

काकाति जातक मे केबुक नामक नदी का उल्लेख है, जिसके सम्बन्ध मे हम पहले परिच्छेद मे कह चुके है।

बक ब्रह्मा जातक मे एर्णी नामक नदी का उल्लेख है, जिसकी आधुनिक पहचान करना कठिन है।

अगुत्तर-निकाय[1] मे मन्दाकिनी नदी का उल्लेख है, जिसे उत्तर भारत मे अलकनन्दा की सहायक नदी भी माना जा सकता है और चित्रकूट के समीप बहने वाली आधुनिक मन्दाकिनी भी। सम्भवत दूसरी पहचान ही अधिक ठीक है।

गगा की सहायक नदी के रूप मे मिगसम्मता नदी का उल्लेख जातक मे है। इसे वहाँ हिमवन्त से निकल कर गंगा मे मिलती दिखाया गया है। "हिमवन्ततो गङ्गं पत्ता।"[2] उपर्युक्त नदियो के अतिरिक्त अन्य कई छोटी नदियों के नाम भी पालि साहित्य मे ढूँढे जा सकते है, परन्तु उनकी निश्चित भौगोलिक स्थिति सम्बन्धी विवरण प्राप्त न होने के कारण उन्हे किस प्रदेश मे रक्खा जाय, इसका सम्यक् निर्णय हमारे वर्तमान ज्ञान की अवस्था मे नही हो सकता।

पालि साहित्य मे हिमालय का नाम हिमवा या हिमवन्त है। दीघ-निकाय के अम्बट्ठ-सुत्त, महापदान-सुत्त और महासमय-सुत्त तथा सयुत्त-निकाय के नाना-तित्थिय-सुत्त, रज्ज-सुत्त, नाग-सुत्त, हिमवन्त-सुत्त, मक्कट-सुत्त और पठम-पब्बतुपमा-सुत्त मे हिमालय का उल्लेख है। अन्य बीसो स्थलो पर पालि तिपिटक मे इस पर्वत का उल्लेख पाया जाता है और यही बात अट्ठकथाओ के सम्बन्ध में भी है। आजकल हिमालय नाम का प्रयोग कश्मीर से असम तक फैले सम्पूर्ण हिमालय पर्वत के लिये किया जाता है और यही बात पालि तिपिटक और

---

१. जिल्द चौथी, पृष्ठ १०१।

२. जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ ७२।

उसकी अट्ठकथाओं के लिये भी ठीक मानी जा सकती है। कुछ विद्वानों ने पालि के हिमवन्त को केवल मध्य-हिमालय या उसका पूर्वी भाग माना है। यह ठीक नहीं है। इसका कारण यह है कि चन्द्रभागा (चिनाब) नदी के उस पार जो कुक्कुट या कुक्कुटवती नामक नगरी थी, उसे (हिमवा) के समीप एक प्रत्यन्त-नगर बताया गया है।[1] अतः हिमवा या हिमवान् (हिमालय) के विस्तार को हमें पालि परम्परा के अनुसार उसके पश्चिमी और उत्तर-पश्चिमी भाग तक भी मानना पड़ेगा, जो प्रादेशिक विभाग के अनुसार उत्तरापथ में पड़ता था। हिमालय से निकलने वाली नदियों में सिन्धु, चन्दभागा (चिनाब) और वीतंसा (वितस्ता-झेलम) की भी गणना से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिमालय के पश्चिमी भाग का ज्ञान भी हिमवन्त के रूप में पालि परम्परा को था। कुणाल जातक में हिंगुल पब्बत को हिमवन्त में स्थित बताया गया है। हिंगुल पब्बत (आधुनिक हिंगलाज) सिन्ध और बिलोचिस्तान की पहाड़ियों के बीच, कराची से ९० मील उत्तर में स्थित है। इतना ही नही, दद्दर पर्वत को भी जातक में 'हिमवा' में स्थित बताया गया है।[2] दद्दर पर्वत की आधुनिक पहचान कश्मीर के उत्तर में स्थित हिन्दुकुश पर्वत के एक भाग से की गई है। अतः पालि के हिमवन्त से तात्पर्य हमें निश्चयतः सम्पूर्ण हिमालय से लेना पड़ेगा जो भारत के उत्तर में उसके पश्चिमी कोने से लेकर पूर्वी कोने तक फैला हुआ है। हिमालय के उत्तर के उस पार के प्रदेश से भी हम पालि परम्परा को परिचित देखते हैं, जैसा कि "उत्तर हिमवन्त",[3] के प्रयोग से स्पष्ट प्रकट होता है और "उत्तर-कुरु" आदि के विवरणों से भी।

पालि परम्परा के अनुसार हिमालय उन सात पर्वतों में से है जो गन्धमादन पर्वत को घेरे हुए हैं।[4] हिमालय का विस्तार तीन हजार योजन बताया गया है और कहा गया है कि उसमें चौरासी हजार चोटियाँ हैं।[5] हिमालय में सात बड़ी

---

१. धम्मपदट्ठकथा, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ११६।
२. देखिये आगे उत्तरापथ के प्राकृतिक भूगोल का विवेचन।
३. जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३७७; जिल्द चौथी, पृष्ठ ११४।
४. परमत्थजोतिका (सुत्त-निपात की अट्ठकथा), जिल्द पहली, पृष्ठ ६६।
५. वहीं, जिल्द पहली, पृष्ठ २२४; जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४४३।

झीलें हैं, जिनके नाम हैं, अनोतत्त, कण्णमुण्ड, रथकार, छद्दन्त, कुणाल, मन्दाकिनी और सीहप्पपातक, जो सूर्य की गरमी से कभी तप्त नहीं होतीं।[१] हिमालय से ५०० नदियाँ निकलतीं हैं, जिनमें दस मुख्य हैं। इनके नाम हैं, गंगा, यमुना, अचिरवती, सरभू, मही, सिन्धु, सरस्सती, वेत्तवती, वीतंसा और चन्दभागा।[२] ऊहा नदी भी हिमालय में है।[३] हिमालय सघन वनों से आच्छादित है और ध्यान के लिये अनुकूल स्थान है।[४] अंगुत्तर-निकाय में तथा संयुत्त-निकाय के हिमवन्त-सुत्त, मक्कट-सुत्त और पठम-पब्बतुपमा-सुत्त में उसे पर्वतराज (पब्बतराजा) कहकर पुकारा गया है।

पर्वतराज हिमालय (हिमवन्तो पब्बतराजा) का चित्रमय वर्णन करते हुए मिलिन्द-प्रश्न में कहा गया है "पर्वतराज हिमालय पाँच सौ योजन ऊँचा आकाश में उठा हुआ है, तीन हजार योजन के घेरे में फैला है, चौरासी हजार चोटियों से सजा हुआ है, इससे पांच सौ बड़ी बड़ी नदियाँ निकलती हैं, बड़े-बड़े जीवों का यह घर है, इसमें अनेक प्रकार के गन्ध हैं, सैकड़ो दिव्य औषधियों से यह भरा है और यह आकाश में उठे हुए मेघ की तरह दिखाई देता है"।[५] इसी प्रकार हिमालय

---

१. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द चौथी, पृष्ठ १०१; परमत्थजोतिका, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४०७।

२. मिलिन्दपञ्हो में कहा गया है,"हिमवन्ता पब्बता पञ्च नदीसतानि सन्दन्ति। तेसं महाराज पञ्चन्नं नदीसतानं दसेव नदियो नदीगणनाय गणीयन्ति सेय्यथीदं---गंगा, यमुना, अचिरवती, सरभू, सिन्धु, सरस्सती, वेत्तवती, वीतंसा, चन्दभागा।" पृष्ठ ११७। (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण); देखिये मिलिन्दप्रश्न (हिन्दी अनुवाद, द्वितीय संस्करण), पृष्ठ १४४।

३. किं पन महाराज हिमवति ऊहा नदी तया दिट्ठाति। मिलिन्दपञ्हो, पृष्ठ ७३ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

४. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ २६५; मिलाइये मिलिन्दप्रश्न, पृष्ठ १० (हिन्दी अनुवाद, द्वितीय संस्करण)।

५. मिलिन्दप्रश्न, पृष्ठ ३४७-३४८ (भिक्षु जगदीश काश्यप का हिन्दी अनुवाद, द्वितीय संस्करण); मूल पालि इस प्रकार है, "हिमवन्तो पब्बतराजा

पर्वत पर वर्षा होने के दृश्य को एक उपमा के लिये इस ग्रन्थ में प्रयुक्त किया गया है।[1] हिमालय पर्वत पर होने वाले नागपुष्प के सम्बन्ध में कहा है कि जब यह फूलता है तो इसकी गन्ध धीमी-धीमी वायु के सहारे दस-बारह योजन तक चली जाती है।[2]

कुणाल जातक (हिन्दी अनुवाद, पंचम खण्ड, पृष्ठ ५०१-५०२) में भी हमें हिमालय का सुन्दर वर्णन उपलब्ध होता है। और महावेस्सन्तर जातक (हिन्दी अनुवाद, षष्ठ खण्ड, पृष्ठ ५३६-३८), में तो हिमालय, उसकी वनस्पतियों और पशु-पक्षियों का सम्भवतः विशदतम वर्णन ही उपलब्ध है।

स्थविर सीवली श्रावस्ती से हिमवन्त गये थे। उनके साथ ५०० अन्य भिक्षु भी गये थे। आठ दिन में वे हिमालय पहुँचे थे।[3] अशोक के काल में मज्झिम स्थविर ने हिमवन्त प्रदेश में बुद्ध-शासन का प्रचार किया था। उनके साथ कस्सप-गोत्त, मूलदेव, अलकदेव, सहदेव और दन्दभिस्सर नामक भिक्षु भी गये थे।[4] "महावंश"[5] में कहा गया है कि राजा अशोक के लिये नागलता की दाँतौन हिमालय से लाई गई थी। कुणाल जातक का उपदेश भगवान् ने हिमवन्त प्रदेश मे ही दिया था। संयुत्त-निकाय के रज्ज-सुत्त में भगवान् बुद्ध के हिमालय प्रदेश मे जाने और वहाँ एक अरण्यकुटिका मे निवास करने का उल्लेख है। अन्य अनेक भिक्षुओं के भी

पञ्चयोजनसतं अब्भुग्गतो नभे तिसहस्सयोजनायामवित्थारो चतुरासीतिकूट-सहस्सपटिमण्डितो पञ्चन्नं महानदीसतानं पभवो महाभूतगणालयो नानाविध-गन्धधरो दिब्बोसधसतसमलंकतो नभे वलाहको विय अब्भुग्गतो दिस्सति। मिलिन्दपञ्हो पृष्ठ २७७ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

१. देखिये मिलिन्द-प्रश्न पृष्ठ २४२ (हिन्दी अनुवाद, द्वितीय संस्करण)।

२. हिमवन्ते पब्बते नागपुप्फसमय उजु वाते वायन्ते दस द्वादस योजनानि पुप्फगन्धो वायति। मिलिन्द पञ्हो, पृष्ठ २७८ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण), देखिये मिलिन्द प्रश्न (हिन्दी अनुवाद द्वितीय संस्करण), पृष्ठ ३४८।

३. थेरगाथा-अट्ठकथा, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १३८।

४. दीपवंस ३।१०; महावंस १।३१७ (हिन्दी अनुवाद)।

५. ५।२५ (हिन्दी अनुवाद)।

हिमालय की अरण्य कुटिकाओं में निवास करने का उल्लेख इसी निकाय के जन्तु-सुत्त में किया गया है। सुखविहारी जातक तथा अन्य कई जातकों में लोगों के ऋषि प्रव्रज्या लेकर हिमवन्त जाने और वहाँ आश्रय बनाकर रहने का उल्ले I है। मातिपोसक जातक में हिमालय के करण्डक नामक एक आश्रमपद (अस्स-मपद) का उल्लेख है। दीघ-निकाय के महासमय-सुत्त में हिमालय को यक्षों का निवास-स्थान कहा गया है और इसी निकाय के महापदान-सुत्त में हिमालय पर पाये जाने वाले करविक नामक पक्षी का उल्लेख है। हिमालय पर पाये जाने वाले अनेक जानवरों के वर्णन भी पाये जाते हैं। हिमालय से पच्चेकबुद्ध बुद्ध-पूर्व काल में इसिपतन मिगदाय आया-जाया करते थे, यह हम इसिपतन मिगदाय के वर्णन में तृतीय परिच्छेद में देखेंगे। हिमालय में रहने वाले तपस्वियों के भारत के राजगृह, चम्पा और वाराणसी जैसे नगरों में नमक और खटाई का स्वाद लेने के लिए आने के उदाहरण भी जातक-कथाओं में मिलते हैं।[1]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि हिमालय पर्वत के रूप में तो पालि परम्परा को सुविदित था ही, उसे एक अलग प्रदेश मान कर भी अक्सर उसका वर्णन किया गया है। विशेषतः जातकों में हमें हिमालय पर्वत की विभिन्न श्रेणियों और शिखरों के वर्णन उपलब्ध होते हैं। इस प्रकार अस्सकण्ण गिरि,[2] इसिधर,[3] उदक पब्बत[4] रजत पब्बत,[5] कंचन पब्बत,[6] करवीक पब्बत,[7] काल गिरि,[8] चित्तकूट,[9]

---

१. देखिये आगे तीसरे परिच्छेद में इन नगरों के विवरण।

२. जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ १२५।

३. उपर्युक्त के समान।

४. वहीं, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ३८।

५. वहीं, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १७६।

६. वहीं, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३९६।

७. वहीं, जिल्द छठी, पृष्ठ १२५।

८. वहीं, जिल्द छठी, पृष्ठ २६५।

९. वहीं, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १६०; जिल्द तीसरी, पृष्ठ २०८; जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ३३७।

मणिपस्स,[1] युगन्धर,[2] सुरियपस्स[3] और सुदस्सन[4] आदि न जाने कितने पर्वत हिमवन्त में गिनाये गये हैं। कंचन पर्वत को वर्तमान कंचनचंगा माना जा सकता है। संयुत्त-निकाय के नाना तित्थिय-सुत्त में, जिसका उद्धरण मिलिन्दप्रश्न में भी दिया गया है, सेत (श्वेत) नामक पर्वत को हिमालय के सब पर्वतों या पर्वत-शिखरों में श्रेष्ठ बताया गया है।[5] सारत्थप्पकासिनी में उपर्युक्त सेत (श्वेत) पर्वत को कैलाश पर्वत बताया गया है। अतः पालि परम्परा के अनुसार हिमालय की सबसे ऊँची चोटी का नाम सेत (श्वेत) पर्वत या केलास (कैलाश) ही है। जातक में इसे हिमाच्छादित तथा स्वच्छ वर्ण का बताया गया है। अपदान[6] में हिमालय के पर्वत-शृंगों की एक लम्बी सूची दी गई है, जैसे कि लम्बक, गोतम, तसभ, सोभित, कोसिक, कदम्ब और भरिक आदि। पालि परम्परा का चित्तकूट हिमवन्त में है, अनवतप्त (अनोतत्त) दह के पास, यह एक विशेष बात है। जवनहंस जातक में उसे निश्चयतः हिमालय और अनोतत्त दह से सम्बद्ध किया गया है। पालि परम्परा के गन्धमादन[7] को (कैलाश) नन्दोलाल दे ने रुद्र हिमालय से मिलाया है।[8] गन्धमादन के सम्बन्ध में आचार्य बुद्धघोष ने कहा है कि वह हरे रंग का था और उसमें अनेक सुगन्धित वनस्पतियाँ उगती थीं।[9]

---

१. वहीं, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ३८।

२. वहीं, जिल्द पहली, पृष्ठ ३२२।

३. वहीं, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ३०।

४. उपर्युक्त के समान।

५. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पहला भाग, पृष्ठ ६६; मिलिन्दप्रश्न; (हिन्दी अनुवाद, द्वितीय संस्करण), पृष्ठ २९५।

६. पृष्ठ क्रमशः १५, १६२, १६६, ३२८, ३८१, ३८२ और ४४०।

७. जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४५२; जिल्द चौथी, पृष्ठ २८७।

८. ज्योग्रेफीकल डिक्शनरी, पृष्ठ ६०।

९. पपंचसूदनी, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३४।

यामुन नामक पर्वत का भी जातक[1] में उल्लेख है, जिसे नन्दोलाल दे ने यमुनोत्तरी से मिलाया है।[2]

वेस्सन्तर जातक में वंक पब्बत का उल्लेख है और उसे वहाँ हिमालय में स्थित बताया गया है। इस प्रकार इस पर्वत को उस वंक या वंकक पर्वत से भिन्न समझना चाहिए जो राजगृह में स्थित वेपुल्ल पब्बत का प्राचीन नाम था। वेस्सन्तर जातक में विपुल पर्वत का भी उल्लेख है और उसे वहाँ गन्धमादन पर्वत के उत्तर में स्थित बताया गया है। इस प्रकार स्पष्टतः इसे राजगृह के विपुल या वेपुल्ल पब्बत से भिन्न होना चाहिए। हिमालय की पश्चिमी श्रेणियों का वर्णन हम उत्तरापथ के प्रसंग में करेंगे।

कैलाश के समीप अनोतत्त (अनवतप्त—कभी गर्म न होने वाली) दह थी, जो सुदस्सनकूट, चित्तकूट, कालकूट, गन्धमादन और केलास, इन पाँच हिमाच्छादित पर्वत-शिखरों से आवेष्टित थी।[3] अनोतत्त दह (अनवतप्त ह्रद) को यूआन् चुआङ्ग में "अनु-त" कहकर पुकारा है।[4] अनोतत्त दह को अक्पर मानसरोवर झील से मिलाया जाता है। अनोतत्त दह हिमालय पर स्थित सात बड़ी झीलो में से एक थी। जैसा हम पहले देख चुके है, भगवान् बुद्ध यहाँ कई बार गये थे और बाद में भी अनेक स्थविरों के वहाँ जाने के उल्लेख पालि साहित्य में मिलते है। महावंस-टीका के अनुसार अनोतत्त दह का जल अभिषेक के समय प्रयोग किया जाता था। चक्क दह,[5] सिम्बली,[6] छद्दन्त[7] और कण्णमुण्डा[8] जैसी

---

१. जिल्द चौथी, पृष्ठ २००।

२. ज्योग्रेफीकल डिक्शनरी, पृष्ठ २१५

३. पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५८५; मनोरथपूरणी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ७५९।

४. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रैविल्स इन इंडिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३०।

५. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ २३२।

६. वहीं, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ९१।

७. वहीं, जिल्द छठी, पृष्ठ ३७; अंगुत्तर निकाय, जिल्द चौथी, पृष्ठ १०१।

८. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १०४।

अन्य झीलो के विवरण भी जातक-कथाओ मे पाये जाते हैं। हिमवन्त प्रदेश की नदियो मे ऊहा और मिगसम्मता का उल्लेख तो हम पहले कर ही चुके है, हेमवता,[1] सीदा[2] और केनुमती[3] के नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पालि की सीदा नदी सम्भवत वही है जो जैन उत्तराध्ययन-सूत्र (११।२८, पृष्ठ ४९)की सीता नदी। जैन परम्परा मे इस नदी की गणना चौदह महानदियो मे की गई है। जैन भौगोलिक विवरणो के अनुसार यह नदी नील नामक पर्वत-श्रेणी से निकलती है और पूर्वी समुद्र मे जाकर गिरती है। नील पर्वत-श्रेणी उन छह समानान्तर पर्वत-श्रेणियो मे चतुर्थ है जिनमे सबसे दक्षिण मे हिमालय है। महाभारत के भीष्म-पर्व मे सीता नदी की गणना सप्त दिव्य गगाओ मे की गई है। महाभारत के शान्ति-पर्व मे भी इस नदी का उल्लेख है तथा विष्णु और मार्कण्डेय पुराणो मे भी। निमि जातक मे सीदा नदी को उत्तर हिमालय मे स्थित बताया गया है और उसे गम्भीर और दुरतिक्रम कहा गया है। "उत्तरेण नदी सीदा गम्भीरा दुरतिक्कमा।" इसी जातक मे इसे कचन पब्बत मे होकर बहती बताया गया है और कहा गया है कि अनेक सहस्र तपस्वी इसके तट पर निवास करते थे। इसे लताओ और सुगन्धित वनस्पतियो से भी आवेष्टित बताया गया है। सीदा (सीता) नदी को हम सम्भवत आधुनिक यारकन्द या जरफशाँ नदी मे मिला सकते है।[4] काल-शिला, मनोशिला जैसी अनेक शिलाएँ, करण्डक वन जैसे अनेक वन और कचन गुहा, फलिकगुहा जैसी अनेक गुहाएँ हिमवन्त मे वर्णित की गई हैं, जिनकी पहचान आज करना मुश्किल है।

हिमवन्त पदेस मज्झिम देस तथा सम्पूर्ण जम्बुद्वीप के उत्तर मे स्थित था, जिसके प्राकृतिक भूगोल के सम्बन्ध मे कुछ सूचना हमने ऊपर दी है। जहाँ तक

---

१. वहीं, जिल्द चौथी, पृष्ठ ४३७।

२. वहीं, जिल्द छठी, पृष्ठ १००।

३. वहीं, जिल्द छठी, पृष्ठ ५१८।

४. देखिये वाटर्स : ऑन यूआन् चुआङस् ट्रैविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३२; जिल्द दूसरी, पृष्ठ २८३,; हेमचन्द्र रायचौधरी : स्टडीज इन इंडियन एण्टिक्विटीज, पृष्ठ ७५-७६।

मज्झिम देस की आन्तरिक सीमाओं का सम्बन्ध है, अनेक पर्वतों और पहाड़ियों का उल्लेख पालि परम्परा में किया गया है। सर्व प्रथम हमारा ध्यान गिज्झकूट, इसिगिलि, वेपुल्ल, वेभार और पण्डव पर्वतों की ओर जाता है, जो राजगृह को घेरे हुए थे और भगवान् बुद्ध की स्मृतियों से अनुविद्ध हैं। हम इनका विस्तृत परिचय तृतीय परिच्छेद में राजगृह का विवरण देते समय देंगे। इन्द्रिय जातक में अरंजर गिरि को मज्झिम देस में सम्मिलित बताया गया है। इस जातक के अनुसार यहाँ काल देवल के छोटे भाई नारद नामक ऋषि ने निवास किया था। वेस्सन्तर जातक के वर्णनानुसार अरजर पर्वत जेतुत्तर नगर से १५ योजन और कोन्तिमार नदी से ५ योजन की दूरी पर स्थित था। इन सब स्थानों की अभी पूरी खोज नही हो सकी है। सुंसुमार गिरि का उल्लेख भग्ग गण-तन्त्र का विवेचन करते समय और कुररघर पर्वत का उल्लेख अवन्ती के प्रसंग में हम तृतीय परिच्छेद में करेंगे।

अनेक वनों के उल्लेख पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं में मिलते हैं। इनमें अनेक प्राकृतिक वन भी थे और अनेक मृगोद्यानों और उपवनों के रूप में भी। भगवान् बुद्ध किसी स्थान की यात्रा करते समय अक्सर या तो उसके समीप किसी नदी के किनारे, या आम्रवन में, या सिंसपा-वन में, या आमलकी-वन में, या अरण्य में, या किसी एकान्त निवास-स्थान में ठहरते थे। इस प्रकार अनेक वनो, उपवनों, आम्रवनों आदि के विवरण पालि तिपिटक में मिलते है, जैसे कि मज्झिम देस मे मुख्यतः श्रावस्ती का अन्धवन, साकेत के अंजनवन और कण्टकीवन, नलकपान का केतकवन, कपिलवस्तु और वैशाली के महावन, शाक्य जनपद के लुम्बिनी वन और आमलकी वन, कुसिनारा के मल्लों का शाल-वन, भग्ग राज्य में भेसकलावन, चेति राज्य में पारिलेय्यक वन, काशी जनपद का अम्बाटक वन, आलवी, कौशाम्बी और सेतव्या के सिंसपा-वन, राजगृह, किम्बिला और कजगल के वेणुवन, मोरियों का पिप्फलिवन, वज्जियों के नागवन और अवरपुर वनखण्ड तथा भद्दिय के जातियावन, आदि। चूंकि ये सब वनोपवन और प्राकृतिक स्थल किसी ग्राम या नगर से ही सम्बन्धित होते थे और अक्सर तो उनके नाम भी उनके समीपवर्ती स्थानों के आधार पर ही होते थे, अतः भौगोलिक दृष्टि से उनकी स्थिति को ठीक रूप से समझने के लिये यह आवश्यक होगा कि हम उनका विवरण अलग से न देकर उन स्थानों के भूगोल के प्रसंग में दें, जहाँ वे स्थित थे। अब हम बुद्धकालीन जम्बु-

द्वीप के शेष चार प्रादेशिक विभागों के विस्तार और उनके प्राकृतिक भूगोल पर आते हैं।

पुब्ब, पुब्बन्त, पाचीन या पुरत्थिम देश के अन्तर्गत हम वग और सुह्म (सुम्भ) जनपदो को रख सकते है। उक्कल (उत्कल) और उसके नीचे कलिंग को तो दक्षिणापथ मे ही रखना ठीक होगा, क्योकि ये सल्लवती (सिलई) नदी और सेतकण्णिक नामक निगम के दक्षिण मे ही स्थित हो सकते है। परम्परागत सोलह महाजनपदो की सूची मे से किसी जनपद को हम पूर्व देश के अन्तर्गत नही रख सकते। हाँ, अङ्ग-मगध और यहाँ तक कि काशी-कोसल जैसे जनपदो को हम मध्य-देश के अन्तर्गत ही पूर्वी जनपद अवश्य मान सकते है। जैसा हम मज्झिम देश की सीमाओ के विवरण मे देख चुके है, पालि परम्परा के अनुसार पूर्व देश की पश्चिमी सीमा कजगल नामक निगम थी। पूर्व देश की अन्य सीमाओ का स्पष्ट निर्देश पालि परम्परा मे नही किया गया है।

पूर्व देश के प्राकृतिक भूगोल के सम्बन्ध मे अधिक विवरण पालि तिपिटक या उसकी अट्ठकथाओ मे प्राप्त नही होता। पालि परम्परा अग-मगध के विवरणो मे इतनी अधिक व्यस्त है कि उसने भगवान् बुद्ध के समान सम्भवत कोसी नदी को पार नही किया है। कोसिकी नदी का उल्लेख एक जातक-कथा मे है, जहाँ उसे हिमवन्त प्रदेश मे होकर बहने वाली गगा की सहायक नदी बताया गया है। यही उसके किनारे पर स्थित एक तीन योजन विस्तृत आम्रवन का भी उल्लेख है।[1] यह कोसिकी नदी निश्चयत आधुनिक कोसी या कुसी नदी ही है। चम्पा नदी अग और मगध की सीमा पर थी, अत उसे निश्चयत. मज्झिम देस मे ही माना जायगा। पूर्व देश के प्राकृतिक भूगोल के सम्बन्ध मे अन्य कोई महत्वपूर्ण जानकारी हमे पालि परम्परा मे नही मिलती।

उत्तरापथ की सीमाओं का कोई निश्चित उल्लेख पालि साहित्य मे नही मिलता। "उत्तरापथ" शब्द प्रारम्भिक रूप मे उस व्यापारिक मार्ग का द्योतक था, जो श्रावस्ती या राजगृह से गन्धार जनपद तक जाता था। इसी प्रकार "दक्षिणापथ" नाम अपने मौलिक रूप मे उस व्यापारिक मार्ग का था, जो श्रावस्ती से प्रति-

---

१. जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ २, ५, ६।

ष्ठान तक जाता था। बाद में इन दोनों शब्दों का प्रयोग व्यापारिक मार्गों के स्थान पर उन प्रदेशों के लिये किया जाने लगा, जहाँ पर होकर ये गुजरते थे।

यदि उपर्युक्त "उत्तरापथ" मार्ग को, जो श्रावस्ती या राजगृह से गन्धार जनपद तक जाता था, उत्तरापथ की सीमाओं के निर्धारित करने में प्रमाण-स्वरूप माना जाय, तब तो अंग से गन्धार तक का और हिमालय से लेकर विन्ध्याचल तक का सारा प्रदेश उत्तरापथ में सम्मिलित माना जायगा। परन्तु इतनी विस्तृत व्याख्या उत्तरापथ जनपद की पालि परम्परा को स्वीकार नहीं हो सकती। उसके अनुसार तो उत्तरापथ को मज्झिम देस के पश्चिम और अपरान्त के उत्तर का वह भाग माना जायगा, जिसमें होकर सिन्धु, और वीतसा (वितस्ता—झेलम और चन्दभागा (चन्द्रभागा—चिनाव) जैसी उसकी सहायक नदियाँ बहती थीं। प्राचीन सोलह महाजनपदों में से केवल दो अर्थात् कम्बोज और गन्धार को उत्तरापथ में सम्मिलित माना गया है। घट जातक में अवश्य महाकंस के राज्य कंस-भोग को, जिसकी राजधानी असितंजन नामक नगरी थी, उत्तरापथ में बताया गया है। इसी आधार पर सम्भवतः डा० विमलाचरण लाहा ने अपने ग्रन्थ "इण्डिया एज़ डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्स्ट्स ऑव बुद्धिज़्म एंड जैनिज़्म"[1] में पूरे सूरसेन जनपद को उत्तरापथ में रखने की प्रवणता दिखाई है। इसी ग्रन्थ में एक अन्य जगह उन्होंने सूरसेन के साथ मच्छ (मत्स्य) जनपद को भी उत्तरापथ में रखने का प्रस्ताव किया है,[2] परन्तु मार्कण्डेय पुराण का अनुसरण कर अन्त में उन्होंने इन दोनों जनपदों को अपरान्त प्रदेश की सीमाओं के अन्दर रख दिया है।[3] पालि परम्परा के अनुसार ऐसा करना ठीक नहीं है। हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि जातक खुद्दक-निकाय का ग्रन्थ है और विनय-पिटक के महावग्ग के सामने उसके साक्ष्य का, जब कि दोनों में विरोध हो, कोई महत्व नहीं है। विनय-पिटक के महावग्ग में, हम पहले देख चुके हैं, मज्झिम देस की पश्चिमी सीमा थूण (थाणेश्वर) नामक ग्राम बताई गई है। मच्छ और सूरसेन दोनों जनपद प्रायः कुरु राष्ट्र

---

१. पृष्ठ ६७, ७४।

२. वहीं, पृष्ठ ७४।

३. वहीं, पृष्ठ ७५-७६।

के दक्षिण में थे। दोनों ही उत्तर में कुरु और दक्षिण में वंस (वत्स) जनपद के बीच में स्थित थे।[1] जब कुरु और वंस दोनों को निश्चित रूप से हम मज्झिम देस के अन्तर्गत मानते हैं तो मच्छ और सूरसेन को हम उसकी सीमा से बाहर किस प्रकार मान सकते हैं? घट जातक के अनुसार भी हम केवल इतना कह सकते हैं कि कंसभोग नामक राज्य जिसकी राजधानी असितंजन नामक नगरी थी, और जहाँ महाकंस नामक राजा राज्य करता था, उत्तरापथ में था। जातक का कंसभोग (कंसभोज भी पाठान्तर) वस्तुत: निकायों का कम्बोज ही लगता है, जो निश्चयत: उत्तरापथ में था। हम पहले कह चुके है कि गन्धार और कम्बोज नामक बुद्ध-कालीन महाजनपद उत्तरापथ मे सम्मिलित थे। इन दो जनपदो के अतिरिक्त सिन्धु और सोवीर को भी हमें उत्तरापथ में सम्मिलित मानना चाहिए। डा० विमलाचरण लाहा ने इन जनपदों को अपनी "ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज्म"[1] में अपरान्त में सम्मिलित किया है जो अशोक के पंचम शिलालेख, जिसमें अपरान्त की सीमाओं को काफी बढाकर वर्णन किया गया है और यूआन् चुआङ के यात्रा-विवरण के अनुसार तो ठीक है,[2] परन्तु पूर्ववर्ती पालि परम्परा के अनुसार तो सिन्धु-सोवीर को उत्तरापथ में ही रखना अधिक ठीक जान पडता है। इसके कारण इस प्रकार है। सबसे पहली बात तो यह है कि अपरान्त, पालि परम्परा के अनुसार, वह प्रदेश था जो बम्बई या महाराष्ट्र से लेकर सुरट्ठ और लाल रट्ठ (काठियावाड़-गुजरात) तक या अधिक से अधिक कच्छ की खाडी तक पश्चिमी समुद्र तट पर, फैला हुआ था। अत: उससे ऊपर के प्रदेश को, जिसमें सिन्धु-सोवीर देश सम्मिलित थे, उसकी सीमा के बाहर मानना चाहिए।

दूसरी बात यह है कि सिन्धु, वितंसा या वीतंसा (झेलम) और चन्दभागा (चिनाब) नदियाँ, जो सिन्धु-सोवीर देश मे होकर बहती है, अपदान[3] मे उत्तरापथ की नदियाँ कही गई है। तीसरा कारण सिन्धु-सोवीर देश को उत्तरापथ में सम्मिलित करने का यह है कि अंग-मगध देश से सिन्धु-सोवीर देश तक जिस स्थल-मार्ग का विवरण

---

१. देखिये पृष्ठ ५६-५८।

२. देखिये आगे अपरान्त प्रदेश का वर्णन।

३. पृष्ठ २७७-२९१; मिलाइये लाहा : इंडिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्स्ट्स् ऑव बुद्धिज्म एंड जैनिज्म, पृष्ठ ७३।

पेतवत्थु और विमानवत्थु की अट्ठकथाओं में सेरिस्सक की कथा के प्रसंग में तथा वण्णुपथ जातक में दिया गया है, उसे उत्तरापथ से सम्बद्ध ही माना जा सकता है। यहाँ यह बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि इस मार्ग के बीच में चन्दभागा (चिनाब) नदी के भी पार करने का उल्लेख है, जिसके उत्तरापथ में होने के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता। चौथा कारण सिन्धु-सोवीर देश को उत्तरापथ में मानने का यह है कि वह उत्तम घोड़ों के लिए प्रसिद्ध बताया गया है और उत्तम घोड़ों के लिये ही साधारणतः ख्याति बुद्ध के जीवन-काल में उत्तरापथ की थी। वेरंजा में जब भगवान् वर्षावास कर रहे थे, तो वहाँ उत्तरापथ के घोड़ों के व्यापारियों के भी उस समय पड़ाव डालने का उल्लेख है। सिन्धु-सोवीर के समान गन्धार और कम्बोज भी घोड़ों के लिये प्रसिद्ध थे।[1] अतः घोड़ों के लिये समान रूप से प्रसिद्ध होने के कारण गन्धार और कम्बोज के साथ-साथ सिन्धु और सोवीर को भी हमें उत्तरापथ में ही रखना चाहिए। सिन्धु देश को युआन् चुआङ ने सिन्धु नदी के पश्चिम का प्रदेश बताया था,[2] और सोवीर देश को प्रायः सभी आधुनिक विद्वान्, जिनमें स्वयं डा० लाहा भी सम्मिलित हैं, सिन्धु और झेलम नदियों के बीच का प्रदेश[3] या सिन्धु नदी के पूर्व में मुल्तान तक फैला प्रदेश[4] मानते हैं। अतः इन स्थितियों को ध्यान में रखते हुए सिन्धु-सोवीर को उत्तरापथ में ही माना जा सकता है। सिन्धु-सोवीर देश के हिंगुल पब्बत के पालि विवरण और उसकी आधुनिक स्थिति को देखते हुए भी, जिसका

---

१. देखिये तीसरे परिच्छेद में सिन्धु-सोवीर और गन्धार-कम्बोज जनपदों का विवरण।

२. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रैविल्स इन इंडिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २५२, २५३, २५६।

३. लाहा : इंडिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्स्ट्स् ऑव बुद्धिज्म एंड जैनिज्म, पृष्ठ ७०।

४ हेमचन्द्र रायचौधरी : पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इंडिया, पृष्ठ ५०७ पद-संकेत १; मललसेकर : डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १३१२।

विवरण हम अभी देंगे, सिन्धु-सोवीर को उत्तरापथ में ही माना जा सकता है, अपरान्त में नही। उपर्युक्त जनपदों के अतिरिक्त उत्तरापथ की सीमा में बुद्ध-काल के मद्द, सिवि, बाहिय आदि कई जनपद आते है, जिनका विवरण हम तृतीय परिच्छेद में देंगे। अब हम उत्तरापथ के प्राकृतिक भूगोल पर आते है।

जहाँ तक पर्वतो का सम्बन्ध है, हिमवन्त (हिमालय) की पश्चिमी श्रेणियों को हमे उत्तरापथ के अन्तर्गत रखना पडेगा। इस प्रकार की श्रेणियो मे, जिनके नाम पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओ मे उल्लिखित है, एक अजन पब्बत है, जिसका उल्लेख सरभंग-जातक मे है। इसे वहाँ महाटवी मे स्थित बताया गया है। नन्दोलाल दे ने इस पर्वत को पंजाब की सुलेमान पर्वत-श्रेणी से मिलाया है।[१] हिमवन्त (हिमालय) की एक श्रेणी के रूप मे ही जातक[२] तथा अपदान[३] मे "निसभ" नामक पर्वत का उल्लेख है, जिसे पुराणो के "निषध" नामक पर्वत से मिलाया गया है। इस प्रकार इसकी आधुनिक पहचान हिन्दुकुश पर्वत के रूप मे की गई है, जिसे ग्रीक लोगो ने "परोपनिसोस" या "परोपनिसद" कहकर पुकारा है।

मल्लगिरि[४] और नेमिन्धर[५] पर्वतो के उल्लेख जातको मे है। इन दोनो को कर्राकुरम श्रेणी के पर्वत माना गया है। नन्दमूलक पब्भार, जिसे जातक में उत्तर हिमवन्त मे स्थित बताया गया है,[६] उत्तरापथ मे ही माना जा सकता है। जातक[७] मे वर्णित चण्डोरण पब्बत को डा० जायसवाल ने अल्ताई पर्वत

---

१. ज्योग्रेफीकल डिक्शनरी, पृष्ठ ८
२. जिल्द छठी, पृष्ठ २०४।
३. पृष्ठ ६७।
४. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ ४३८।
५. जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ १२५।
६. जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३४०; जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ २४८
७. जिल्द चौथी, पृष्ठ ९०

का एक भाग माना है।[1] इसी प्रकार अनोम, असोक और चावल नामक पर्वतों को, जिनका अपदान में उल्लेख है, हम उत्तरापथ में ही संनिविष्ट कर सकते हैं। हिंगुल पब्बत का उल्लेख कुणाल जातक में है। उसे वहाँ हिमवन्त पदेस का एक पर्वत माना गया है। जातक का यह हिंगुल-पब्बत आधुनिक हिंगलाज ही है और सिन्धु और बिलोचिस्तान के बीच की पहाड़ियों में, कराची से करीब ९० मील उत्तर की ओर, स्थित है। तिकूट और पण्डरक पब्बत, जिनका उल्लेख जातक में मल्लगिरि के साथ किया गया है,[2] उत्तरापथ में ही रक्खे जा सकते हैं। इनमें से तिकूट या त्रिकूट पब्बत को त्रिकोट पर्वत से मिलाने का प्रयत्न किया गया है, जो पंजाब के उत्तर और कश्मीर के दक्षिण में स्थित एक पर्वत-शिखर है।[3] इसी प्रकार पण्डकर पब्बत को रुद्र हिमालय या गढ़वाल में रखने का प्रस्ताव किया गया है। ये पहचानें विशेषतः अनुमानिक ही हैं।

जातक (जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६७; जिल्द तीसरी, पृष्ठ १५-१६) में दद्दर पर्वत का उल्लेख है। इसे वहाँ हिमवा (हिमालय) में स्थित बताया गया है। सम्भवतः यह मार्कण्डेय पुराण के दर्दुर पर्वत से अभिन्न है। ग्रीक इतिहासकारों ने दरदाई नामक जाति का उल्लेख किया है, जिनके प्रदेश को आधुनिक दर्दिस्तान माना जाता है। इस प्रकार पालि के दद्दर पर्वत को हम आसानी से हिन्दु-कुश पर्वत के अन्तर्गत कश्मीर के उत्तर में स्थित मान सकते हैं। दद्दरपुर नामक एक नगर भी दद्दर पर्वत में स्थित था। चेतिय जातक के अनुसार इसे उपचर के पाँचवें पुत्र ने उस स्थान पर बसाया था, जहाँ दो पर्वत आपस में रगड़ कर 'दद्दर' शब्द करते थे।

उत्तरापथ की नदियों में, जिनका उल्लेख पालि परम्परा में हुआ है, सिन्धु, चन्दभागा (चन्द्रभागा) वितंसा या वीतंसा (वितस्ता) और सरस्सती (सरस्वती) के नाम अधिक महत्वपूर्ण हैं। जैसा हम हिमालय के वर्णन में देख चुके हैं, ये सब नदियाँ हिमालय से निकली बताई गई हैं और वहाँ से निकलने वाली दस मुख्य

---

१. इण्डियन एण्टिक्वेरी, भाग बासठवाँ, पृष्ठ १७०

२. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ ४३८

३. देखिये नन्दोलाल दे : ज्योग्रेफीकल डिक्शनरी पृष्ठ २०५

नदियों में इनकी गणना है। सिन्धु नदी आधुनिक सिन्धु नदी ही हैं, जिसे चीनी यात्रियों ने "शिन्तु" कहकर पुकारा है। पालि साहित्य में सिन्धु नदी की ख्याति सबसे अधिक इस कारण बताई गयी है कि इस के तटवर्ती प्रदेश में सर्वोत्तम जाति के घोड़े पाये जाते हैं। पपंचसूदनी[1] और मनोरथपूरणी[2] में सिन्धु नदी के तट के पास के प्रदेश के उत्तम नस्ल के घोड़ों की प्रशंसा की गई है।

चन्दभागा नदी आधुनिक चिनाब नदी है। ऋग्वेद में यह नदी 'असिक्णी' नाम से पुकारी गई है और तालेमी ने इसका नाम 'सन्दबग' या 'सन्दबल' दिया है।

मनोरथपूरणी[3] में दी गई महाकप्पिन की कथा से हमें मालूम होता है कि प्रत्यन्त (सीमा-प्रदेश) के कुक्कुटवती नामक नगर से मध्य देश की ओर भगवान् बुद्ध के दर्शनार्थ आते हुए महाकप्पिन की भेंट बुद्ध से चन्द्रभागा नदी के किनारे पर ही हुई थी। कुक्कुटवती नगर से चन्द्रभागा नदी तक आने में महाकप्पिन को दो नदियाँ और पार करनी पडी थीं, जिनके नाम थे अरवच्छा और नीलवाहना। ये नदियाँ अफगानिस्तान और चिनाब नदी के बीच के प्रदेश में ही हो सकती हैं।

वितंसा या वीतंसा नदी आधुनिक झेलम नदी है, जिसे ग्रीक लोगों ने हिडेंस्पस या बिडेस्पस कहकर पुकारा है और जिसका संस्कृत परम्परा में नाम वितस्ता है। सरस्सती (सरस्वती) नदी का उल्लेख मज्झिम-निकाय के वत्थ-सुत्तन्त में एक पवित्र नदी के रूप में किया गया है। विसुद्धिमग्ग[4] में भी उसकी गणना पवित्र नदियों में

---

१. जिल्द पहली, पृष्ठ २९८।

२. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ७५६।

३. जिल्द पहली, पृष्ठ १७५; मिलाइये सारत्थप्पकासिनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १७७; धम्मपदट्ठकथा, जिल्द दूसरी पृष्ठ, ११६; जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ १८०।

४. न गङ्गा यमुना चापि सरभू वा सरस्सती।
निन्नगा वाचिरवती मही वा पि महानदी॥ पृष्ठ ६
(धर्मानन्द कोसम्बी द्वारा सम्पादित देवनागरी संस्करण)।

की गई है। वैदिक साहित्य में भी इस प्रसिद्ध नदी सरस्वती का उल्लेख है। जहाँ तक पालि विवरणों का सम्बन्ध है, हम इस नदी की भौगोलिक स्थिति के सम्बन्ध में निश्चयतः कुछ नही कह सकते। परन्तु उसे हम आसानी से उत्तरापथ में रख सकते हैं। सम्भवतः यह वही सरस्वती नदी है जो शिमला से ऊपर हिमालय की श्रेणी से निकल कर अम्बाला के मैदान में आती है। सिन्धवारण्य नामक एक अरण्य का उल्लेख थेरीगाथा[1] में है। इसे उत्तरापथ के अन्तर्गत सिन्ध या सिन्धु देश में ही मानना पड़ेगा।

पश्चिमी समुद्र-तट पर बम्बई या महाराष्ट्र के आसपास से लेकर सुराष्ट्र या अधिक से अधिक कच्छ तक का प्रदेश बुद्ध-काल में अपरन्त (सं० अपरान्त) नाम से पुकारा जाता था। जैसा हम द्वितीय परिच्छेद में देख चुके हैं, चक्रवर्ती राजा मन्धाता (मान्धाता) के साथ अपरगोयान महाद्वीप के कुछ निवासी चले आये थे, जो यही जम्बुद्वीप मे बस गये। जिस प्रदेश को इन अपरगोयान के लोगों ने बसाया, उसी का नाम बाद में उनके नाम पर "अपरन्त" पड़ गया। अपरान्त प्रदेश महिसक मण्डल और अवन्ति-दक्षिणापथ के पश्चिम, दक्षिणापथ के उत्तर तथा उत्तरापथ के दक्षिण में स्थित था। अशोक के पाँचवें शिलालेख में अपरान्तक के अधिक विस्तृत क्षेत्र का उल्लेख किया गया है, जिसमें योन, कम्बोज और गन्धार तक सम्मिलित कर लिये गये हैं। इसी प्रकार यूआन् चुआङ ने भी अपरान्त प्रदेश का जो विवरण दिया है, उसके अनुसार "सिन्धु, पश्चिमी राजपूताना, कच्छ, गुजरात, और नर्मदा के दक्षिण का तटीय भाग अर्थात् तीन राज्य, सिन्धु, गुर्जर और वलभि" उसमें सम्मिलित थे।[2] वस्तुतः अशोक के शिलालेख में जो विवरण है, वह उसके साम्राज्य के विस्तार के विचार से है और उसी प्रकार चीनी यात्री का विवरण उसकी यात्रा की दिशा और चीनी परम्परा द्वारा किये गये "भारत के पाँच प्रदेशों या भागो" के विभाजन पर आधारित है। हमारा सम्बन्ध भगवान् बुद्ध के जीवन कालीन भूगोल से है, जिसको ध्यान में रखते हुए हम महारट्ठ (महाराष्ट्र) से लेकर सुरट्ठ (सुराष्ट्र) और लाल रट्ठ (लाट राष्ट्र) अर्थात्

---

१. गाथा ४३८ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

२. कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इंडिया, पृष्ठ ६९०।

काठियावाड़-गुजरात तक के समुद्र-तट से लगे प्रदेश को अपरन्त (अपरान्त) मान सकते हैं। डा० लाहा ने मच्छ और सूरसेन के साथ-साथ अवन्ती को भी अपरान्त प्रदेश में सम्मिलित किया है।[1] इसे हम बुद्धकालीन परिस्थिति का सूचक नहीं मान सकते। जैसा हम पहले विवेचन कर चुके हैं, मच्छ और सूरसेन निश्चयतः मज्झिम देस में हैं और अवन्ती के उत्तर भाग को मज्झिम देस में ओर अवन्ति-दक्षिणापथ को हमें दक्षिणपथ में रखना चाहिए। यही क्रम पालि परम्परा के अधिक अनुकूल है। डा० लाहा ने सिन्धु-सोवीर को भी अपरान्त में रक्खा है, जिसे उत्तरापथ में रखने के सम्बन्ध में कारणों का उल्लेख हम उत्तरापथ के प्रसंग में कर चुके हैं।

अपरन्त (अपरान्त) में हमें बुद्ध-काल के लाल रट्ठ, सुरट्ठ, सूनापरान्त और महारट्ठ, इन चार जनपदों को रखना चाहिए। बुद्धकालीन भारत के सोलह महाजनपदों में से किसी का उल्लेख अपरान्त के अन्तर्गत नही किया गया है। दीपवंस[2], महावंस[3] और समन्तपासादिका[4] के अनुसार यवन भिक्षु धर्मरक्षित ने अपरान्त में अशोक के काल में धर्म प्रचार किया था। समन्तपासादिका में अपरान्त से अलग महारट्ठ का उल्लेख है, जहाँ महाधर्मरक्षित नामक भिक्षु ने धर्म-प्रचार का कार्य किया।

अपरन्त (अपरान्त) के प्राकृतिक भूगोल की एक विशेषता, जैसा उसकी समुद्रतटीय स्थिति से स्पष्ट है, उसके पास समुद्र का होना है। अतः उसके भरुकच्छ और सुप्पारक जैसे बन्दरगाहों से अनेक व्यापारियों के लम्बी समुद्री यात्राओं पर जाने के उल्लेख हैं। इन यात्राओं के विवरण-प्रसंग में अनेक समुद्रों के वर्णन किये गये हैं, जो देखने में पौराणिक ढंग के जैसे लगते हैं, परन्तु जिनमें पर्याप्त भौगोलिक आधार है, ऐसा आधुनिक खोजों ने प्रमाणित कर दिया है। सुप्पारक जातक में "खुरमाल" नामक समुद्र का वर्णन है, जहाँ हीरे पाये जाते थे और जहाँ मानवाकार

---

१. देखिये पीछे उत्तरापथ का विवेचन।

२. ८।७

३. १२।३४ (हिन्दी अनुवाद)।

४. बुद्धचर्या, पृष्ठ ५३७ में उद्धृत।

की विशालकाय मछलियाँ थीं, जिनकी छुरे (खुर) जैसी तीक्ष्ण नासिकाएँ थीं। डा० काशीप्रसाद जायसवाल का मत है कि इस समुद्र को बेबीलान के आसपास का समुद्र होना चाहिए। अन्य कारणों के साथ एक कारण उन्होंने अपने मत की पुष्टि में यह दिया है कि बेबीलान के एक प्राचीन देवता का नाम "खुर" था।[1] इसी जातक[2] में "अग्गिमाल" नामक समुद्र का वर्णन है, जिसमें से, जैसा उसके नाम से स्पष्ट है, आग की लपटें निकलती थी। भरुकच्छ के व्यापारी यहाँ समुद्री यात्रा करते हुए आये थे। डा० जायसवाल ने इसे अदन के समीप अरब के किनारे का समुद्र या सोमाली तट का कुछ भाग बताया है।[3] "अग्गिमाल" समुद्र से मिलते-जुलते एक अन्य "वलभामुख" नामक समुद्र का वर्णन भी है, जिसमें प्रज्वलित, भयंकर वाडवाग्नि के उठने के घोर शब्द होने का उल्लेख है।[4] इस समुद्र को भूमध्यसागर से मिलाने का प्रस्ताव किया गया है, जिसमें आज तक ज्वालामुखी की लपटें कभी-कभी उठा करती हैं। "नलमाल समुद्र" का भी इसी जातक में उल्लेख है। इसमें बाँस के रंग की मूँगे की चट्टानें थीं। इसीलिए यह बाँसों (नल) के वन की तरह दिखाई पड़ता था। भरुकच्छ के व्यापारी धन की खोज में यहाँ गये थे।[5] डा० जायसवाल ने अनुसंधान कर बताया है कि (नलमाल समुद्र) वह प्राचीन काल की नहर थी, जो लाल सागर को नील नदी से मिलाती थी।[6] सुप्पारक जातक में जिस सर्वाधिक महत्वपूर्ण समुद्र का उल्लेख है, वह "कुसमाल" नामक है। यह नील वर्ण (नीलवण्ण) का था। हरी घास का मैदान जैसा लगता था। नीलम मणि यहाँ प्रचुरता से पाई जाती थी। भरुकच्छ के व्यापारियों को यह समुद्र रास्ते में पड़ा था।[7] इस "कुसमाल" समुद्र को विद्वानों ने पुराणों के कुश द्वीप

---

१. जर्नल ऑव बिहार एंड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, जिल्द छठी, पृष्ठ १९५
२. जिल्द चौथी, पृष्ठ १३९।
३. जर्नल ऑव बिहार एंड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, जिल्द छठी, पृष्ठ १९५।
४. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ १४१।
५. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ १४१।
६. जर्नल ऑव बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, जिल्द छठी, पृष्ठ १९५
७. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ १४०।

से मिलाया है। डा० जायसवाल ने कुसमाल समुद्र को अफ्रीका के उत्तरी पूर्वी किनारे के नुबिया नामक स्थान के आसपास के समुद्र से मिलाया है।[१] यह यहां उल्लेखनीय है कि "कुसमाल" या "कुश द्वीप" की इस पहचान का आधार लेकर ही उन्नीसवीं शताब्दी में नील नदी के उद्गम की खोज की गई थी।

नम्मदा (नर्मदा) नदी का उल्लेख हम दक्षिणापथ के प्राकृतिक भूगोल के प्रसंग में करेंगे। यहाँ यह कह देना आवश्यक होगा कि उसका कुछ भाग और विशेषतः जहाँ वह समुद्र में गिरती है, अपरान्त में माना जाता था। मज्झिम-निकाय की अट्ठकथा (पपंचसूदनी) में नम्मदा नदी के सूनापरान्त जनपद होकर बहने का उल्लेख है। अपरान्त के अन्तर्गत सुरट्ठ देश में सातोदिका या सातोडिका नामक नदी का उल्लेख जातक में है। इसे सुरट्ठ देश की सीमा पर (सीमन्तरे) बहते दिखाया गया है और कहा गया है कि मेन्दिस्सर या मेण्डिस्सर नामक ऋषि यहाँ गोदावरी पर स्थित कविट्ठ वन में होते हुए आये थे।[२] हिंगुल पब्बत को डा० लाहा ने अपरान्त के अन्दर रक्खा है,[३] परन्तु हमने पालि प्रमाणों के निश्चित आधार पर उसकी स्थिति को उत्तरापथ में दिखाया है। इस सम्बन्ध में सहेतुक विवेचन उत्तरापथ के विवरण-प्रसंग में किया जा चुका है।

सच्चबन्ध या सच्चबद्ध पब्बत का उल्लेख स्थविर पूर्ण की कथा के प्रसंग में आया है। स्थविर पूर्ण की प्रार्थना पर जब भगवान् बुद्ध श्रावस्ती से सूनापरान्त जनपद के मंकुलकाराम में गये थे तो वे मार्ग में सच्चबन्ध पर्वत पर ठहरे थे। यहाँ पर रहने वाले सच्चबद्ध नामक तपस्वी को उन्होंने उपदेश भी दिया था। सूनापरान्त से श्रावस्ती के लिये लौटते हुए भगवान् पहले नर्मदा नदी पर रुके और फिर सच्चबन्ध पर्वत पर आये जहाँ उन्होंने अपने चरण-चिन्ह छोड़े। यहाँ से भगवान् श्रावस्ती आये।[४] इससे विदित होता है कि सच्चबन्ध पर्वत नर्मदा नदी के

---

१. जर्नल ऑव बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, जिल्द छठी, पृष्ठ १९५।

२. जातक, जिल्द तीसरी; पृष्ठ ४६३; जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ १३३।

३. देखिये पीछे उत्तरापथ का विवेचन।

४. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द तीसरी, पृष्ठ १७; पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १०१७।

आसपास कहीं स्थित था। थाई-देश में सच्चबन्ध नामक पर्वत है, जिस पर बुद्ध के चरण-चिन्ह अंकित बताये जाते हैं। स्पष्टतः भारत के इस नाम के पर्वत की स्मृति में ही इस पर्वत का यह नाम रक्खा गया होगा।

जैसा हम पहले देख चुके हैं, विनय-पिटक के महावग्ग में सललवती (सिलई) नदी को मज्झिम देस की पूर्व-दक्षिणी और सेतकण्णिक नामक निगम को उसकी दक्षिणी सीमा बताया गया है। इससे यह प्रकट होता है कि पालि परम्परा के अनुसार उपर्युक्त स्थानों के दक्षिण का भाग "दक्खिणापथ" (दक्षिणापथ) कहलाता था। आचार्य बुद्धघोष ने "दक्षिणापथ" को गंगा के दक्षिण वाला जनपद बताया है। "गंगाय दक्खिणतो पाकटं जनपद"[1]। सुत्त-निपात की अट्ठकथा (परमत्थजोतिका)[2] में दक्षिण जनपद की ओर जाने वाले मार्ग को "दक्षिणापथ" कहा गया है। बावरि के शिष्यों ने गोदावरी के तट पर स्थित अपने गुरु के आश्रम से श्रावस्ती तक आने में जिस मार्ग का ग्रहण किया था, उसे हम "दक्षिणापथ" कह सकते हैं। इस मार्ग पर पड़ने वाले विभिन्न स्थानों का उल्लेख हम प्रथम परिच्छेद में सुत्त-निपात का भौगोलिक महत्व दिखाते समय कर चुके हैं और कुछ विवरण आगे पाँचवें अध्याय में व्यापारिक मार्गों का उल्लेख करते समय देंगे। पतिट्ठान इस मार्ग का अन्तिम दक्षिणी पड़ाव था। सुत्त-निपात की अट्ठकथा के द्वारा दक्षिणापथ को दक्षिण जनपद की ओर जाने वाले मार्ग को मानने के साक्ष्य पर ही डा० वेणीमाधव बड़ुआ का वह मत आधारित है जिसके अनुसार "उत्तरापथ" और "दक्षिणापथ" पहले क्रमशः उन मार्गों के नाम थे, जो श्रावस्ती से गन्धार और प्रतिष्ठान तक जाते थे। पहला चूँकि उत्तर भारत में होकर उत्तर-पश्चिम भारत तक जाता था, अतः साधारणतः "उत्तरापथ" कहलाता था और दूसरा चूँकि दक्षिण की ओर जाता था, अतः "दक्षिणापथ" कहलाता था। बाद में यही दोनों नाम क्रमशः उन प्रदेशों के लिये प्रयुक्त होने लगे जहाँ से होकर वे मार्ग गुजरते थे। इस प्रकार "दक्षिणापथ" पर पड़ने वाले अवन्ती जनपद को उसी प्रकार "अवन्ति-दक्षिणापथ" कहा जाता था, जिस प्रकार "उत्तरापथ" मार्ग पर पड़ने

---

१. सुमंगलविलासिनी, जिल्द पहली, २६५।

२. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५८०।

वाली मथुरा (मथुरा) नगरी को "उत्तर मथुरा"। इस प्रकार "उत्तरापथ" और "दक्षिणापथ" शब्द, जो पहले व्यापारिक मार्गों के लिये प्रयुक्त होते थे, बाद में उन प्रदेशों के लिये होने लगे, जहाँ से होकर वे मार्ग जाते थे[1]।

विनय-पिटक के महावग्ग मे दक्षिणापथ का उल्लेख मिलता है। दक्षिणापथ को अवन्ती के साथ मिला कर वहाँ इस प्रदेश के धरातल के सम्बन्ध में यह महत्व-पूर्ण और आज के लिये भी सच्ची सूचना दी गयी है कि अवन्ति-दक्षिणापथ की भूमि काली (कण्हुत्तरा), कड़ी और गोखुरुओं (गोकण्टकों) से भरी है।[2] यही पर यह भी सूचना दी गई है कि भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में अवन्ति-दक्षिणापथ में बौद्ध भिक्षुओं की संख्या कम थी।[3] बाद में वैशाली की संगीति के अवसर पर हम यश काकण्डपुत्त को अवन्ति-दक्षिणापथ के भिक्षुओं को अपने पक्ष में करते देखते है।[4] जातक[5] में भी "अवन्ति-दक्षिणापथ" का उल्लेख है। अट्ठकथाओ में दक्षिणापथ सम्बन्धी कुछ अधिक जानकारी भी हमे मिलती है। धम्मपदट्ठकथा[6] में उसे बैलों के लिए प्रसिद्ध बताया गया है और सुमंगल-विलासिनी[7] में दक्षिण जनपद के लोगों के द्वारा मनाये जाने वाले "धरण" नामक महोत्सव का भी वर्णन किया गया है। विनय-पिटक में कहा गया है कि अवन्ति-दक्षिणापथ के लोग अक्सर चमड़े के बिछौनों का प्रयोग करते हैं और

---

१. बडुआ : ओल्ड ब्राह्मी इन्स्क्रिप्शन्स, पृष्ठ २१८-२२०; मिलाइये रायस डेविड्स् : बुद्धिस्ट इंडिया, पृष्ठ २२ (प्रथम भारतीय संस्करण, सितम्बर १९५०)।

२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २१२।

३. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २११, २१३; मिलाइये उदान, पृष्ठ ७७ (हिन्दी अनुवाद)।

४. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ५५१।

५. जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४६३; जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ १३३

६. जिल्द तीसरी, पृष्ठ २४८

७. जिल्द पहली, पृष्ठ २६५

स्नान के प्रेमी होते हैं,[1] जो खारी जलवायु के इस प्रदेश के लिये आज भी ठीक है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि दक्षिणापथ का ज्ञान पालि परम्परा को आरम्भ से ही था और वहाँ के लोगों के जीवन के सम्बन्ध में भी अट्ठकथाओं में सूचना मिलती है। परन्तु उसकी निश्चित सीमाओं के सम्बन्ध में कोई उल्लेख नही मिलता। सुत्त-निपात के पारायण-वग्ग में केवल इतना कहा गया है कि कोसल-देशवासी बावरि ब्राह्मण दक्षिणापथ में गया और वहाँ "अस्सक के राज्य में, अलक की सीमा पर, गोदावरी नदी के किनारे" आश्रम बनाकर रहने लगा। इससे प्रकट होता है कि गोदावरी नदी के आसपास का प्रदेश उस समय दक्षिणापथ कहलाता था। गोदावरी अस्सक और अलक (या मूलक) राज्यों के बीच में होकर बहती थी। अलक गोदावरी नदी के उत्तर की ओर था और अस्सक उसके दक्षिण की ओर। सुत्त-निपात की अट्ठकथा मे कहा गया है कि ये दोनों राज्य अन्धक (आन्ध्र) थे। स्वाभाविक तौर पर हमे मानना पड़ेगा कि आन्ध्र प्रदेश भी दक्षिणपथ में सम्मिलित माना जाता था। पेतवत्थु की अट्ठकथा में "दमिल विसय" (तमिल प्रदेश) को दक्षिणापथ मे बताया गया है। अत. दक्षिणापथ की सीमा को गोदावरी तक सीमित मानना ठीक नही है, यद्यपि यह सुनिश्चित है कि भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में केवल गोदावरी के तट तक का ही प्रत्यक्ष ज्ञान पालि परम्परा को था। सामान्यत: हम विन्ध्याचल से दक्षिण के भाग को दक्षिणापथ कह सकते हैं। उसकी सीमा में बुद्धकालीन भारत के सोलह महाजनपदों में से अस्सक जनपद तो निश्चयत: सम्मिलित था ही, अवन्ती जनपद का दक्षिणी भाग (अवन्ति-दक्षिणापथ) भी सम्मिलित था। विनय-पिटक[2] और जातक[3] के उक्कल (उत्कल) जनपद को भी, जिसके दो भागों ओड्ड (ओड़्र) और ओक्कल (उत्कल) का अपदान[4] में भी वर्णन है, दक्षिणापथ में ही मानना ठीक होगा। उत्कल जनपद

---

१. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २१२।

२. पृष्ठ ७७ (हिन्दी अनुवाद)।

३. प्रथम खण्ड, पृष्ठ १०३ (हिन्दी अनुवाद)।

४. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३५८-३५९।

वंग और कलिंग के बीच में था। हम पहले भगवान् बुद्ध की चारिकाओं के भौगोलिक विवरण के प्रसंग में देख चुके हैं कि उत्कल जनपद के दो व्यापारियों तपस्सु और भल्लिक ने, जो व्यापारार्थ मध्य देश में आ रहे थे, बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद प्रथम बार भगवान् को आहार दिया था। महावस्तु[1] में इन दोनों व्यापारियों के निवास-स्थान को उत्तरापथ में बताया गया है, जो पालि परम्परा से मेल नहीं खाता और ठीक नहीं कहा जा सकता। कलिंग वह प्रदेश था जो सुह्म जनपद के नीचे, महानदी और गोदावरी नदियों के बीच, स्थित था। अन्धक और दमिल राष्ट्र भी, जिनका अपदान[2] में उल्लेख है, और इसी प्रकार जातक[3] का महिसक रट्ठ और समन्तपासादिका[4] का वनवासि प्रदेश और अशोक के अभिलेखों के चोल, पाण्ड्य (पण्डिय), सत्यपुत्र (सतियपुत्त) और केरलपुत्र (केरलपुत्त), ये सब जनपद दक्षिणापथ में ही थे। दक्षिणापथ की सीमाओं और विस्तार के इस संक्षिप्त निर्देश के बाद अब हम उसके प्राकृतिक भूगोल पर आते हैं।

दक्षिणापथ की जिन मुख्य नदियों का उल्लेख पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं में हुआ है, उनके नाम हैं, गोदावरी (गोधावरी), नर्मदा (नम्मदा), कावेरी, कृष्णवेणा (कण्हपेण्णा या कण्णवेणा) और तेलवाह। गोदावरी नदी, जैसा हम पहले कह चुके हैं, पालि परम्परा की प्रारम्भिक मान्यता के अनुसार दक्षिणापथ की उत्तरी सीमा थी। पालि साहित्य की गोदावरी (गोधावरी) ही आधुनिक गोदावरी नदी ही है, जो नासिक से २० मील दूर ब्रह्मगिरि से निकल कर बंगाल की खाड़ी में गिरती है। सरभंग जातक में इस नदी को कविट्ठवन के समीप कहा गया है। भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में अलक, जिसका संस्कृत प्रतिरूप महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने "आर्यक" दिया है[5] और जिसे डा०

---

१. जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३०३।

२. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३५८-३५९।

३. जिल्द पहली, पृष्ठ ३५६; जिल्द पाँचवी, पृष्ठ १६२, ३३७।

४. जिल्द पहली, पृष्ठ ६३, ६६।

५. बुद्धचर्या, पृष्ठ ३५०, पद-संकेत १।

विमलाचरण लाहा[1] और मललसेकर[2] ने बरमी संस्करण के आधार पर "मूलक" से मिलाया है, और अस्सक राज्य, जो दोनों अन्धक (आन्ध्र) राज्य थे, गोदावरी नदी के क्रमशः उत्तर और दक्षिण में बसे हुए थे। बावरि का आश्रम, जो विस्तार में पाँच योजन था, इन्हीं दो राज्यों के बीच, गोदावरी के तट पर, स्थित था। बावरि के आश्रम के समीप गोदावरी नदी दो धाराओं में बँट कर एक द्वीप बनाती थी, जिसका विस्तार तीन योजन था। इस द्वीप पर घना वन था। यही कविट्ठवन या कपिट्ठवन कहलाता था। सुत्त-निपात की अट्ठकथा[3] का कहना है कि पूर्व काल में सरभंग (शरभग) ऋषि का आश्रम यहीं था। इन्द्रिय-जातक के अनुसार सालिस्सर नामक ऋषि ने भी यहाँ निवास किया था।

पालि साहित्य की नम्मदा (नर्मदा) नदी आधुनिक नर्मदा नदी है, जो अमरकटक पर्वत से निकल कर पश्चिम में बहती हुई खम्भात की खाड़ी में गिरती है। कक्कट जातक में इस नदी में बडे आकार के केकड़ों के पाये जाने का उल्लेख है। चित्त-सम्भूत जातक में भी नम्मदा नदी का उल्लेख है। हम पहले (भगवान् बुद्ध की चारिकाओं के विवरण-प्रसंग में) कह चुके हैं कि सूनापरान्त जनपद के मंकुलकाराम से श्रावस्ती के लिए लौटते हुए भगवान् बुद्ध नें नर्मदा नदी को पार किया था। उन्होंने यहाँ नागराज की प्रार्थना पर नागों की पूजा के लिए नर्मदा के तट पर अपने चरण-चिह्न छोड़े थे[4]। यहाँ यह कह देना भी अप्रासंगिक न होगा कि नम्मदा नदी का नाम, 'पेरीप्लस ऑव दि

---

१. ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज्म, पृष्ठ २१; इंडिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्स्ट्स् ऑव बुद्धिज्म एंड जैनिज्म, पृष्ठ ७८, १०८; ट्राइब्स इन एन्शियन्ट इंडिया, पृष्ठ १८४।

२. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ८१५।

३. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५८१; मिलाइये जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ १२३, १३२-१३६; मिलाइये महावस्तु, जिल्द पहली, पृष्ठ ३६३ भी।

४. पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १०१८; सारत्थप्पकासिनी, जिल्द तीसरी, पृष्ठ १८।

इरीथ्रियन सी[1]" में "नम्मदुस" दिया गया है और यूआन् चुआङ ने इसे "ने-मु-ते" कह कर पुकारा है।[2]

कावेरी नदी का तो उल्लेख पूर्ववर्ती पालि साहित्य में नहीं है, परन्तु अंकित्ति जातक और धम्मपदट्ठकथा[3] में कावीरपट्टन नगर का उल्लेख है, जो कावेरी नदी के तट पर स्थित था।

कण्णपेण्णा या कण्णवेण्णा नदी को एक जातक-कथा में संखपाल नामक झील में से निकल कर महिसक राष्ट्र में बहते दिखाया गया है और इसके उद्गम के समीप चन्दक नामक पर्वत को स्थित बताया गया है।[4] इसी आधार पर डा० मललसेकर ने इसे मैसूर (महिसक राष्ट्र) में बहने वाली कोई नदी बताया है।[5] डा० जायसवाल ने इस नदी को वर्तमान वेन या वेनगंगासे मिलाया है, जो कंहन नामक नदी से मिलकर भडार जिले में वर्धा नदी से मिलती है।[6]

तेलवाह नदी का उल्लेख सेरिवाणिज जातक में है, जहाँ उसे सेरिव रट्ठ में बताया गया है। उसके तट पर अन्धपुर नामक नगर स्थित था। इस नदी को पार कर सेरिव रट्ठ के व्यापारी उपर्युक्त नगर को गये थे, ऐसा इस कथा में उल्लेख है।[7] डा० डी० आर० भण्डारकर ने तेलवाह नदी को मद्रास राज्य और मध्य-प्रदेश की सीमाओं पर बहने वाली तेल या तेलिनगिरि नामक दो नदियों में से, जो पास-पास बहती है, किसी एक से मिलाने का प्रस्ताव किया है।[8]

---

१. पृष्ठ ३० (शोफ द्वारा सम्पादित और अनुवादित)।

२. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इंडिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २४१।

३. जिल्द चौथी, पृष्ठ ५०।

४. जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ १६२-१६३।

५. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ४९८।

६. जर्नल ऑव बिहार एंड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, जिल्द चौथी, पृष्ठ ३७४-३७५; मिलाइये नन्दोलाल दे : ज्योग्रेफीकल डिक्शनरी, पृष्ठ १०४।

७. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ १११।

८. इंडियन एन्टिक्वेरी, १९१८, पृष्ठ ७१; "अशोक" पृष्ठ ३४।

परन्तु डा० हेमचन्द्र रायचौधरी का विचार है कि सम्भवतः तुंगभद्रा-कृष्णा ही तेलवाह नदी है।[1]

विन्ध्य पर्वत मज्झिम देस और दक्षिणापथ की सीमा पर स्थित था। महावंस[2] में महाराज अशोक का स्थल-मार्ग से पाटलिपुत्र से विन्ध्यारण्य (विञ्झारञ्ञ) को पार करने के बाद ताम्रलिप्ति पहुँचने का उल्लेख है। दीपवंस में भी इसी प्रसंग में विञ्झाटवी का (विन्ध्याटवी) का उल्लेख है। समन्तपासादिका[3] में विन्ध्यारण्य को अगामकं अरञ्ञं (अग्रामकं अरण्यं) कह कर पुकारा गया है, जिसका अर्थ यह है कि इस अरण्य में गाँव आदि बसे हुए नहीं थे। घनसेल नामक एक अन्य पर्वत का भी उल्लेख है, जिसे अवन्ति-दक्षिणापथ में स्थित बताया गया है।[4] अवन्ती राज्य में ही पपात पब्बत था जिसे कुररघर नामक नगर के पास बताया गया है। यहाँ स्थविर महाकच्चान ने निवास किया था।[5] महिसक मंडल में कण्णपेण्णा नदी के उद्गम के समीप स्थित चन्दक नामक पर्वत का उल्लेख हम कर चुके हैं। यहाँ, इन्द्रिय जातक के अनुसार, ऋषि काल देवल ने निवास किया था। इसे चन्दन पर्वत के रूप में मलयगिरि या मलबार घाट से मिलाया जा सकता है।[6] परन्तु इस लेखक का एक अनुमान दूसरा है। जहाँ से नर्मदा नदी निकलती है, वहाँ विन्ध्याचल और सतपुड़ा को जोड़ने वाला मेकल या मेखल नामक पहाड़ चन्द्राकार खड़ा है। सम्भव है पालि का चन्दक पर्वत यही हो। महिसक मंडल की संखपाल नामक झील का, जो कण्णपेण्णा नदी का उद्गम थी, हम पहले उल्लेख कर चुके हैं। इसी प्रकार महिसक मंडल की ही "मानुसिय" नामक एक अन्य झील का भी उल्लेख पाया जाता है, जो महिसक राष्ट्र की राजधानी सकुल नामक नगर के पास थी।[7] इस झील

---

१. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इंडिया, पृष्ठ ९२।

२. १९।६ (हिन्दी अनुवाद)।

३. जिल्द तीसरी, पृष्ठ ६५५।

४. जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४६३; जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ १३३।

५. देखिये आगे तीसरे परिच्छेद में अवन्ती राज्य का विवरण।

६. नन्दोलाल दे : ज्योग्रेफीकल डिक्शनरी, पृष्ठ ४६।

७. जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ३३७-३३८।

की आधुनिक पहचान अभी नही हो सकी है। कविट्ठ नामक वन.का उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। मक्करकट[1] नामक वन अवन्ती जनपद मे था। सयुत्त-निकाय के लोहिच्च-सुत्त से हमे मालूम होता है कि स्थविर महाकच्चायन इस वन मे पर्णशाला बना कर रहते थे। दण्डकारण्य (दण्डकारञ्ञ) और कलिंगारण्य (कालिंगारञ्ञ) वनो का उल्लेख, अन्य दो वनो, मेज्झारञ्ञ (मेध्यारण्य) और मातगारञ्ञ (मातगारण्य) के साथ मज्झिम-निकाय के उपालि-सुत्तन्त मे किया गया है और मिलिन्दपञ्हो[2] मे भी। इन दोनो जगह कहा गया है कि ये सब वन पहले समृद्ध जनपद थे, जो बाद मे ऋषियो के शाप के कारण उजाड हो गये थे। दण्डकारण्य के सम्बन्ध मे हमे विदित होता है कि यह वन गोदावरी नदी के तट पर विन्ध्याचल के नीचे स्थित था। राजा दण्डकी की दुष्टता के कारण कलिग-वन के उजाड हो जाने के बाद उसके स्थान, पर जो वन उगा, वही दण्डकारण्य कहलाया[3]। वाल्मीकि-रामायण के वर्णनानुसार पार्जिटर ने दण्डकारण्य का विस्तार बुन्देलखड से कृष्णा नदी के तट तक माना था।[4] परन्तु महाभारत के सभा-पर्व और वन-पर्व के अनुसार उसे केवल गोदावरी के उद्गम के समीप का वन माना जा सकता है। ललित-विस्तर[5] के दण्डक वन को दक्षिणापथ मे स्थित माना जा सकता है। अत पालि परम्परा के अनुसार दण्डकारण्य को हम आसानी से दक्षिणापथ मे स्थित वन मान सकते हे। डा० लाहा ने 'ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज्म'

---

१. डा० लाहा ने ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज्म, पृष्ठ ४५ तथा ८५ में इस वन का नाम मक्करट्ठ वन दिया है, जिसे वर्तनी की अशुद्धि ही मानना चाहिए। 'हिस्टॉरिकल ज्योग्रेफी ऑव एन्शियन्ट इण्डिया', पृष्ठ ३२० में उन्होंने इसे ठीक कर दिया है।

२. पृष्ठ १३२-१३३ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

३ जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४६३; मिलाइये पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५९७।

४. जर्नल ऑव रॉयल एशियाटिक सोसायटी, १८९४, पृष्ठ २४१-२४२।

५. पृष्ठ ३१६।

के पृष्ठ ४४ में दण्डकारण्य को मज्झिम देस के वन के रूप में दिखाया है और फिर इसी वर्णन को उठाकर दक्षिणापथ के वन के रूप में पृष्ठ ६७ पर रख दिया है। यह दिखलाता है कि डा० लाहा यह निश्चित नहीं कर सके हैं कि दण्डकारण्य को मज्झिम देस में होना चाहिये या दक्खिणापथ में। गोदावरी के आसपास होने के कारण और राजा दण्डकी के राज्य में स्थित होने के कारण उसके दक्षिणापथ में होने में कोई सन्देह नहीं है।

कलिंगारण्य कलिंग देश में, अर्थात् महानदी और गोदावरी के बीच में, स्थित वन था। सातवीं शताब्दी ईसवी में यूआन् चुआङ ने दण्डकारण्य और कलिंगारण्य के साथ मातंगारण्य को भी उजाड़ अवस्था में देखा था।[1] इससे यह मालूम पड़ता है कि दण्डकारण्य और कलिंगारण्य के समान मातंगारण्य भी, जिसका उल्लेख पालि ग्रन्थों में उपर्युक्त दो वनों के साथ ही हुआ है, दक्षिणापथ में ही कहीं था।

---

१. देखिये आगे तृतीय परिच्छेद में कलिंग जनपद का विवरण।

तीसरा परिच्छेद

बुद्धकालीन भारत का राजनैतिक भूगोल

उन अनेक देनों में, जो बुद्ध और बौद्ध धर्म ने हमारे देश के लिये दी हैं, एक अत्यन्त महत्वपूर्ण यह है कि उनके आविर्भाव के साथ ही हमारे देश में वास्तविक रूप से "ऐतिहासिक युग" का आरम्भ होता है। हमारे देश का लेखबद्ध इतिहास वस्तुतः भगवान् बुद्ध के उदय से ही शुरू होता है। यहीं हम सर्वप्रथम उस स्पष्ट आधार को पाते हैं जिस पर तत्कालीन भारत के राजनैतिक भूगोल का पुर्ननिर्माण किया जा सकता है। यद्यपि भगवान् बुद्ध के पूर्व भी सारे देश को एक राष्ट्रीय और सांस्कृतिक इकाई बनाने के प्रयत्न हुए थे, परन्तु इस दिशा में जो प्रेरणा भगवान् बुद्ध के प्रभाव से मिली, उसने इसके शीघ्र कार्यान्वित होने में सहायता दी।

पालि तिपिटक में सारे जम्बुद्वीप को एक चक्कवत्ती (चक्रवर्ती) राजा का शासन-प्रदेश माना गया है। स्वयं भगवान् बुद्ध यह कहते दिखाये गये हैं कि वे अपने एक पूर्व जन्म में सम्पूर्ण जम्बुद्वीप पर शासन करने वाले चक्रवर्ती राजा थे।[1] धर्म से शासन करने वाले चक्रवर्ती राजा का आदर्श भगवान् बुद्ध और उनके शिष्यों के सामने सदा रहता था। इतिवुत्तक के झायी-सुत्त में चक्रवर्ती राजा का वर्णन करते हुए कहा गया है, "चक्रवर्ती, धार्मिक, धर्मराजा, चारों दिशाओं का विजेता, जनपदों में सुव्यवस्था स्थापित करने वाला, सप्त रत्नों से युक्त।"[2] दीघ-निकाय

---

१. चक्कवत्ती अहुं राजा जम्बुसण्डस्स इस्सरो। अंगुत्तर-निकाय, जिल्द चौथी, पृष्ठ ९०; मिलाइये सुत्त-निपात (सेल-सुत्त), गाथा ५५२ भी।

२. "चक्कवत्ती धम्मिको धम्मराजा चातुरन्तो विजितावी
जनपदत्थावरियप्पत्तो सत्तरतनसमन्नागतो"।

के लक्खण-सुत्त में इसी आदर्श की अधिक स्पष्टतापूर्वक अभिव्यक्ति करते हुए कहा गया है, "चक्रवर्ती, धार्मिक, धर्मराजा, चारों दिशाओं का विजेता. . . वह इस सागर-पर्यन्त पृथ्वी को बिना दंड के, बिना शस्त्र के, धर्म के द्वारा जीत कर उस पर शासन करता है।"[1] भगवान् बुद्ध स्वयं अपनी तुलना धर्म के क्षेत्र में एक सार्वभौम चक्रवर्ती राजा से करते थे।[2] चक्रवर्ती राजा के समान ही उन्होंने अपने धर्म-चक्र का प्रवर्तन किया था। महापरिनिब्बाण-सुत्त के आधार पर हम जानते हैं कि उनका दाह-संस्कार एक चक्रवर्ती राजा के समान ही हुआ था। "मिलिन्दपञ्हो" में धम्म-नगर का एक सुन्दर रूपक खींचा गया है, जिसमें दिखाया गया है कि बुद्ध रूपी चक्रवर्ती के सेनापति कौन हैं, कोषाध्यक्ष कौन है, उनको राजधानी क्या है, उनके सप्त रत्न क्या हैं, आदि। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि भगवान् बुद्ध, जिन्होंने हमें प्रथम बार एक विश्व-धर्म या मानव-धर्म दिया, राजनीति के क्षेत्र में भी सम्पूर्ण जम्बुद्वीप पर एक ऐसी एकछत्र राज्य-सत्ता (एकरज्जाभिसेकं) के आदर्श को प्रश्रय देने वाले हुए जो दंड या शस्त्र पर आधारित न होकर धम्म (सत्य) पर आधारित हो, जिसमें सभी वर्गों के लोगों की जीविका की सम्यक् व्यवस्था हो[3] और जिसकी कसौटी जनता का सच्चा

---

१. "चक्कवत्ती धम्मिको धम्मराजा चातुरन्तो विजितावी... सो इमं पठविं सागरपरियन्तं अदण्डेन असत्थेन धम्मेनअभिविजिय अज्झावसति।"
इसी प्रकार के विवरण के लिये मिलाइये महासुदस्सन-सुत्त (दीघ० २।४); महापदान-सुत्त (दीघ० २।१); चक्कवत्ति-सीहनाद-सुत्त (दीघ० ३।३); बाल-पंडित सुत्त (मज्झिम० ३।३।९)।

२. राजाहमस्मि सेलाति भगवा धम्मराजा अनुत्तरो। धम्मेन चक्कं वत्तेमि चक्कं अप्पतिवत्तियं। सुत्त-निपात (सेल-सुत्त), गाथा ५५४।

३. "राजा के जनपद में जो कृषि-गोरक्षा करना चाहते थे, उन्हें राजा ने बीज और भात (भोजन) दिया। जो राजा के जनपद में वाणिज्य करने के उत्साही थे, उन्हें राजा ने पूंजी सम्पादित की। जो राजा के जनपद में राज-सेवा में उत्साही हुए, उनका भत्ता-वेतन (भत्त-वेतनं) ठीक कर दिया। इन मनुष्यों ने अपने-अपने काम में लग राजा के जनपद को नहीं सताया। राजा को महाधन-राशि प्राप्त हुई। जनपद अकंटक, अपीड़ित, क्षेमयुक्त हो गया। मनुष्य हर्षित, मोदित, गोद में पुत्रों को नचाते, खुले घर विहरने लगे।" कूटदन्त-सुत्त (दीघ० ।१।५)।

सुख हो।[1] सम्राट् धम्मासोक ने चक्रवर्ती राजा के बौद्ध आदर्श को प्राप्त करने का प्रयत्न किया और सर्वप्रथम उसी के शासन-काल में, बुद्ध के जीवन-काल के प्रायः दो शताब्दी बाद, सम्पूर्ण जम्बुद्वीप का वास्तविक "एकरज्जाभिसेकं" या एकछत्र राज्य निष्पन्न हो सका।[2] अशोक ही सम्पूर्ण जम्बुद्वीप का सच्चे अर्थों प्रथम "एकराट्" शासक हुआ।

यद्यपि बौद्ध धर्म के प्रभाव से सम्पूर्ण जम्बुद्वीप में एक अहिंसाश्रित जन-हितैषी राज्य की स्थापना में योग मिला, परन्तु स्वयं भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में कोई एक मूर्द्धाभिषिक्त राजा सम्पूर्ण जम्बुद्वीप का नहीं था। पालि तिपिटक से हमें पता लगता है कि उस समय सम्पूर्ण देश चार शक्तिशाली राज्यों, दस छोटे स्वशासित गण-तन्त्रों और बुद्ध के कुछ समय पूर्व से चले आये हुए सोलह महाजनपदों के रूप में विभक्त था। इन गणतन्त्रों और जनपदों में से कई उपर्युक्त चार राज्यों में अन्तर्भुक्त हो चुके थे। एक भारी प्रवृत्ति इस समय विभिन्न राजनैतिक शक्तियों की एक राजनैतिक सत्ता के रूप में विलीनीकरण की ओर थी। छोटे-छोटे गणसत्तात्मक राज्य मिटकर पास के एकसत्तात्मक राज्यों में अन्तर्भुक्त हो रहे थे। जैसा हम आगे देखेंगे, अंग और काशी जनपद भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में क्रमशः मगध और कोसल में सम्मिलित हो गये थे। उत्तर पंचाल और कुरु का काफी भाग कोसल राज्य में जा चुका था और इसी प्रकार दक्षिण पंचाल और चेदि जनपद का कुछ भाग वंस राज्य में। सूरसेन जनपद अवन्ती के प्रभाव में था। भग्ग जैसा स्वतन्त्र गण-तन्त्र वंस राज्य के प्रभाव में चला गया था और कपिलवस्तु के शाक्य और केसपुत्त के कालाम कोसल राज्य के अधीन थे। भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के समय वज्जि-संघ के मगध राज्य में प्रवेश की भूमिका बन रही

१. तभी तो मगधराज श्रेणिक बिम्बिसार के सम्बन्ध में कहा गया है, "वह धार्मिक, धर्मराजा, ब्राह्मण और गृहस्थों तथा नगर और देश का हित करने वाला था...जो लोगों को सुखी कर स्वयं मृत्यु को प्राप्त हुआ।" जनवसभ-सुत्त (दीघ० २।५)।

२. देखिये समन्तपासादिका, जिल्द पहली, पृष्ठ ४१; मिलाइये महावंस ५।२०-२२ (हिन्दी अनुवाद)।

थी और विडूडभ की मृत्यु के उपरान्त स्वयं कोसल राज्य मगध में जाने वाला था। मल्लों के दो स्वतन्त्र गण-राज्यों की भी यही हालत थी। बाद के इतिहास में और ऐसी घटनाएँ घटीं जिनसे उपर्युक्त प्रवृत्ति को बल मिला। बुद्धकालीन राज्यों, गणतन्त्रों और जनपदों का विवेचन करते हुए हम अपने अध्ययन में इस विलीनीकरण की प्रवृत्ति का अधिक स्पष्टीकरण करेंगे, क्योंकि उस समय के राजनैतिक भूगोल को समझने के लिये इसका जानना हमारे लिये अत्यन्त आवश्यक है। अब हम पहले बुद्धकालीन राज्यों के विवरण पर आते हैं।

भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में जो चार राज्य भारतवर्ष में विद्यमान थे, उनके नाम थे मगध, कोसल, वंस और अवन्ती। बुद्ध-पूर्व काल में मगध एक जनपद मात्र था। राज्य सत्ता के लिये पड़ोसी जनपद अंग के साथ उसका संघर्ष एक ऐतिहासिक परम्परा के रूप में बुद्ध-पूर्व काल से चला आ रहा था, जिसका विवरण हम आगे अंग जनपद के प्रसंग में देंगे। भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में अंग निश्चित रूप से मगध का एक अंग हो गया। बुद्ध के जीवन-काल में मगधराज श्रेणिक बिम्बिसार अंग और मगध दोनों का ही स्वामी माना जाता था, इसके अनेक प्रमाण हमें पालि तिपिटक में मिलते हैं, जिनका उल्लेख हम अंग जनपद का विवरण देते समय ही करेंगे। बिम्बिसार के राज्य का विस्तार पालि ग्रन्थों में ३०० योजन बताया गया है[१] और कहा गया है कि उसके राज्य में अस्सी हजार गाँव थे। "तेन खो पन समयेन राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो असीतिया गामसहस्सेसु इस्सराधिपच्चं राजं कारेति।"[२] अस्सी हजार गाँवों के अस्सी हजार ही "गामिक" अर्थात् मुखिया थे, ऐसा विनय-पिटक में कहा गया है।[३] इसे अंग और मगध जनपदों को सम्मिलित कर ही समझना चाहिए।[४]

---

१. देखिये विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १४-१५ टिप्पणी; महावग्गो (विनय-पिटकं) पठमो भागो, पृष्ठ ३०४, सुमंगलविलासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ १४८; समन्तपासादिका, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ६१४।

२. महावग्गो (विनय पिटकं), पृष्ठ ३०४ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)

३. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १९९, २००, २०१; देखिये वहीं पृष्ठ १४, टिप्पणी २।

४. रायस डेविड्स् : बुद्धिस्ट इण्डिया, पृष्ठ १७ (प्रथम भारतीय संस्करण, १९५०)।

अंग जनपद का मगध में मिलना मगध राज्य की निरन्तर बढ़ती हुई शक्ति का द्योतक था। इसके बाद उसकी शक्ति निरन्तर बढ़ती गई, यहाँ तक कि अशोक के समय में मगध साम्राज्य प्राय. सम्पूर्ण भारतीय राज्य का प्रतीक बन गया। परन्तु हमें यहाँ मगध राज्य के केवल उतने युग के राजनैतिक भूगोल से सम्बन्ध है जितना वह बुद्ध के जीवन-काल में था। इस दृष्टि से हम केवल बिम्बिसार और अजातशत्रु के शासन-काल तक अपने को सीमित रक्खेंगे। भगवान् बुद्ध ने अपने जीवन-काल में मगध के केवल इन दो शासकों को देखा। बिम्बिसार भगवान् से आयु में पाँच वर्ष छोटा था। जब भगवान् उन्तीस वर्ष की अवस्था में गृह छोड़ कर राजगृह गये थे तो उस समय बिम्बिसार की आयु चौबीस वर्ष की थी और उसे राजा बने नौ वर्ष हो गये थे, क्योंकि उसके पिता भाति याभातिय ने उसका राज्याभिषेक पन्द्रह वर्ष की अवस्था में किया था। भगवान् बुद्ध जब ज्ञान-प्राप्ति के बाद राजगृह पधारे तो बिम्बिसार ने उनका अपूर्व स्वागत किया। इस समय भगवान् बुद्ध की आयु पैंतीस वर्ष की थी और बिम्बिसार की तीस वर्ष की तथा उसे राज्य करते पन्द्रह वर्ष हो गये थे। इसके बाद उसने तथागत के जीवन-काल में सैंतीस वर्ष और राज्य किया। इस प्रकार बिम्बिसार ने कुल ५२ वर्ष राज्य किया और उसने ६७ वर्ष की आयु पाई। जब भगवान् बुद्ध का परिनिर्वाण हुआ तो बिम्बिसार को मरे आठवाँ वर्ष चल रहा था। इस प्रकार भगवान् बुद्ध ने अपने जीवन-काल में आठ वर्ष तक मगधराज अजातशत्रु के भी शासन को देखा। बुद्ध-परिनिर्वाण के बाद अजातशत्रु ने चौबीस वर्ष और राज्य किया, अर्थात् कुल मिलाकर बत्तीस वर्ष।[1]

मगधराज बिम्बिसार "सेणिय" (श्रेणिक) कहलाता था। "सुमंगलविलासिनी" के अनुसार इसका कारण यह था कि उसके पास बड़ी सेना थी। "महतिया सेनाय समन्नागतत्ता"। बिम्बिसार आरम्भ से ही बुद्ध-धर्म में अनुरक्त था। शाक्यकुमार जब अपने महाभिनिष्क्रमण के बाद राजगृह पहुँचे तो बिम्बिसार ने उनके दर्शन पाण्डव पर्वत पर किये थे और उनसे प्रार्थना की थी कि वे जब

---

१. यह कालानुक्रम महावंस २।२६-३२ (हिन्दी अनुवाद) के अनुसार है। मिलाइये दीपवंस ३।५९; समन्तपासादिका, जिल्द पहली, पृष्ठ ७२।

ज्ञान प्राप्त कर लें तो राजगृह अवश्य पधारने की कृपा करें। भगवान् ने बुद्धत्व-प्राप्ति के कुछ मास बाद ही बिम्बिसार की प्रार्थना को स्मरण किया और परिणामतः वे पौषमास की पूर्णिमा को राजगृह पहुँचे। बिम्बिसार ने एक लाख बीस हजार नागरिकों को लेकर भगवान् का लट्ठिवन उद्यान में स्वागत किया और दूसरे दिन वेणुवन उद्यान बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को अर्पित किया। इसी समय बिम्बिसार ने भगवान् से कहा कि उसके जीवन की पाँच अभिलाषाएँ थीं, (१) मुझे राज्य का अभिषेक मिलता, (२) भगवान् बुद्ध मेरे राज्य में आते, (३) मैं उन भगवान् की सेवा करता, (४) वे भगवान् मुझे धर्मोपदेश करते, (५) मैं उन भगवान् को जानता। बिम्बिसार ने भगवान् से कहा कि उसकी ये इच्छाएं अब पूरी हो चुकी हैं।[1] राजगृह में दो मास रहने के पश्चात् भगवान् जब लिच्छवियों की प्रार्थना पर, जो उन्होंने महालि के द्वारा भेजी थी, वैशाली जाने के लिये तैयार हुए तो बिम्बिसार ने गंगा नदी के तट तक की पाँच योजन भूमि को पुष्पों से आकीर्ण किया, जहाँ-तहाँ तोरण और बन्दनवार लगवाये, झडियाँ लगवाईं, धर्मशालाएँ बनवाईं और प्रत्येक योजन पर एक-एक दिन भगवान् को ठहरा कर पाँच दिन में गंगा के तट पर पहुँचाया, जिसके दूसरे तट से लिच्छवि लोग उससे भी अधिक सम्मान के साथ भगवान् को अपने प्रदेश में ले गये। यहाँ इस प्रसंग में यह भी कह देना आवश्यक होगा कि गंगा नदी मगध राज्य और वैशाली के लिच्छवियों के राज्य की सीमा थी। राजगृह की भगवान् की इस यात्रा के समय ही बिम्बिसार ने बुद्ध-धर्म में दीक्षा ग्रहण की। दीघ-निकाय के कूटदन्त-सुत्त में हम ब्राह्मण कूट-दन्त को कहते सुनते हैं, "मगधराज श्रेणिक बिम्बिसार पुत्र-सहित, भार्या-सहित, परिषद्-सहित, अमात्य-सहित, प्राणों से श्रमण गौतम का शरणागत हुआ है।" "समणं खलु भो गोतमं राजा मागधो सेणियो बिम्बिसारो सपुत्तो सभरियो सपरिसो सामच्चो पाणेहि सरणं गतो।" मगधराज बिम्बिसार ने एक बार अपने राज्य के अस्सी हजार 'गामिकों' (ग्रामिकों—मुखियाओं) की सभा बुलवा कर उनसे कहा था, "मैंने तुम्हें इस जन्म के हित की बात कही। अब तुम उन भगवान् बुद्ध की

---

१. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ९५-९८।

सेवा में जाओ। वे तुम्हें जन्मान्तर के हित की बात के लिये उपदेश करेंगे"[१]. सुमंगलविलासिनी[२] में कहा गया है कि "बुद्ध, धम्म, संघ" शब्द उच्चारण करते हुए ही बिम्बिसार ने अपने प्राण छोड़े। दीघ-निकाय के जनवसभ-सुत्त में भी कहा गया है कि "मरते दम तक बिम्बिसार ने भगवान् का यश कीर्तन करते ही मृत्यु को प्राप्त किया"। बिम्बिसार के राज्य में प्रजा सुखी और समृद्ध थी और उसे प्रेम करती थी, यह इस बात से प्रकट होता है कि उसकी मृत्यु के बाद लोग उसे, जनवसभ सुत्त के अनुसार, इन शब्दों में स्मरण करते थे, "मगधराज श्रेणिक बिम्बिसार धार्मिक, धर्मराजा, ब्राह्मण और गृहस्थों का तथा नगर और देश का हित करने वाला था. . .लोगों को सुखी कर स्वयं मृत्यु को प्राप्त हुआ. . .उस धार्मिक, धर्मराजा के राज्य में हम लोग सुख पूर्वक विहार करते थे।" बुद्ध-धर्म में भक्ति के साथ-साथ बिम्बिसार ब्राह्मणो का भी आदर करता था। उसने खाणुमत नामक गाँव कूटदन्त ब्राह्मण को[३] और चम्पा नगरी सोणदण्ड ब्राह्मण को[४] दान के रूप में दे रक्खी थी। अजातशत्रु ने अपने पिता बिम्बिसार को मार कर राज्य प्राप्त किया था, यह बात पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं में अनेक बार कही गई है। कहा गया है कि पितृ-घात के कारण अजातशत्रु की मानसिक शान्ति बिलकुल नष्ट हो गई थी और वह अत्यन्त व्याकुल रहने लगा था। एक दिन कार्तिक पूर्णिमा की रात को, जीवक को साथ लेकर, वह भगवान् से मिलने जीवक के राजगृह-स्थित आम्रवन में गया, जहाँ उसने भगवान् के सामने अपने पितृ-घात सम्बन्धी पाप को स्वीकार किया। "पितरं धम्मिकं धम्मराजानं इस्सरियस्स कारणा जीविता वोरोपेसिं।"[५] पहले अजातशत्रु देवदत्त के प्रभाव में भी आया था और उसके लिये उसने गयासीस पर्वत पर एक विहार भी बनवाया था, परन्तु बाद में देवदत्त की मृत्यु के बाद उसे सुबुद्धि आई और वह बुद्ध-भक्त हो गया। भगवान् के महापरिनिर्वाण के बाद हम अजातशत्रु को भी भगवान् के धातुओं के एक अंश

---

१. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १९९।
२. जिल्द पहली, पृष्ठ १३४-१३७।
३. कूटदन्त-सुत्त (दीघ० १।५)।
४. सोणदण्ड-सुत्त (दीघ० १।४)।
५. सामञ्ञफल-सुत्त (दीघ० १।२)।

को प्राप्त करने के लिए प्रार्थना करते देखते हैं, "भगवान् क्षत्रिय थे। मैं भी क्षत्रिय हूँ। मुझे भी भगवान् की धातुओं में से एक अंश मिलना चाहिए।" 'भगवापि खत्तियो अहम्पि खत्तियो। अहम्पि अरहामि भगवतो सरीरानं भागं।'"[1] अजातशत्रु ने यह अंश प्राप्त किया और उस पर उसने एक धातु-चैत्य बनवाया। राजगृह का परिचय देते समय हम इस स्तूप की स्थिति का उल्लेख करेंगे। बुद्ध-परिनिर्वाण के बाद राजगृह के १८ महाविहारों की उसने मरम्मत करवाई।[2] प्रथम संगीत के अवसर पर सप्तपर्णी गुफा के द्वार पर उसने एक विशाल मण्डप भी बनवाया।[3] महावंस[4] के अनुसार अजातशत्रु को अपने पिता का भाग्य ही सहन करना पड़ा। यद्यपि वह बहुत चाहता था कि उसका पुत्र उदायि भद्द (उदय भद्र) भिक्षु-संघ के समान शान्ति से युक्त हो,[5] परन्तु फिर भी उदय भद्र ने अपने पिता को मार कर ही राज्य प्राप्त किया। मगध के बुद्धकालीन राजनैतिक भूगोल को समझने के लिये इतनी ऐतिहासिक और मानवीय भूमिका पर्याप्त होगी।

ऊपर हम मगध राज्य में अंग के सम्मिलित होने की बात कह चुके हैं। बिम्बिसार ने वैवाहिक सम्बन्धों के द्वारा भी अपने राज्य के विस्तार और प्रभाव में वृद्धि की। कोसल देश के राजा महाकोसल की पुत्री कोसलादेवी से उनसे विवाह किया। राजा महाकोसल ने अपनी पुत्री के स्नान और सुगंध के व्यय के लिये काशी ग्राम बिम्बिसार को दिया, जिसकी आय एक लाख थी। इस प्रकार काशी

---

१. महापरिनिब्बाण-सुत्त (दीघ० २।३)।

२. पेतवत्थु की अट्ठकथा में अजातशत्रु के द्वारा बुद्ध-धातुओं पर चैत्य-निर्माण का वर्णन है। इसी प्रकार सुमंगलविलासिनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६११ तथा समन्तपासादिका, जिल्द पहली, पृष्ठ ९-१० में भी। मिलाइये मंजुश्रीमूलकल्प, पृष्ठ ६०० भी।

३. महावंस ३।१८-१९ (हिन्दी अनुवाद)।

४. ४।१ (हिन्दी अनुवाद); देखिये दीपवंस ५।९७ भी; मिलाइये समन्तपासादिका, जिल्द पहली, पृष्ठ ७३।

५. देखिये सामञ्ञफलसुत्त (दीघ० १।२)।

प्रदेश का काफी भाग मगध राज्य में आ गया। बाद में बिम्बिसार की मृत्यु के बाद जब उसकी पत्नी कोसला देवी की भी मृत्यु हो गई तो प्रसेनजित् ने अपने भानजे अजातशत्रु से काशी ग्राम को छीनना चाहा जिसमें काफी संघर्षों के बाद विजय प्रसेनजित् को मिली और अजातशत्रु को बन्दी बना लिया गया। परन्तु उदार नीति का अनुसरण कर प्रसेनजित् ने अपनी इकलौती पुत्री वजिरा का विवाह अजातशत्रु के साथ कर दिया और काशी ग्राम फिर उसे भेंट स्वरूप दे दिया। मगधराज बिम्बिसार ने अन्य वैवाहिक सम्बन्ध भी किये जिनका राजनैतिक महत्व था। उसकी एक पत्नी वैशाली की लिच्छवि राजकुमारी थी और इसी प्रकार मद्र देश के राजा की पुत्री खेमा बिम्बिसार की प्रधान महिषी बताई जाती है।

हम पहले कह चुके हैं कि मगधराज बिम्बसार के राज्य का विस्तार ३०० योजन था। उसमें २०० योजन की वृद्धि अजातशत्रु ने की। इस प्रकार मगध की सीमा काफी विस्तृत हो गई। मगध राज्य पूर्व में अंग (जिसमें अंगुत्तराप अर्थात् गंगा और कोसी के बीच का अंग देश का भाग भी सम्मिलित था) की अंतिम सीमा कोसी नदी तक फैला था। मगध के दक्षिण-पूर्व में सुह्मों का जनपद था और दक्षिण में कलिंगारण्य। इस प्रकार दक्षिण-पूर्व और दक्षिण में मगध की कोई प्रतिद्वन्द्वी शक्ति नही थी। मगध राज्य का सबसे अधिक महत्वपूर्ण और शक्तिशाली पड़ोसी वज्जि गणतंत्र था, जो उसके उत्तर में मही (गण्डक) नदी से लेकर बाहुमती (बाग्मती) नदी तक फैला था। जैसा हम पहले कह चुके हैं, गंगा नदी मगध और वज्जि गण राज्य के बीच की सीमा थी, जिसपर दोनों का समान अधिकार माना जाता था। मगध गंगा के दक्षिण में था और वज्जि गणतंत्र उसके उत्तर में। महापरिनिब्बाण-सुत्त की अट्ठकथा से पता लगता है कि पाटलिपुत्र के समीप बहुमूल्य माल उतरता था जिसकी चुगी पर इन दोनों राज्यों का अक्सर झगड़ा चलता रहा था। मगधराज अजातशत्रु इसीलिये वज्जियों पर अभियान करना चाहता था। भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण से कुछ पूर्व हम उसे इस सम्बन्ध में काफी चिन्तित देखते हैं और महापरिनिब्बाण-सुत्त से हमें सूचना मिलती है कि इसी उद्देश्य के लिये उसके दो ब्राह्मण मंत्री सुनीध और वस्सकार पाटलिपुत्र नगर को बसा रहे थे। भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में तो नहीं, परन्तु उसके बाद

बज्जि गणतंत्र को कुछ सीमित स्वतंत्रता रखते हुए मगध राज्य में सम्मिलित हो जाना पडा। मगध राज्य की पश्चिमी सीमा सभवतः सोण नदी थी।

अब हम मगध राज्य के मुख्य नगरो, निगमो और ग्रामों के विवरण पर आते हैं। पहले उसकी राजधानी गिरिव्रज (गिरिब्बज) या प्राचीन राजगृह (राजगह) को लेते है। गिरिव्रज राजगृह का प्राचीन नाम था। इसे 'मगधो का उत्तम नगर' (मगधानं पुरुत्तम)[1] कहकर पुकारा गया है। एक गिरिव्रज नामक नगर केकय में भी था, विपाशा नदी के पश्चिम मे। इसलिये मगध के गिरिव्रज को उससे पृथक् करने के लिये अक्सर "मगधो के गिरिव्रज" जैसे शब्द का प्रयोग किया गया है।[2] कही-कही राजगह और गिरिब्बज दोनो शब्दो का प्रयोग साथ-साथ किया गया है, जैसे "अगमा राजगह बुद्धो मगधान गिरिब्बजं"।[3] परन्तु ऐसा प्राय गाथाओ मे ही हुआ है और अधिकतर राजगृह शब्द का अकेले ही प्रयोग किया गया है, जैसे "एकं समय भगवा राजगहे विहरति", आदि। गिरिव्रज प्राचीन नगर था, जो पाँच पहाडियो के बीच मे एक गढी के रूप मे स्थित था। आचार्य बुद्धघोष ने गिरिव्रज (गिरिब्बज) नाम की व्याख्या करते हुए कहा है कि यह नगर चारो ओर पर्वतो से घिरे व्रज (खिरक) के समान लगता था, इसलिये इसका यह नाम पडा।[4] जिन पर्वतो से गिरिव्रज घिरा था, वे पाँच थे और उनके नाम सुत्तनिपात की अट्ठकथा,[5] मे इस प्रकार दिये गये है, पण्डव, गिज्झकूट, वेभार, इसिगिलि और वेपुल्ल पब्बत। महाकवि अश्वघोष ने भी राजगृह को 'पाँच पर्वतो के बीच मे स्थित नगर' कहकर पुकारा है।[6] पालि विवरणो के आधार पर यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता कि कब और किसने इन पञ्च पर्वतो से वेष्टित प्राचीन गिरिव्रज नगर की स्थापना की। दीघ-निकाय के महागोविन्द-सुत्त मे महागोविन्द द्वारा सात नगरो के बसाये जाने की

---

१. थेरगाथा, गाथा ६२२।
२. "मगधानं गिरिब्बजे"। वेपुल्लपब्बत-सुत्त (इतिवुत्तक)।
३. पब्बज्जा-सुत्त (सुत्त-निपात)।
४. पपंचसूदनी, जिल्द पहली, पृष्ठ १५१।
५. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३८२।
६. बुद्ध-चरित, २१।२; मिलाइय वहीं १०।२ भी।

बात कही गई है, परन्तु गिरिव्रज का उल्लेख नहीं है। इसलिए विमानवत्थु-अट्ठकथा[1] के इस कथन को हम अधिक महत्व नही दे सकते कि महागोविन्द ने इस नगर की स्थापना की। हाँ, इस सम्बन्ध में यहाँ यह कह देना अप्रासंगिक न होगा कि वाल्मीकि-रामायण (आदि काण्ड, सर्ग ३२, श्लोक ७–८) के अनुसार ब्रह्मा के चतुर्थ पुत्र वसु ने गिरिव्रज को बसाया था। इसीलिए इसे वहाँ वसुमती नगरी भी कह कर पुकारा गया है। महाभारत (२।२४।४४) के वर्णनानुसार बृहद्रथ के पुत्र जरासन्ध के नाम पर गिरिव्रज का एक नाम बार्हद्रथपुर भी था। यह कुछ आश्चर्यजनक मालूम न पडेगा कि महाभारत (२।२०।३०) में गिरिव्रज या प्राचीन राजगृह को 'मागधं पुरम्' भी कह कर पुकारा गया है, जब कि ठीक यही शब्द 'मागधं पुरं' सुत्त निपात के पारायण वग्ग की वत्थुगाथा की अड़तीसवीं गाथा में राजगृह के लिये प्रयुक्त किया गया है। इससे यह जान पड़ता है कि गिरिव्रज या प्राचीन राजगृह के सम्बन्ध में जो सूचना महाभारत में दी गई है, वह उसके पूर्व इतिहास के सम्बन्ध में कदाचित् प्रामाणिक हो सकती है। पाँचवीं शताब्दी ईसवी में भारत आने वाले चीनी यात्री फा-ह्यान ने 'प्राचीन नगर' और 'नवीन नगर' नामों से दो नगरों का उल्लेख किया है, जिनमें प्रथम से उसका तात्पर्य सम्भवत. गिरिव्रज से था और द्वितीय से राजगृह से, जिसे उसके मतानुसार अजातशत्रु ने बसाया।[2] सातवी शताब्दी ईसवी के प्रसिद्ध चीनी यात्री यूआन् चुआङ ने राजगृह का प्राचीन नाम "कुशाग्रपुर' बताया है और उसके नाम पड़ने का यह कारण बताया है कि यहाँ उत्तम प्रकार की कुश घास बहुलता से उगती थी।[3] पार्जिटर ने पौराणिक विवरणों के आधार पर दिखाया है कि मगध के प्राचीन राजा कुशाग्र के नाम पर इस नगर का यह नाम पडा था।[4] यह उल्लेखनीय है कि चौदहवी शताब्दी ईसवी के जैनाचार्य जिनप्रभ सूरि को 'कुशाग्रपुर' राजगृह

---

१. पृष्ठ ८२।

२. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ४९।

३. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १४८-१४९।

४. एन्शियन्ट इण्डियन हिस्टोरीकल ट्रेडीशन पृष्ठ १४९।

के प्राचीन नाम के रूप में विदित था।" "कुशाग्रपुरसंज्ञं च क्रमाद्राजगृहाह्वयम्।"[1] यूआन् चुआङ के वर्णनानुसार नवीन राजगृह को राजा बिम्बिसार ने कुशाग्रपुर (प्राचीन नगर) में निरन्तर आग लगते रहने के कारण, वेणुवन के उत्तर-पूर्व मे, एक श्मशान के समीप, बसाया था और चूँकि राजा (बिम्बिसार) वहाँ प्रथम गृह बना कर रहा था, इसलिए इसका नाम 'राजगृह' पड़ा था।[2] फा-ह्यान ने नवीन नगर का विवरण देते हुए लिखा है कि उसे अजातशत्रु ने बसाया था।[3] इस प्रकार इन दोनों चीनी यात्रियों मे राजगृह के संस्थापक को लेकर मतभेद है। सुत्त-निपात की अट्ठकथा[4] में राजगृह के लिये 'मगधपुर' के साथ 'बिम्बिसारपुरी' शब्द का प्रयोग किया गया है। 'राजगृह' नामकरण का कारण बताते हुए आचार्य बुद्धघोष ने कहा है कि प्राचीन काल मे यह नगर मन्धाता (सं० मान्धाता) और महा-गोविन्द जैसे राजाओं का गृह या निवास-स्थान रहा था, इसलिये इसका नाम 'राजगह' (राजगृह) पड़ा।[5] आचार्य बुद्धघोष ने यह भी कहा है कि 'राजगृह' 'अन्तोनगर' (भीतरी नगर) और 'बहिरनगर' (बाहरी नगर) इन दो भागों में विभक्त था, जिनमें से प्रत्येक की आबादी ९ करोड़ थी, अर्थात् पूरे राजगृह की आबादी मिलाकर १८ करोड़ थी।[6] राजगृह अर्थात् अजातशत्रु (फा-ह्यान के अनुसार) या बिम्बिसार (यूआन् चुआङ के अनुसार) द्वारा बसाये गये राजगृह की स्थिति हमें आधुनिक राजगिर या राजगीर गाँव या कस्बे के रूप मे माननी पड़ेगी, जो राजगीर रेलवे

---

१. विविधतीर्थकल्प, प्रथम भाग, पृष्ठ २२।

२. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १६२; बील : बुद्धिस्ट रिकार्डस् ऑव दि वैस्टर्न वर्ल्ड, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १४५।

३. लेग्गे : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ८१; मिलाइये गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ४९।

४. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५८४।

५. सुमंगलविलासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ १३२।

६. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ ३०३; समन्तपासादिका, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ६१४।

स्टेशन के समीप डाकबँगले के उत्तर और उत्तर-पूर्व कोण में स्थित है। यह स्थिति सन् १९०६ में पुरातत्व विभाग द्वारा किये गये उत्खनन कार्य मे प्रायः निश्चित हो गई है। इसका कारण यह है कि इस स्थान के समीप उपर्युक्त खुदाई के परिणाम-स्वरूप तीन मील लम्बी चहारदीवारी के अवशिष्ट प्राप्त हुए, जिसकी दीवारें कहीं-कहीं १४ फुट ९ इंच से लेकर १८ फुट ६ इंच तक मोटी थीं और कहीं-कहीं पर जिनकी ऊँचाई ११ फुट तक थी। समीपवर्ती ग्रामवासियों के द्वारा ईट और पत्थर उठाये ले जाने के कारण ये अवशेष भी आज लुप्तप्राय हो गये हैं और कुछ खण्ड-हरों के अतिरिक्त अधिक देखने को नही मिलता। यह अनुमान लगाया गया है कि यह तीन मील लम्बी चहारदीवारी वस्तुतः उस राजगृह की ही है जिसे चीनी यात्रियों के वर्णनानुसार अजातशत्रु या बिम्बिसार ने बसाया था। यहाँ जो अन्य वस्तुएं मिली हैं, जैसे अनाज रखने का एक बड़ा कूंड़ा, घरों और नालियों के अवशिष्ट, वे इसे एक प्राचीन नगर की स्थिति सूचित करते है। धम्मपदट्ठकथा[1] में कहा गया है कि राजगृह नगर के चारों ओर एक चहारदीवारी थी जिसके फाटक रात को बन्द कर दिये जाते थे और किसी को भी एक निश्चित समय के बाद प्रवेश की अनुमति नही मिलती थी, यहाँ तक कि राजा को भी नही। 'सुमंगलविलासिनी' में भी कहा गया है कि राजगृह के परकोटे में ३२ बड़े द्वार (महाद्वारानि) और ६४ छोटे द्वार (खुद्दद्वारानि) थे। अतः पालि के इस वर्णन को उपर्युक्त चहारदीवारी के भग्नावशेषों से समर्थन मिलता है और हम इस तीन मील के परकोटे को राजगृह की चहारदीवारी मान सकते है। दूसरी बातें भी चीनी यात्रियों के विवरणों से मेल खाती हैं, जिनका उल्लेख हम राजगृह के अन्य विभिन्न बुद्धकालीन स्थानों का विवेचन करते समय आगे करेंगे। अभी इस राजगृह की स्थिति को ध्यान में रखते हुए हम उसके प्राचीन रूप, अर्थात् बुद्ध और बिम्बिसार के समय से पूर्व के गिरिव्रज की स्थिति पर कुछ विचार करें। पालि विवरण के आधार पर हम पहले देख चुके हैं कि गिरिव्रज नगर पाँच पहा-ड़ियों के बीच में स्थित था। पुरातत्व विभाग की खोजों ने इन पहाड़ों की घाटी में एक ४॥ मील घेरे के पंचभुजाकार परकोटे को प्रकाश में लाने का काम किया है,

---

१. जिल्द पहली, पृष्ठ ३५६।

जिसे इस नगर (गिरिव्रज) को घेरने वाली अन्दरूनी दीवारें माना गया है। इस पंचभुजाकार दीवार का जो सबसे उत्तरी भाग है, वह ऊपर कही हुई राजगृह को घेरने वाली ३ मील लम्बी चहारदीवारी के सबसे दक्षिणी भाग से ५ या ६ फर्लांग दक्षिण में है। इसका अर्थ यह है कि तीन मील लम्बा घेरा जो राजगृह का भग्नावशिष्ट है, उत्तर में है और साढ़े चार मील लम्बा घेरा जो गिरिव्रज का भग्नावशिष्ट है, उसके दक्षिण में, पहाड़ियों के बीच में, है। दोनों के बीच का फासला करीब ५ या ६ फर्लाङ्ग है। और भी स्पष्ट करें तो प्राचीन नगर गिरिव्रज को घेरने वाली साढ़े चार मील लम्बी दीवार के उत्तरी प्रवेश द्वार से बाहर और उसकी उत्तर दिशा में करीब पाँच या छह फर्लाङ्ग की दूरी पर उस राजगृह के तीन मील के परकोटे के रूप में भग्नावशिष्ट स्थित है जिसे अजातशत्रु या बिम्बिसार ने बनवाया था। राजगृह और गिरिव्रज की आपेक्षिक स्थितियों को स्पष्ट करने में यहाँ विशेष आयास इसलिये करना पड़ रहा है कि इस सम्बन्ध में डा० रायस डेविड्स् जैसे विद्वान् ने भी एक ऐसी बात कह दी है जो भ्रामक जान पड़ती है। वह यह है, "गिरिब्बज और राजगृह दोनों के दुर्ग आज विद्यमान है, जो घेरे में क्रमशः ४॥ और ३ मील है। गिरिब्बज की दीवारों का सबसे दक्षिणी बिन्दु नवीन राजगृह नगर के सबसे उत्तरी बिन्दु से एक मील उत्तर में है।"[१] यह तो रायस डेविड्स ने ठीक कहा है कि साढ़े चार मील लम्बा घेरा गिरिव्रज को द्योतित करता है और तीन मील लम्बा घेरा राजगृह को। परन्तु उन्होंने यह जो कहा है कि गिरिब्बज की दीवारों का सबसे दक्षिणी बिन्दु नवीन राजगृह के सबसे उत्तरी बिन्दु से एक मील उत्तर मे है, यह बिलकुल समझने में अयोग्य है और इसकी संगति न तो चीनी यात्रियों के विवरणों

---

१. "The fortifications of both Giribbaja and Rājagaha are still extant, $4\frac{1}{2}$ and 3 miles respectively in circumference; the most southerly point of the walls of Giribbaja, the "Mountain Stronghold", being one mile north of the most northerly point of the walls of the new town of Rājagaha, the King's house." **बुद्धिस्ट इण्डिया, पृष्ठ २७ (प्रथम भारतीय संस्करण, सितम्बर १९५०); पृष्ठ ३७-३८ (लन्दन से सन् १९०३ में प्रकाशित मूल संस्करण)**

से है और न इसे पुरातत्व विभाग की खोजो से ही कुछ समर्थन मिल सकता है। रायस डेविड्स के कथन को मानने पर गिरिव्रज के भग्नावशेषों को राजगृह के भग्नावशेषों से उत्तर मे मानना पड़ेगा, जो पुरातत्व विभाग द्वारा की गई खुदाई के साक्ष्य के बिलकुल विपरीत है। भारत सरकार द्वारा प्रकाशित आर्कलोजीकल सर्वे ऑव इन्डिया, न्यू इम्पीरियल सीरीज, जिल्द इक्यावनवी, कलकत्ता १९३१, में राजगिर की खुदाई में प्राप्त जिन तथ्यों का हाल पृष्ठ ११२ से लेकर १३६ तक प्रकाशन किया गया है और सर जोन्ह मार्शल की देखरेख मे तैयार किये गये जिस मानचित्र को वहाँ दिया गया है, उसमे स्पष्ट तौर पर नवीन राजगृह की स्थिति को प्राचीन राजगृह या कुशाग्रपुर (गिरिव्रज) के उत्तर मे दिखाया गया है। चूँकि रायस डेविडस् के कथन को मान लेने पर इससे उल्टा अर्थात् गिरिव्रज को उत्तर में और उसके नीचे दक्षिण मे राजगृह को मानना पड़ेगा, इसलिये हम उसे प्रामाणिक नही मान सकते। भौगोलिक परिस्थिति के विचार से भी यह बिलकुल गलत होगा, क्योंकि पाँच पहाड़ियों के बीच मे स्थित गिरिव्रज राजगृह के दक्षिण मे ही हो सकता है और सबसे अधिक प्रत्यक्ष बात तो यह है कि ४॥ मील भग्न दीवार का घेरा जो मिला है और जिसे रायस डेविड्स् भी गिरिव्रज मानते है[1], वह तो साक्षात् तीन मील लम्बे घेरे से दक्षिण दिशा में ही है, उत्तर में नही। अत. रायस डेविड्स् का इससे विपरीत कथन भ्रामक ही हो सकता है। चीनी यात्रियों मे से यूआन् चुआङ ने तो, जैसा हम पहले देख चुके है, राजगृह की स्थिति के सम्बन्ध मे केवल इतना ही कहा है कि वह वेणुवन के उत्तर-पूर्व मे एक श्मशान के समीप बनवाया गया था, परन्तु फा-ह्यान ने तो स्पष्टत: कहा है कि सारिपुत्र के जन्म और निर्वाण के स्थान नाल या नालन्दा से एक योजन पश्चिम में चलकर वह 'नवीन राजगृह' मे आया था, जिसे उसके मतानुसार अजातशत्रु ने बनवाया था और इस नगर के दक्षिण द्वार से करीब ४ 'ली' (करीब ¾ मील) दक्षिण में उसने पाँच पहाड़ियों से परिवृत बिम्बिसार के प्राचीन नगर (गिरिव्रज) को देखा था।[2] अत. फा-ह्यान के इस विवरणानुसार भी प्राचीन नगर (गिरिव्रज) नवीन राजगृह से करीब ५ या ६ फर्लाङ्ग दक्षिण

---

१. बुद्धिस्ट इण्डिया, पृष्ठ २७ (प्रथम भारतीय संस्करण, सितम्बर १९५०)।

२. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ४९।